

साक्षातेवं हृषीकेशं शिवं लोकभगवत्सरम्।
भवत्प्रसादादचला शरणे गोवृष्टवजे॥ १३८॥
इदानीं जायते भक्तिर्था देवैरपि दुर्लभा।
कथयस्व मुनिशेषं कर्मयोगमनुसमम्॥ १३९॥
येनासौ भगवानीशः सपाराष्यो मुमुक्षुभिः।
त्वत्सत्रियावेव सूतः शृणोतु भगवहूचः॥ १४०॥

वे शिव साक्षात् देव, हृषीकेश और लोकों के महान् ईशर हैं। आप के ही प्रसाद से उन शरण, गोवृष्टवज में हमारी अचल भक्ति उत्पन्न हुई है, जो देवताओं द्वारा भी दुर्लभ है। हे मुनिशेष! अत्युत्तम कर्मयोग के विषय में कहें, जिसके द्वारा मुमुक्षुओं द्वारा भगवान् ईश आराधन-योग्य हैं। आपके साक्षिधा में ये सूतजी भी इन भगवद्गुरुओं को सुनें।

तद्वाग्निखललोकानां रक्षणं धर्मसंश्रहम्।
यदुक्तं देवदेवेन विष्णुना कूर्मरूपिणा॥ १४१॥
पृष्ठेन मुनिभिः सर्वं शक्तेणाप्तपत्त्वने।

उसी प्रकार समस्त लोकों के रक्षणस्वरूप धर्मसंश्रह को भी कहें, जिसे इन्द्र के द्वारा अमृतमंथन के समय मुनियों के द्वारा पूछे जाने पर कूर्मरूपधारी देवदेव विष्णु ने कहा था।

श्रुत्वा सत्यवतीसूनुः कर्मयोगं सनातनम्॥ १४२॥
मुनीनां भाषिते कृत्स्ने प्रोवाच सुमाहितः।
य इप्य पठते नित्यं संवादं कृतिवाससः॥ १४३॥
सनत्कुमारप्रमुखैः सर्वायैः प्रमुख्यते।
श्रावयेद्वा हिजान् शुद्धान् ब्रह्मर्थपरायणान्॥ १४४॥

सत्यवती पुत्र (व्यास) ने यह सब सुनकर मुनियों द्वारा कथित उस सनातन कर्मयोग को संपूर्णरूप से समाहित चित्त होकर कहा। कृतिवास के इस संवाद का जो नित्य पाठ करता है अथवा जो ब्रह्मर्थपरायण पवित्र ब्राह्मणों को सुनाता है, वह भी उन सनत्कुमार आदि मुनियों सहित समस्त पापों से मुक्त हो जाता है।

यो वा विचारयेदर्थं स याति परापां गतिष्ठ।
यद्युत्कृष्णयान्त्रित्य भक्तियुक्तो दृढ़ब्रतः॥ १४५॥
सर्वपापविनिर्मुक्तो ब्रह्मलोके यहीयते।
तस्मात्सर्वप्रयत्नेन पठितव्यो मनीषिभिः॥ १४६॥
श्रोतव्यानुभवत्व्यो विशेषद्वाहाणौः सदा॥ १४७॥

अथवा जो इसके अर्थ का भलीभौति विचार करता है, वह परम गति को प्राप्त होता है। जो दृढ़ब्रती भक्तियुक्त होकर इसका नित्य श्रवण करता है, वह समस्त पापों से मुक्त होकर ब्रह्मलोक में पूजित होता है। अतः मनोषियों को

सब प्रकार से प्रयत्नपूर्वक इसका पाठ करना चाहिए और विशेषरूप से ब्राह्मणों को सदा इसे सुनना और मनन करना चाहिए।

इति श्रीकूर्मपुराणे उत्तरादेहं ईश्वरगीतासूपनिषत्सु ब्रह्मविद्यायां
योगज्ञास्ते ऋषिव्याससंवादे एकादशोऽध्यायः॥ ११॥

द्वादशोऽध्यायः

(व्यासगीता)

व्यास उवाच

शृणुष्वपृथिव्यः सर्वे वक्ष्यमाणे सनातनम्।
कर्मयोगं ब्राह्मणानामात्यनिकफलप्रदम्॥ १॥
आमायसिद्धिरुचिलं ब्राह्मणानां प्रदर्शितम्।
ऋषीणां शृण्वतो पूर्वं मनुराह प्रजापतिः॥ २॥

व्यास जी ने कहा— मैं ब्राह्मणों के आत्यनिक फल को प्रदान करते वाले सनातन कर्मयोग को कहता हूँ जिसे आप सब ऋषिगण श्रवण करें। यह वेदों द्वारा सम्पूर्णरूप से सिद्ध है और ब्राह्मणों द्वारा ही प्रदर्शित किया है। इसे श्रवणकर्ता ऋषियों के समक्ष पहले प्रजापति मनु ने कहा था।

सर्वपापहरं पुण्यपूषिसहृनिषेवितम्।
समाहितविद्यो यूयं शृणुष्वं गदतो यम॥ ३॥
कृतोपनयनो वेदानवीरीत द्विजोत्तमाः।
गर्भाशृष्टेऽप्युपेव वादे स्वसुत्रोक्तविद्यानतः॥ ४॥

यह समस्त पापों को हरने वाला, परम पुण्यमय और ऋषि समुदायों के द्वारा निषेवित है। मैं इसे कहता हूँ, इसलिए समाहितवृद्धि होकर आप सब इसका श्रवण करें। हे द्विजोत्तमो! गर्भ से आठवें वर्ष में अथवा जन्म से आठवें वर्ष में अपने (गृह)सुत्रोक्त विद्यि के अनुसार ही उपनयन संस्कार सम्पन्न होकर वेदों का अध्ययन करना चाहिए।

दण्डी च मेखली सूत्री कृष्णाजित्वरो मुनिः।
पिक्षावारी ब्रह्मवारी स्वाश्रमे निवसन् सुखम्॥ ५॥
कार्णसमुपवीतार्थं निर्भितं ब्रह्मणा पुरा।
ब्राह्मणानां त्रिवृत्सूत्रं कौशं वा वस्त्रमेव वा॥ ६॥

दण्डधारी, मेखला पहनने वाला, सूत्र (यज्ञोपवीत) को कृष्णमूर्त्य को धारण करने वाला मुनि ब्रह्मवारी होकर भिक्षाचरण करे और अपने आश्रम में सुख पूर्वक निवास करे। पहले ब्रह्मा ने यज्ञोपवीत के लिये कपास का निर्माण

किया था। ब्राह्मणों का सूत्र तीन आवृत्ति हो, वह कुश का बना हो अथवा वस्त्र हो हो।

सदोपर्यातो दीय स्यासदा वद्विशिष्ठो द्विजः॥

अन्यथा पत्न्यां कर्प तद्वत्पत्यवद्याकृतम्॥७॥

ब्राह्मणार्थी को सदा उपवीत (जनोई) धारी हो होना चाहिए और सर्वदा उसकी लिखा भी वैधी हुई रहनी चाहिए। इसके अभाव में जो भी वह कर्म करता है, वह सब अयथाकृत अर्थात् निष्फल ही होता है।

वसेदिविकृतं वासः कार्पासं वा कथायकम्॥

तदेव परिधानीयं शुक्लमचिद्भूतमप्म्॥८॥

सूती या रेशमी वस्त्र अविकृतरूप अर्थात् बिना कटा हुआ उत्तम कोटि का, छिद्र रहित और स्वच्छ ही धारण करना चाहिए।

उत्तरनु समाख्यातं वासः कृष्णाजिनं सूभूम्॥

अपावै दिव्यपजिनं रौरवं वा विधीयते॥९॥

ब्राह्मणों के लिए कृष्णवर्ण का मृगचर्म उत्तम उत्तरीय माना गया है। उसके अभाव में उत्कृष्ट कोटि के रूपमृगचर्म के उत्तरीय का भी विधान है।

उद्गत्य दक्षिणं वाहुं सर्वे वाहौ सपर्पितम्॥

उपवीतं भवेत्रित्य निवीतं कण्ठसञ्जने॥१०॥

सर्वे वाहुं समुद्गत्य दक्षिणे तु वृतं द्विजाः।

प्राचीनावीतमित्युक्तं पैत्रे कर्पणि योजयेत्॥११॥

दाहिना हाथ ऊपर उठाकर वाम बाहुभाग (कन्धे) पर समर्पित 'उपवीत' होता है। नित्य कण्ठहार के रूप में धारण सूत्र 'निवीत' होता है। हे द्विजगण! वाम बाहु को समुद्धृत करके दक्षिण बाहु में धारण किया गया 'प्राचीनावीत' नाम से कहा गया है जिसे पैत्रे कर्पण में ही धारण करना चाहिए।

अन्यागारे गदा गोष्ठे होये जये तत्त्वं च।

स्वाध्याये भोजने नित्यं द्वाहणानाङ्गं सञ्चित्वा॥१२॥

उपासने गुरुणाङ्गं सम्ययोः सामुसंगमो।

उपवीती भवेत्रित्वं विष्णिरेष सनातनः॥१३॥

अनिशाला, गौशाला, हवन, जप, स्वाध्याय, भोजन, ब्राह्मणों के साक्षिय, गुरुओं की उपासना और सन्ध्या के समय तथा साधुओं के साक्षिय में सदा यजोपवीत धारण करने वाला होना चाहिए। यही सनातन विधि है।

पौङ्गी त्रिवृत्सपा श्लक्षणा कार्या विप्रस्य भेष्यला।

कुशेन निर्मिता विश्रा ग्रन्थिनेकेन वा त्रिपिः॥१४॥

प्रत्येक ब्राह्मण को मूंज से बनो हुई, त्रिगुणित, सम और चिकनी भेष्यला बनानी चाहिए। मूंज के न रहने पर कुश की एक या तीन गौंठें वाली भेष्यला बनानी चाहिए।

धारयेद्दूल्पयालाशो दण्डी केशानकौ द्विजः।

चज्ञाहं वृक्षजं वाय सौम्यमद्वृणपेव च॥१५॥

ब्राह्मण केश के अग्रभाग तक लम्बा, सुन्दर तथा ढेर रहित बेल या पलाश अथवा यज्ञ में प्रयुक्त होने वाले किसी भी वृक्ष का दण्ड धारण कर सकता है।

सायं प्रातर्द्विजः संस्यामुपासीत सपाहितः।

कामाल्लोभाद्यान्मोहात्यक्त्वैनां पतितो भवेत्॥१६॥

ब्राह्मण को प्रतिदिन एकाग्रचित्र होकर प्रातः और सांध्य वन्दन करना चाहिए। काम, स्लोभ, भय तथा मोहवश सन्ध्या वन्दन न करने से वह पतित होता है।

अग्निकार्यं ततः कुर्यात्सायम्प्रातर्द्विविधिः।

स्नात्वा सन्तर्पयेद्वानृतीन् पितृगणांस्तथा॥१७॥

प्रातः तथा सन्ध्या के समय यथाविधि अग्निहोत्र करना चाहिए। (प्रातःकाल) स्नान के अनन्तर देवता, ऋषि और पितरों का तर्पण करना चाहिए।

देवतापूर्वनं कुर्यात्तुष्टैः पत्रेण चाप्युना।

अभिवादनशीलः स्याग्रित्यं वृद्धेषु धर्मतः॥१८॥

असावहं भो नामेति सम्यक् प्रणतिपूर्वकम्।

आयुरारोग्यसाप्तिं द्रव्यादिपरिवर्जितम्॥१९॥

इसके बाद पत्र, पुष्प और जल से देवताओं की पूजा करें। धर्म के अनुसार नित्य गुरुजनों को प्रणाम करना चाहिए। द्रव्यादि को छोड़कर केवल आयु और आरोग्य की कामना के साथ भलीभांति प्रणाम करते हुए कहे— 'मैं अपुक नाम वाला ब्राह्मण (आपको प्रणाम करता हूँ)'।

आयुष्मान् भव सौम्येति वाच्यो विप्रोऽभिवादने।

अकारक्षास्य नामोऽन्ते वाच्यः पूर्वाक्षरप्लुतः॥२०॥

अभिवादन करने पर उस ब्राह्मण को 'हे सौम्य! आयुष्मान् भव अर्थात् दीर्घायु हो— ऐसा वाक्य प्रणाम करने वाले ब्राह्मण को कहना चाहिए। उसके नाम के अन्त में स्थित अकारादि स्वर वर्ण का अन्यथा अनिम वर्ण के टीक पहले स्थित स्वर वर्ण का संक्षेप में उद्घारण करना चाहिए।

न कुर्याद्विवादस्य द्विजः प्रत्यभिवादनम्।

नामिवादः स विदुषा यत्वा शुद्धस्त्वैव सः॥२१॥

जो द्विज अभिवादन करने वाले का प्रत्यभिवादन नहीं करता है, ऐसा द्विज विद्वान् के द्वारा कभी भी अभिवादन योग्य नहीं होता; क्योंकि वह शूद्र के समान ही है।

विन्यस्तपाणिना कार्यमुपसंग्रहणं गुरोः।
सर्वेन सत्यः स्त्राष्टुव्यो दक्षिणेन तु दक्षिणः॥ २२॥
लौकिके वैदिकज्ञापि तद्यात्मिकमेव वा।
आददीत यतो ज्ञानं तं पूर्वपभिवादयेत्॥ २३॥

हाथों को चरणों में विन्यस्त करके ही गुरु का उपस्थान करना चाहिए। वाम कर से वाम चरण का और दक्षिण कर से दक्षिण चरण का स्पर्श करें। लौकिक तथा वैदिक एवं आध्यात्मिक ज्ञान जिससे भी ग्रहण करे, उसका सर्वप्रथम अभिवादन करे।

नोदकं धारयेदैश्यं पुष्पाणि समिखं तदा।
एवंविद्यानि चान्यानि च देवाण्हेषु कर्मसु॥ २४॥
शाहाणं कुशलं पृच्छेऽक्षव्रक्षमनामयम्।
वैश्यं क्षेमं सप्तागत्य शूद्रमारोग्यमेव च॥ २५॥

देवादि कर्मों में (वासी) जल, भिक्षा, पुण्य, समिधा तथा इस प्रकार के अन्य चासी पदार्थों को ग्रहण नहीं करना चाहिए (अपितु ताजे द्रव्य ही लेने चाहिए)। (रास्ते में मिलने पर) ब्राह्मण से कुशल पूछना चाहिए। क्षत्रिय बन्धु से अनामय, वैश्य से क्षेम-कुशल और शूद्र से मिलने पर भी आरोग्य पूछना चाहिए।

उपाध्यायः पिता ज्येष्ठो भ्राता चैव यहीपतिः।
मातुलः श्वशुरुद्धैव भ्रातामहपितामहौ॥ २६॥
वर्णज्येष्ठः पितृव्यष्टु सर्वे ते गुरवः स्मृताः।
भ्राता भ्रातामही गुर्वी पितृमातुश्च सोदराः॥ २७॥
श्वश्रुः पितामही ज्येष्ठा भ्रातुजाया गुरुक्षियः।
इन्द्रुको गुरुवर्गोऽयं मातुतः पितृतत्त्वाः॥ २८॥

उपाध्याय, पिता, ज्येष्ठ भ्राता, राजा, मामा, शशुर, भ्रातामह, पितामह वर्ण में ज्येष्ठ और पितृव्यष्ट— ये सभी गुरुजन कहे गये हैं। माता, मातामही, गुरुपत्री, पिता और माता की सोदरा भगिनी, सास पितामही, ज्येष्ठ भ्रातुजाया ये सभी गुरु (ज्येष्ठ अतएव पूर्व) स्त्रियां ही होती हैं। यह माता और पिता के पक्ष से ज्येष्ठ-वर्ग बताया गया है।

अनुवर्तनपेतेषां यनोवाक्षायकर्मणः।
गुरुं दृष्ट्वा समुत्तिष्ठेदभियाद्य कृताङ्गलिः॥ २९॥

नैतैकपविशेषाद्वै विवदेतर्थकारणात्।

जीवितार्थमपि द्वेषाद् गुरुभिर्नैव भाषणम्॥ ३०॥

इस उपर्युक्त गुरुवर्ग का सदा अनुवर्तन मन, वाणी और शरीर से करना चाहिए। गुरु को देखकर कृताङ्गलि होकर अभिवादन करते हुए खड़ा हो जाना चाहिए। उनके साथ बैठना नहीं चाहिए। अपने जीवन निवांह हेतु तथा देष्पभावना के कारण गुरु के सामने कुछ नहीं बोलना चाहिए।

ठदितोऽपि गुरीरन्वैर्गुरुद्वेषी पतत्वः।

गुरुणामपि सर्वेषां पूज्या: पञ्च विशेषतः॥ ३१॥

तेषामादाक्षयः श्रेष्ठासेषां माता सुपूजिता।

यो भावयति या सूते येन विद्योपदिश्यते॥ ३२॥

ज्येष्ठो भ्राता च भर्ता च पहुँते गुरवः स्मृताः।

गुरु से देष्प करने वाला व्यक्ति, दूसरे अनेक गुणों से सम्पन्न होने पर भी नरक में गिरता है। इन सभी प्रकार के गुरुओं में भी पाँच विशेष प्रकार से पूजनीय होते हैं— उनमें भी प्रथम तीन सर्वाधिक श्रेष्ठ होते हैं और उनमें भी माता को सबसे अधिक पूज्या कहा गया है। उत्पादक (पिता), प्रसूता (माता), विद्या का उपदेशक अर्थात् गुरु, बड़ा भाई और पति— इनको उपर्युक्त पाँच गुरुओं में गिना गया है।

आत्मनः सर्वदयलेन प्राणत्वागेन वा पुनः॥ ३३॥

पूजनीया विशेषेण पहुँते भूतिमिच्छता।

ऐश्वर्य को चाहने वाले व्यक्ति को अत्यन्त यत्पूर्वक अथवा प्राण त्वाग करके भी उपर्युक्त पाँच गुरुओं की पूजा करनी चाहिए।

यावतिप्ता च माता च द्वाष्टेतौ निर्विकारिणौ॥ ३४॥

तावत्सर्वं परित्यज्य पुत्रः स्वात् तत्परायणः।

जब तक माता और पिता दोनों निर्विकारी हों अर्थात् जब तक दोनों में निर्देश भाव बना रहे, तब तक प्रत्येक पुत्र को चाहिए कि वह अपना सब कुछ त्वाग कर उनकी सेवा करने में तत्पर रहे।

पिता माता च सुप्रीतौ स्वातां पुत्रगुणैर्वदि॥ ३५॥

स पुत्रः सकलं धर्ममानुयातेन कर्मणा।

यदि पुत्र के गुणों से माता-पिता बहुत सन्तुष्ट हों, तो माता-पिता को सेवारूपी कर्म से ही वह पुत्र समग्र धर्म को प्राप्त कर लेता है।

नास्ति भावसमो देवो नास्ति तात्समो गुरुः॥ ३६॥

तयोः प्रत्युपकारो हि न कश्चित्प्रियते।

संसार में माता के समान कोई देव नहीं है और पिता के समान गुरु नहीं है। इनके उपकार का बदला किसी भी रूप में नहीं चुकाया जा सकता।

तयोर्नित्यं प्रिये कुर्यात्कर्षणा मनसा गिरा॥ ३७॥
न ताप्यामननुज्ञातो धर्यपत्न्यं समाचरेत्।
द्वर्जयित्वा मुत्तिफलं नित्यं नैषितिकं तथा॥ ३८॥

अतएव इनका नित्य ही मन, वाणी और कर्म के द्वारा सर्वदा प्रिय करना चाहिए। उनकी आज्ञा न विलगे पर मोक्षसाधक तथा नित्य या नैषितिक कर्म को छोड़कर अन्य धर्म का आचरण नहीं करना चाहिए।

धर्मसारः समुहिष्टः प्रेस्याननाष्टलक्ष्मदः।
सर्वगतात्य वक्तारं विमृष्टसदनुज्ञाय॥ ३९॥
शिष्यो विद्याफलं भुझेते प्रेत्य वा पूज्यते दिवि।
यो भ्रातरं पितृसं ज्येष्ठं मूर्खोऽवपत्न्यते॥ ४०॥

तेन दोषेण स प्रेत्य निरयं घोरपृच्छति।
पुंसां वर्त्मनि तिष्ठेत पूज्यो भर्ता च सर्वदा॥ ४१॥

यही धर्म का सार कहा गया है जो मृत्यु के पश्चात् फल प्रदान करने वाला है। वक्ता की भलीभौति आराधना करके उसकी अनुज्ञा से विसृष्ट हुआ शिष्य विद्या का फल भोगता है और मृत्यु के बाद वह स्वर्ग लोक में पूजा जाता है। जो मूर्ख पिता के तुल्य बड़े भाई की अवधानना करता है, वह इसी दोष से मरणोपरान्त परम घोर नरक को प्राप्त करता है। पुरुषों के मार्ग में पूज्य भर्ता सर्वदा स्थित रहा करता है।

अपि मातरि लोकेऽस्मिन्नुपकाराद्वि गौरवम्।
ने नरा भर्तुपिण्डात्यं स्वान्नाणान् सन्देवन्ति हि॥ ४२॥
तेषामध्याक्षयांल्लोकान् प्रोवाच भगवान्मनुः।

इस माता के लोक में उपकार से ही गौरव होता है, जो मनुष्य भर्तुपिण्ड के लिये अपने प्राणों का त्याग कर देते हैं। उन लोगों के लिये भगवान् मनु ने अक्षय लोकों की प्राप्ति कही है।

मातुलंघ्यं पितृव्यांघ्यं शशुरानुत्वितो गुरुन्॥ ४३॥
असावहपिति शूषुः प्रत्युत्ताय यवीयसः।
अवाच्यो दीक्षितो नामा यवीयानपि यो भवेत्॥ ४४॥
भो भवत्पूर्वकल्वेन अपिष्याषेत धर्मसित्।

मामा, चाचा, शशु, शूषि और गुरु वर्ग से यह मैं हूं, ऐसा ही बोलना चाहिए, चाहे वे युवा हो हो। जो दीक्षित द्वाहाण हो वह भले ही युवा क्यों न हो उसे नाम लेकर नहीं

बुलाना चाहिए। धर्मवेत्ता उसे (भवत्) आप शब्द के साथ अभिभाषण करे।

अभिवादाद्युष्टु पूज्याण्य शिरसा बन्द एव च॥ ४५॥

द्वाहाणः क्षत्रियाद्युष्टु श्रीकामैः सादरं सदा।

नाभिवादाम्नु विप्रेण क्षत्रियाद्याः क्षयङ्गन॥ ४६॥

ज्ञानकर्मगुणोपेता ये यज्ञनि वहुमृताः।

द्वाहाणः सर्ववर्णानां स्वस्ति कुर्यादिति श्रुतिः॥ ४७॥

सम्पति की क्षमना रखने वाले क्षत्रिय आदि के लिए द्वाहाण सदा आदर के सहित अभिवादन योग्य, पूज्य, और सिर द्वाकाकर बन्दन करने योग्य होता है। परन्तु उत्तम द्वाहाण के द्वारा क्षत्रियादि किसी भी रूप में अभिवादन योग्य नहीं होते चाहे वे ज्ञान, कर्म और गुणों से युक्त या विद्वान् तथा नित्य यज्ञ करते हों। द्वाहाण सभी वर्णों के प्रति तुम्हारा कल्याण हो—ऐसा कहे। यह श्रुति वचन है।

सर्वर्णेषु सर्वर्णानां काव्यपेत्याभिवादनम्॥

गुरुरनिर्दिजातीनां वर्णानां द्वाहाणो गुरुः॥ ४८॥

पतिरेवः गुरुः खोणां सर्वस्याभ्यागतो गुरुः।

विद्या कर्प तपो वन्युर्वितं भवति पञ्चपम्॥ ४९॥

समान वर्ण के सभी लोगों को अपने सर्वाणि का अभिवादन करना ही चाहिए। द्विजातियों का गुरु अग्नि है और सब वर्णों का गुरु द्वाहाण होता है। खियों का गुरु एक उत्तम कपि ही होता है। अभ्यागत जो होता है वह सबका गुरु होता है। विद्या, कर्म, तप, वन्यु और धन पाँचवा होता है।

मान्यस्थानानि पञ्चाहुः पूर्वं पूर्वं गुरुत्तरात्।

एतानि त्रिषु वर्णेषु भूयांसि वलवन्ति च॥ ५०॥

यत्र स्युः सोऽन्नं मानाहः शुद्रोऽपि दशर्णीं गतः।

ये पाँच ही मान्य-स्थान कहे गये हैं और इनमें उत्तर-उत्तर की अपेक्षा पूर्व-पूर्व गुरु (श्रेष्ठ) होता है। ये सभी (द्वाहाणादि) तीनों वर्णों में अधिक होने पर प्रभावशाली हुआ करते हैं। जिन में ये होते हैं, वह सम्माननीय होता है। इसी प्रकार दशर्णी को प्राप्त (नव्वे वर्ण की) आयु वाला शुद्र भी सम्मान योग्य कहा गया है।

एता देयो द्वाहाणाय खियै राजै हाचक्षुये॥ ५१॥

वृद्धाय भारधुम्नाय रोगिणे दुर्बलाय च।

यदि मार्ग में सामने द्वाहाण, खो, राजा, अन्धा, वृद्ध, भारवाहक, रोगी और दुर्बल आ जाएं तो उसके लिए रास्ता छोड़ देना चाहिए।

भिक्षामाहत्य शिष्टानां गृहेभ्यः प्रयतोऽन्वहम्॥ ५२॥
निवेद्य गुरवेऽस्मीयाद्वाप्यतस्तदनुशया।

प्रतिदिन यद्यपूर्वक सज्जनों के घर से भिक्षा को ग्रहण करके गुरु के सामने समर्पित करें, फिर उनकी आङ्ग से मौन होकर भोजन करना चाहिए।

भवत्पूर्वं चरेद्दैश्यपुष्पनीतो हिजोतपः॥ ५३॥

भवत्पूर्वं तु राजन्यो वैश्यस्तु भवदुनरम्।

यज्ञोपवीती ब्रह्मचारी 'भवत्' शब्द पहले लगाकर भिक्षा याचना करें (अर्थात् 'भवति भिक्षां देहि' ऐसा कहेंगे)। यज्ञोपवीती क्षत्रिय वाक्य के बीच में 'भवत्' शब्द लगाकर भिक्षा याचना करेंगे (अर्थात् 'भिक्षां भवति देहि' कहेंगे) और यज्ञोपवीती वैश्य अन्त में 'भवत्' शब्द का उपारण कर भिक्षा याचना करें (अर्थात् 'भिक्षां देहि भवति')।

मातरं वा स्वसारं वा मातुर्वा भगिनीं निजाम्॥ ५४॥

भिक्षेत भिक्षां प्रथमं या चैनं न विषानयेत्।

माता, बहन, माता की सगी बहन (मौसी) अथवा ऐसी लोगों जो ब्रह्मचारी को (खाली हाथ लौटाकर) अपमानित करने वाली न हो, इन सबसे पहले भिक्षा याचना करनी चाहिए।

स्वजातीयगृहेभ्ये वा र्वार्वर्णिकमेव वा॥ ५५॥

भैश्यस्य चरणं युक्तं पतितादिषु वर्जितम्।

अपनी जाति के लोगों के घर से ही भिक्षा मांगकर लानी चाहिए अथवा अपने से उद्धवर्ण के लोगों से भिक्षा मांगी जा सकती है। परन्तु पतित व्यक्तियों के यहां से भिक्षा ग्रहण वर्जित है।

वेदयज्ञरहीनानां प्रपन्नानां स्वकर्मसु॥ ५६॥

द्रृह्मचारी हरेद्दैश्यं गृहेभ्यः प्रयतोऽन्वहम्।

वेदों के ज्ञाता, यज्ञादि सम्पत्र करने वाले और अपने वर्णानुकूल कर्मों का सम्पादन करने वाले लोगों से ही ब्रह्मचारी को प्रतिदिन यद्य से भिक्षाचरण करना चाहिए।

गुरोः कुले न भिक्षेत न ज्ञातिकुलवस्तुषु॥ ५७॥

अलाभे त्वन्यगेहानां पूर्वं पूर्वं विकर्जयेत्।

गुरु के कुल से, अपने सगे सम्बन्धियों के कुल (मामा आदि) और मित्र के परिवार से ब्रह्मचारी को भिक्षा नहीं मांगनी चाहिए। अन्य गृहस्थ से भिक्षा न मिलने पर उपरोक्त

पूर्व-पूर्वं कुलों को छोड़ देना चाहिए अर्थात् परवतीं बन्धु-बाधव, मामा आदि के परिवार से भिक्षा माँग लेना चाहिए।

सर्वं वा विद्यरेत्यामं पूर्वोक्तानामसम्भवे॥ ५८॥

नियम्य प्रयतो वाचं दिशस्त्वनवलोकयन्।

यदि पूर्वोक्त सभी गृहों से भिक्षा मिलना संभव न हो, तो यद्यपूर्वक वाणी को नियन्त्रित करके, इधर-उधर दूसरी दिशा में दृष्टि न डालनी चाहिए।

समाहत्य तु तद्देश्यं पवेदद्रममायादा॥ ५९॥

भुजीत प्रयतो नित्यं वाग्यतोऽनन्वयानमः।

उपर्युक्त भिक्षानार से प्राप्त (कच्चे) अन्नादि का संग्रह करके उसे सावधानीपूर्वक पकाना चाहिए। तत्पश्चात् वाणी को नियन्त्रित करके एकाग्राचित होकर खाना चाहिए।

भैश्येण वर्तयेत्रित्यपेक्षादी भवेद्वत्ती॥ ६०॥

भैश्येण वृत्तिनो वृत्तिरूपवाससमा स्मृता।

ब्रह्मचारी नियम भिक्षा से जीवन निर्वाह करे और किसी एक व्यक्ति का अब नहीं ग्रहण करना चाहिए (प्रतिदिन भित्र-भित्र व्यक्ति के घर से भिक्षा संग्रह करनी चाहिए)। इसलिए ब्रह्मचारी को भिक्षा द्वारा जीवन-निर्वाह की विधि को उपवास के समान माना गया है।

पूजयेदशने नित्यमद्यायैतद्वुत्सयन्॥ ६१॥

द्वाष्टा हव्येत्रसीदेव ततो भुजीत वाग्यतः॥ ६२॥

अत्र का (प्राणधारक देवरूप में मानकर) प्रतिदिन पूजन करें और आदरपूर्वक, बिना तिरस्कार के (अर्थात् यह अच्छा नहीं, वह अच्छा नहीं यह कहे बिना) उसे ग्रहण करना चाहिए। अत्र को देखते ही पहले स्वस्थ और प्रसन्न होकर, हिंर वाणी को नियन्त्रित कर भोजन करना चाहिए।

अनारोग्यमनायाद्युष्यपस्वर्णकातिपोजनम्।

अपुण्यं लोकविद्विष्ट तस्मात्तत्परिवर्जयेत्॥ ६३॥

प्राइमुखोऽन्नानि भुजीत सूर्याभिमुख एव वा।

नाद्यादुदद्यमुखो नित्यं विविरेष सनातनः॥ ६४॥

प्रक्षाल्य पाणिपादो च भुजानो द्विरूपस्पृशेत्।

शूची देशे सामासीनो भुजन्ना च द्विरूपस्पृशेत्॥ ६५॥

अधिक मात्रा में भोजन करना आरोग्य से रहित, आयु को न बढ़ाने वाला, स्वर्णीय मुख न देने वाला, अपुण्य करने वाला तथा सभी लोगों में तिरस्कृत होता है, अतः उसका परिवारण कर देना चाहिए। पूर्व की ओर मुख करके अथवा सूर्य के सम्मुख होकर ही अत्र ग्रहण करे। उत्तर की ओर

मुख करके कभी भोजन न करे— यही सनातन काल से चला आ रहा नियम है। दोनों हाथ और पैर धोकर भोजन करने से पूर्व दो बार आचमन करे। किसी पवित्र स्थान में बैठकर ही भोजन करे और पुनः दो बार आचमन करे।

इति श्रीकृष्णपुराणे उत्तरार्द्धे व्यासगीतामूर्णनिष्टमु ऋग्विद्यायां
योगशास्त्रे ऋग्विद्यामसंवादे ह्यादशोऽध्यायः॥ १२॥

ब्रयोदशोऽध्यायः

(व्यासगीता-आचमन आदि कर्मयोग)

व्यास उवाच

भुक्त्वा पीत्वा च सुप्त्वा च स्नात्वा रथ्योपसर्पणे।
ओष्ठौ विलोपकौ स्फृट्वा वासो विपरित्याय च॥ १॥
रेतोमूर्पूरीषाणामुत्सर्गेऽयुक्तभाषणो।
स्त्रीवित्वाव्यवनारम्भे कासश्चासागमे त्वया॥ २॥
चत्वरं वा श्मशाने वा सपागम्य द्विजोत्पमः।
सम्ययोरुभयोस्तद्वाचाचानोऽप्यावमेत्युनः॥ ३॥

ज्ञासजी बोले— भोजन करके, पानी पीकर, निदा से उठकर, स्नान करने पर, राह चलते समय, रोमविहीन होंठों का स्पर्श करने पर, वस्त्र पहनने पर, तीर्य-मूत्र-मल का त्याग करने पर, असंगत वार्तालाप करने या धूकने के बाद, अध्ययन से पहले खाँसी आने या सांस छोड़ने पर, आंगन या श्मशान को पार करने पर तथा दोनों संध्या समय ग्राहणों को पहले एक बार आचमन किए रहने पर भी, पुनः आचमन करना चाहिए।

चण्डालम्लेच्छसंभाषे स्त्रीशृङ्गोचित्तुभाषणो।
उच्छिष्टुं पुरुषं स्फृट्वा भोज्यञ्जापि त्वयाविषम्॥ ४॥

चण्डाल और म्लेच्छ से बात करने पर, खी-शूद्र अथवा उच्छिष्ट व्यक्ति के साथ बातचीत करने, उच्छिष्ट पुरुष का या वैसे ही उच्छिष्ट भोजन स्पर्श करने पर आचमन करना चाहिए।

आवाप्तेदशुपाते वा लोहितस्य तैव च।
भोजने सम्ययोः स्नात्वा त्वागे मूर्पुरीषयोः॥ ५॥
आचानोऽप्यावमेत्युप्त्वा सकूलसकूदथाव्ययः।
अन्वर्यवाप्तालम्भे स्फृट्वा प्रयत्नेव च॥ ६॥

अन्त्र या रक्त प्रवाहित होने पर, भोजन, संधावन्दन, स्नान करने और मल-मूत्र त्यागने पर, पहले आचमन किया

हो, तब भी आचमन करना चाहिए। निदा के पश्चात् या अन्यान्य कारणों के लिए एक-एक बार आचमन अथवा अग्नि, गाय या पवित्र वस्तु (गंगाजल) का स्पर्श करना चाहिए।

स्त्रीणामश्चात्मनः स्पर्शं नीर्वी वा परित्याय च।

उपस्थितेऽवलञ्जनात्मस्तृणं वा भूमिभेव च॥ ७॥

खी का शरीर, उसका कटिवन्धन या वस्त्र छू लेने से शुद्धि के लिए जल, भोगा हुआ तृष्ण या पृथ्वी का स्पर्श करना चाहिए।

केशानां चात्मनः स्पर्शं वाससोऽक्षालितस्य च।

अनुष्णापिरफेनाभिर्विशुद्धादित्य वाण्यतः॥ ८॥

शौचेष्टुः सर्वदाचामेदासीनः प्रागुद्दम्युखः।

अपने ही केशों का स्पर्श तथा विना धुले हुए वस्त्र का स्पर्श करके अनुष्णा (गरम न हो) केन से रहित विशुद्ध जल से धौन होकर जलस्पर्श करे। इस प्रकार बाह्यशुद्धि की इच्छा रखने वाले को पूर्व या उत्तर की ओर मुख करके बैठकर आचमन संवर्दा करना चाहिए।

शिरः प्रावृत्य कण्ठं वा पुक्तकचाशिखोऽपि च॥ ९॥

अकृत्वा पादयोः शौचयाचानोऽप्यशुद्धिर्वेत्।

सोपानत्को जलस्थो वा नोणीयी चाच्चपेत्रुषः॥ १०॥

शिर को ढाँककर अथवा कण्ठ को वस्त्र से ढाँककर, कमरबंध और शिखा को खोल कर तथा पैरों को शुद्ध किये विना आचमन करने वाला पुरुष अपवित्र ही होता है। जूते पहने हुए जल में स्थित होकर और पगड़ी पहने हुए बुद्धिमान् पुरुष को कभी आचमन नहीं करना चाहिए।

न दैवं वर्षयाराभिर्हस्तोच्छिष्टे तथा दुषः।

नैकहस्तार्पितजलैर्विना सूत्रेण वा पुनः॥ ११॥

न पादुकासनस्थो वा बहिर्जानुकरोऽपि च।

विशुद्धादिकरामुकुर्वन् नोच्छिष्टस्थैर्ज च॥ १२॥

न दैवाङ्गुलिभिः शस्त्रं प्रकुर्वन्नव्यानसः।

उसी प्रकार ज्ञानी पुरुष को वर्षा की धाराओं से आचमन नहीं करना चाहिए। हाथ के उच्छिष्ट होने पर, एक ही हाथ से अपित जल से, यज्ञोपवीत के न होने से, पादुकासन (खड़ाऊँ) पर स्थित होकर, जानुओं के बाहर हाथों को रखते हुए, वैश्य और शूद्र आदि के हाथों से छोड़े हुए तथा उच्छिष्ट जल से आचमन नहीं करना चाहिए। आचमन के समय अङ्गुलियों से आवाज नहीं करनी चाहिए तथा

अन्यमनस्क होकर (एकाग्रताशून्य होकर) कभी आचमन नहीं करना चाहिए।

न वर्णरमदुषुभिर्वैवाप्रचुरोदके॥ १३॥
न पाणिष्ठुभितपिर्वा न बहिष्कृष्म एव वा।

जो जल (स्वाभाविक) वर्ण और रस (स्वाद) से दूषित हो या बहुत ही थोड़ा हो तथा जिसमें हाथ डालकर क्षुभित कर दिया गया हो, उससे बगल से बाहर हाथ रखकर भी आचमन नहीं करना चाहिए।

हृद्याभिः पूयते विषः कण्ठश्चाभिः क्षत्रियः शुचिः॥ १४
प्राशिताभिस्तथा वैश्यः स्त्रीशुद्रौ स्पर्शतोऽभ्यसः।

ब्राह्मण हृदय तक पहुँचने वाले आचमन के जल से पत्रित हो जाता है और कण्ठ तक जाने वाले जल से क्षत्रिय की शुद्धि हो जाती है। वैश्य तो प्राशित (मुख में डाले) जल से ही शुद्ध हो जाता है तथा रुद्री और शुद्ध जल के स्पर्श मात्र से ही शुद्धि को प्राप्त कर लेते हैं।

अङ्गुष्ठपूलरेखाया तीर्थं द्वाहापिहोच्छते॥ १५॥

प्रदैशन्याङ्गु यन्मूलं पितृतीर्थमनुत्तमप्।
कनिष्ठामूलतः एषाकाजापत्यं प्रव्यक्षते॥ १६॥
अङ्गुष्ठप्रे स्मृतं दैवं तदेवार्थं प्रकीर्तिम्।
मूलं वा दैवामादिष्टमानेयं प्रथयः स्मृतम्॥ १७॥

अङ्गुष्ठ के मूल की रेखा में द्वाहातीर्थ कहा जाता है। अङ्गुष्ठ से प्रदेशिनों अङ्गुलि के मध्य का भाग उत्तम पितृतीर्थ कहा गया है। कनिष्ठा के मूल से पीछे प्राजापत्य तीर्थ कहा जाता है। अङ्गुलि के अग्रभाग में दैवतीर्थ है, जो देवों के लिये प्रसिद्ध है। अथवा (अङ्गुलि के) मूलभाग में दैव आदिष्ठ है और मध्य में आनेय कहा गया है।

तदेव सौमिकं तीर्थयेवं ज्ञात्वा न मुहूर्ति।
द्वाहोणैव तु तीर्थेन द्विजो नित्यमुपस्थृतेत्॥ १८॥
कायेन वाय दैवेन चायाचानेते शुचिर्भवेत्।
त्रिरात्मामेदपः पूर्वं द्वाहाणः प्रयत्नस्ततः॥ १९॥

वही सौमिक (सोम) तीर्थ है, ऐसा जानकर मनुष्य कभी भी मोह को प्राप्त नहीं होता। द्वाहाण को द्वाहातीर्थ से ही नित्य उपस्थर्ण करना चाहिए। काय (प्राजापत्य) तीर्थ अथवा दैवतीर्थ से भी उसी भाँति आचमन करने पर शुद्ध हो जाता है। द्वाहाण को सब से पहले संयत होकर तीन बार आचमन करना चाहिए।

संवत्ताङ्गुष्ठपूलेन पुण्यं वै समुपस्थृतेत्।
अङ्गुष्ठानापिकाभ्यानु स्पृशेत्रेवद्यं ततः॥ २०॥

तर्जन्यहुष्ठयोगेन स्पृशेत्रासापुटद्यम्।
कनिष्ठाङ्गुष्ठयोगेन त्रवणे समुपस्थृतेत्॥ २१॥

संवत्त अङ्गुष्ठ के मूलभाग से सुख का स्पर्श करना चाहिए। अनन्तर अङ्गुष्ठ और अनामिका से दोनों नेत्रों का स्पर्श करना चाहिए। तर्जनी और अङ्गुष्ठ के योग से दोनों नासिका के छिद्रों का स्पर्श करे और कनिष्ठिका और अङ्गुष्ठ के योग से दोनों कानों का स्पर्श करे।

सर्वाङ्गुलीभिर्वाहु च हृदयनु तलेन न वा।
नाभिः शिर्षु सर्वाभिरङ्गुष्ठेनाव वा द्वयम्॥ २२॥

सभी अङ्गुलियों से दोनों भुजाओं, हथेली से हृदय तथा अङ्गुठे या सारी अङ्गुलियों से नाभि और सिर का स्पर्श करें।

त्रिः प्रास्त्रीयातदभ्यस्तु सुप्रीतास्तेन देवताः।
द्रहा विष्णुपूर्वेष्टः अवनीत्यनुशुश्रुम॥ २३॥

हमने यह सुना है कि जल का तीन बार आचमन करने से ब्रह्मा, विष्णु और महेश्वर— तीनों देव प्रसन्न होते हैं।

गंगा च यमुना चैव प्रीयेते परिमार्जनन्।
संस्पृष्टयोर्लोचनयोः प्रीयेते शशिभासकरौ॥ २४॥

परिमार्जन (युखप्रक्षालन) करने से गंगा और यमुना प्रसन्न होती हैं। तथा दोनों नेत्रों का स्पर्श करने से चन्द्रमा और सूर्य प्रसन्न होते हैं।

नासापूत्रदस्त्री प्रीयेते स्पृष्टे नासापुटद्यै।
श्रोत्रयोः स्पृष्टयोस्तद्वृत्तीयेते चानिलानलौ॥ २५॥

नासापूत्रों का स्पर्श करने से अश्विनीकुमार प्रसन्न होते हैं। उसी प्रकार कानों के स्पर्श से वायु और आनि प्रसन्न होते हैं।

संस्पृष्टे हृदयेवास्य प्रीयन्ते सर्वदेवताः।
मूर्विं संस्पृश्नानादेव प्रीतस्तु पुरुषो भवेत्॥ २६॥

हृदय के स्पर्श से सारे देवता प्रसन्न होते हैं और सिर पर स्पर्श करने से परम पुरुषरूप विष्णु प्रसन्न होते हैं।

नोच्छिष्टं कुर्वते नित्यं विष्णुयोऽङ्गु नवनिति या॥
दन्तानाहृन्तलग्नेषु जिह्वाष्टैरसुचिर्भवेत्॥ २७॥

(आचमन करते समय) शरीर पर गिरने वाली अत्यन्त सूक्ष्म जल की खूंदों से अङ्ग जूत्य नहीं होता। दाँतों में लगी हुई वस्तु, दाँतों के समान मानी जाती है, परन्तु जिह्वा और ओष्ठ के स्पर्श से वह अपवित्र हो जाती है।

स्पृशनि विन्दवः पादौ य आचापयतः परान्।
भूमिकास्ते समाजेया न तैरप्रयतो भवेत्॥ २८॥

दूसरे व्यक्ति को आचमन कराते समय, यदि जल की चूंद देने वाले के पैरों पर गिर पड़े, तो उन जलकणों को विशुद्ध भूमि का जल के समान ही मानना चाहिए, उससे वह अपवित्र नहीं होता।

पशुपक्षे च सोमे च ताप्यूलस्य च भक्षणे।
फले पूनेशुदण्डे च न दोषं प्राह वै मनुः॥ २९॥

सोमरस और मधुपक्ष (दही-शी-मिश्रित मधु) का पान करने तथा ताम्बूल (पान), फल-मूल और इशुदण्ड का भक्षण करने में मनु ने कोई दोष नहीं माना है।

प्रद्युग्रात्रोदपानेषु यद्युच्छिष्टो भवेदिद्वजः।
भूमौ निक्षिप्य तद्रव्यमाचम्याभ्युक्तिपेतः॥ ३०॥

परन्तु प्रभूत अन्न और जलपान कर लेने से यदि ब्राह्मण उच्छिष्ट हो जाय, तो उसे वे सभी द्रव्य भूमि पर रखकर आचमन कर लेना चाहिए। परन्तु आचमन के बाद फिर उन्हें ग्रहण नहीं करना चाहिए।

तैजसं वा समादाय यद्युच्छिष्टो भवेदिद्वजः।
भूमौ निक्षिप्य तद्रव्यमाचम्याहुयते तु तत्॥ ३१॥

यदि तैजस (गर्म घृत, सुवर्ण आदि) पदार्थ हाथ में लेकर ब्राह्मण जूठ हो जाय, तो उस वस्तु को भूमि पर रख कर पहले आचमन करके तत्पक्षात् उसे जल द्वारा ही स्विकृत कर लेना चाहिए।

यद्युपन्तं समादाय भवेदुच्छेषणान्वितः।
अनिद्यावैव तद्रव्यमाचानान् युचितापियात्॥ ३२॥

बलादिषु विकल्पः स्वात्र स्पृष्टा चैवभेव हि।
यदि तदतिरिक्त किसी अन्य को ग्रहण कर कोई उच्छिष्ट हो जाय, तो उस द्रव्य को (भूमि पर) बिना रखे ही आचमन कर लेने पर पवित्र हो जाता है। परन्तु बल आदि में विकल्प होता है। इस प्रकार से स्पर्श न करके ही होता है अर्थात् शुद्धि के लिए वस्त्र को अलग कर देना चाहिए।

अरण्येऽनुदके रात्रौ चौरव्याशाकुले पश्य॥ ३३॥
कृत्वा मूत्रं पुरीषं वा द्रव्यहस्ते न दुष्यति।

निदाय दक्षिणे कर्णं ब्रह्मसूत्रमुद्दमुखः॥ ३४॥
अहि कुर्याच्छक्तन्मूत्रं रात्रौ शेहक्षिणामुखः।

अन्तर्दूष यहाँ काटः पवैलोऽस्तुषेन वा॥ ३५॥
प्रावृत्य च शिरः कुर्याद्विष्मृतस्य विसर्जनपृ।

अरण्य में, बिना जल वाले स्थान में, रात्रि में, चौर तथा व्याघ्र से समाकुलित मार्ग में, मूत्र तथा मल को करके भी

जो हाथ में द्रव्य रखता है, वह दूषित नहीं होता। दक्षिण कर्ण में ब्रह्मसूत्र (यज्ञोपवीत) को रखकर उत्तर की ओर मुख करके दिन में मल और मूत्र का त्याग करना चाहिए और रात्रि में दक्षिणाभिमुख होकर त्याग करना चाहिए। उस भूमि को काष्ठ, पत्ते, ढेले और तुणों से ढाँक दें। शिर को वस्त्र से लपेटकर ही मल-मूत्र का विसर्जन करना चाहिए।

छायाकूपनदीगोक्खवैत्यानः पश्य भस्यसु॥ ३६॥

अग्नी वेश्म शमशाने च विष्णुप्रे न समाचरेत्।

न गोपये न कृष्णे वा महावृक्षे न शाहवले॥ ३७॥

न तिष्ठन्वा न निर्वासा न च पर्वतमस्तके।

न जीर्णदिवावतने न वल्मीके समाचरेत्॥ ३८॥

छाया, कूप, नदी, गोष्ठ, चैत्य के अन्दर, मार्ग, भस्म, अग्निवेश्म, शमशान में कभी भी मल-मूत्र का त्याग नहीं करना चाहिए। गोपथ में, जुती हुई भूमि में, महावृक्ष के नीचे, हरी घास वाली जमान पर, खड़े होकर या निर्वासन होकर, पर्वत की चोटी पर, जीर्ण देवता के आयतन में, वल्मीक में कभी भी मल-मूत्र का त्याग नहीं करना चाहिए।

न सासन्त्वेषु गर्त्तेषु नागच्छन्वा समाचरेत्।

तुषाङ्गारकपालेषु राजपार्णे तत्त्वं च॥ ३९॥

न क्षेत्रे विमले चापि न तीर्थे न चतुर्ष्वये।

नोद्याने न समीपे वा नोधरे न पराशुचौ॥ ४०॥

जीवों से युक्त गत्तों में, चलते हुए, तुषाङ्गार (छिलकों के अंगों पर) कपाल (मिट्टी के बर्तनों) में तथा राजमार्गों, स्वच्छ क्षेत्र में, तीर्थ में, चौराहे पर, डचान में, ऊपर भूमि में तथा परम अपवित्र स्वल में भी मल-मूत्र का त्याग नहीं करना चाहिए।

न सोपानत्यादुको वा गन्ता यानान्तरिक्षगः।

न चैवाभिमुखं स्त्रीणां गुरुद्वाहाणयोर्न च॥ ४१॥

जूते पहने हुए तथा पादुका पहने हुए गमन करने वाला, चान में अन्तरिक्ष गामी होकर, लिखों के सामने और गुरुद्वाहाणों के समक्ष भी मल-मूत्र का उत्सर्ग नहीं करें।

न देवदेवालयोर्नामापि कदाचन।

नदीं ज्योतीषि वीक्षित्वा न वार्याभिमुखोऽथ वा।

प्रत्यादित्यं प्रत्यनलं प्रतिसोषं तत्त्वं च॥ ४२॥

देवता, मन्दिर तथा नदी के भी सामने, ग्रह-नक्षत्रों को या इधर-उधर देखते हुए, बायु के बहाव के सामने तथा अग्नि-चन्द्रमा या सूर्य को और मुख करके मल-मूत्र का कभी भी त्याग न करें।

आहत्य प्रतिकां कूलाल्लेपगच्छापकर्षणात्।
कुर्यादतन्नितः शौचं विशुद्धैद्वतोदकैः॥४३॥

लेप और दुर्गन्ध को दूर करने के लिए आलस्य त्यागकर नदी तट से लाई गई मिट्टी और उबाए गए शुद्ध जल से शौच करना चाहिए।

नाहरेमृतिकां विग्रः पांशुलान्नं च कर्हमान्।
न पार्मांत्रोपरादेशाच्छौचोच्छिष्टात्मैव च॥४४॥

ब्राह्मण को चाहिए कि वह धूल, कीचड़, मार्ग, ऊपर भूमि और दूसरे के शौच से बचो हुई मिट्टी को कभी भी ग्रहण न करें।

न देवायतनात्कृपाद्वापादन्तर्जलात्मया।
उपस्पृशेत्तो नित्यं पूर्वोक्तेन विद्वन्तः॥४५॥

मन्दिर, कुंआ, गाँव या जल के भीतर से शौच के लिए मिट्टी नहीं लेनी चाहिए। शौच के अनन्तर पूर्वोक्त विधि से प्रतिदिन आचमन करना चाहिए।

इति श्रीकृष्णपुराणे उत्तरादेव व्यासगीतामूर्च्छनिष्ठत्वं द्वादशिद्विद्यायां
योगज्ञास्त्रे ऋषिव्याससम्बन्धादे त्रयोदशोऽध्यायः॥ १३॥

चतुर्दशोऽध्यायः

(व्यासगीता-शिष्यद्वाचारी के धर्म)

व्यास उवाच

एवं दण्डादिभिर्युक्तः शौचाचारसमन्वितः।
आहूतोऽध्ययनं कुर्याद्विक्षमाणो गुरोर्मुखम्॥ १॥

व्यासगीता बोले— पूर्वोक्त (पलाश) दण्डादि धारण करने वाले और शौचादि नियमों से युक्त द्वाचारी को गुरु के द्वारा बुलाए जाने पर उनके मुख की ओर देखते हुए अर्थात् गुरु के सामने बैठकर अध्ययन करना चाहिए।

नित्यमुद्धृतपाणिः स्यात्सव्याचारसमन्वितः।
आस्यतपिति चोक्तः सत्त्वासीताभिमुखं गुरोः॥ २॥

सम्भ्या-वन्दन करने वाले, सदाचारी द्वाचारी को दाहिना हाथ (उत्तरीय वस्त्र से) ऊपर उठाकर गुरु के द्वारा ‘बैठ जाओ’ ऐसा आदेश मिलने पर उनकी ओर अभिमुख होकर बैठना चाहिए।

प्रतिश्रवणसम्भावे शयानो न समाचरेत्।
आसीनो न च तिष्ठन्ता उत्तिष्ठन्ता पराङ्मुखः॥ ३॥

लेटकर, बैठकर, खोजन करते हुए, दूर खड़े रहकर या पीछे की ओर मुँह करके (गुरु की) आङ्ग का ग्रहण या उनसे वार्तालाप नहीं करना चाहिए।

न च शश्यासनञ्जास्य सर्वदा गुरुसन्निधौ।
गुरेष्व चक्षुर्विषये न चक्षेष्टासनो भवेत्॥ ४॥

शिष्य का आसन तथा उसकी शश्या, सदैव गुरु के स्थान के बराबर नहीं होनी चाहिए अर्थात् उनसे नीची होनी चाहिए तथा गुरु की आँखों के सामने उसे अपनी इच्छानुसार हाथ-पैर फैलाकर नहीं बैठना चाहिए।

नोदाहरेदस्य नाम परोक्षपरि केवलम्।
न चैवास्यानुकूर्वात गतिभावितचेष्टिम्॥ ५॥

गुरु के परोक्ष में केवल उनके नाम का (उपाधि आदि से रहित) उधारण नहीं करना चाहिए और न ही उनके चलने-बोलने आदि विभिन्न चेष्टाओं का अनुकरण करना चाहिए।

गुरोर्यत्र प्रतीवादो निन्दा चापि प्रवर्तते।

कर्णो तत्र पिण्डात्वयौ गतव्यं वा ततोऽन्यतः॥ ६॥

जहाँ गुरु का विरोध या निन्दा हो रही तो, वहाँ शिष्य को अपने दोनों कान (होथों से) ढैंक सेने चाहिए या उस स्थान से अन्यत्र चला जाना चाहिए।

दूरस्थो नार्वयेदेनं न कृन्दो नानिके स्त्रियाः।

न चैवास्योत्तरं तृष्णात् स्थिते नासीत सन्निधौ॥ ७॥

दूर लड़े होकर या झोंझिल अवस्था में अथवा लौं के समीप गुरु की पूजा नहीं करनी चाहिए। उनकी बातों का प्रत्युत्तर नहीं देना चाहिए और यदि वे खड़े हों तो उनके समक्ष शिष्य को बैठना नहीं चाहिए।

उद्कृष्टं कुशान् पुण्यं समिष्योऽस्याहरेत्पदा।

मार्जनं लेपनं नित्यमङ्गनां वा समाचरेत्॥ ८॥

नास्य निर्माल्यं शयनं पादुकोपनहावपि।

आक्षमेदासनं छायामासनीं वा कदाचन॥ ९॥

(गुरु के लिये) सर्वदा जलकलश, कुशायें, पुण्य और समिधाओं का आहरण करना चाहिए। उनके अंगों का मार्जन (स्नान आदि), लेपन (चन्दन) नित्य करे। गुरु के निर्माल्य (गुरु की माला आदि) पर शयन न करे और इनकी पादुका तथा जूतों, आसन और छाया आदि का भी लंघन न करे और कभी भी उनके आसन पर न बैठे।

साष्ट्येहनकाषादादेनं कृत्यज्ञासमै निवेदयेत्।

अनापृच्छुच न गतव्यं भवेत्त्रियहिते रतः॥ १०॥

न पादौ सारयेदस्य सत्रियाने कदाचन।

(गुरु के लिये) दनकाष्ठ (दौंतुन) आदि का प्रबन्ध करें और जो भी कृत्य हो उन्हीं को समर्पित कर दें। गुरु से बिना पूछे ब्रह्मचारी शिष्य को कहीं भी नहीं जाना चाहिए और सदा गुरुदेव के प्रिय कार्य तथा हित में लगा रहना चाहिए। उनके सत्रियान में कभी भी अपने पैरों को नहीं फैलाना चाहिए।

जृष्णाहास्यादिकञ्चैव कण्ठप्रावरणं तथा॥ ११॥

वज्ज्येत्सत्रियौ नित्यमयास्फोटतर्पं वचः।

यथाकलमयीयोत् यावत्र विमना गुरुः॥ १२॥

जैंभाई, हास्यादि तथा कण्ठ का आच्छादन (गले में हार आदि पहनना) और ताली बजाना या उद्घास्त्र से बोलना नित्य ही गुरु की सत्रियि में वर्जित रखना चाहिए। उस समय तक अध्ययन करता रहे, जब तक गुरुदेव थक न जायें।

आसीताथ गुरोऽस्ते फलके वा सपाहितः।

आसने शयने याने नेकसिष्टेऽत्कदाचन॥ १३॥

धावनमनुयावेत् गच्छन्तङ्गानुगच्छति।

गुरु के कहने पर ही समाहित होकर फलक (काश्यासन) पर बैठें। आमन, शयन और यान में कभी भी एक साथ नहीं बैठना चाहिए। गुरुदेव के दौड़ने पर, स्वयं भी उनके पीछे दौड़े और उनके चलने पर शिष्य को फौछे चलना चाहिए।

गोऽक्षोऽत्यानप्रासादप्रस्तरेषु कटेतु च॥ १४॥

आसीत् गुरुणा सार्वै शिलाफलकर्त्तृषु च।

जितेन्द्रियः स्यात्सततं वश्यात्माऽक्षोषनः शुचिः॥ १५॥

प्रयुक्तीत् सदा वाचं पशुं रहितभाविणीम्।

बैल, अस, या ऊँट की सवारी, प्रासाद, प्रस्तर तथा चटाई पर अथवा शिलाखण्ड और नाव में गुरु के साथ बैठ सकता है। ब्रह्मचारी को निरन्तर जितेन्द्रिय, मन को वश में रखने वाला, शुचि और ऋषि रहित होना चाहिए। सर्वदा हितकारी और मधुर वाणी का प्रयोग करे।

गच्छमाल्यं रसं भव्यं शुक्लं प्राणिविहिंसनम्॥ १६॥

अभ्यङ्गाङ्गोपानच्छ्रव्यारणमेव च।

कापं लोभं भयं निदं गीतवादिश्वनर्तनम्॥ १७॥

दूतं जनपरीवादं स्त्रीप्रेक्षालभ्यनं तथा।

परोपशांतं पैशुन्यं प्रवल्लेन विवर्जयेत्॥ १८॥

ब्रह्मचारी को यत्पूर्वक गच्छ, माल्य, भव्य सुगन्धित रस, प्राणियों की हिंसा, अभ्यङ्ग (मालिश) अङ्गन, उपानत, छत्र

धारण, काम, ऋषि, लोभ, भय, निदा, गीत, वादित्र, नृत्य, दूत, जनों की निन्दा, स्त्री को देखना, आलम्भन, दूसरों पर उपचात, पैशुन्य— इन सब का परिवर्जन कर देना चाहिए।

उद्कुर्ष्यं सुप्तनसो गोशकून्युजिकां कुशान्।

आहोरेष्वावदर्थानि भैक्ष्याङ्गाहरहुरुरेत्॥ १९॥

गुरु के लिए उनकी आवश्यकतानुसार जल का घड़ा, फूल, गोबर, मिट्टी और कुश आदि लाने चाहिए और प्रतिदिन प्रिक्षाटन भी करना चाहिए।

कृतञ्च लवणं सर्वं वर्ज्यं पर्युषितञ्च यत्।

अनुत्यदर्शीं सततं भवेद् गीतादिनिस्युहः॥ २०॥

लवणयुक्त सब प्रकार की रसोई का त्याग करना चाहिए और बासी रसोई का भी त्याग करना चाहिए। कभी भी नृत्य न देखें और गायन आदि के प्रति उदासीन रहना चाहिए अर्थात् न तो गीत गाने और सुनने नहीं चाहिए।

नादित्यं वै सर्पीक्षेत न चरेदन्तश्वावनप्।

एकान्तमशुचिलक्षीभिः शुद्धान्तरप्रिभावणप्॥ २१॥

ब्रह्मचारी को सूर्य के सामने देखना नहीं चाहिए और न ही (अधिक) दौंत साफ करने चाहिए। एकान्त में बैठकर अपवित्र स्त्री, शुद्ध और चाण्डालादि के साथ बातालाप भी नहीं करना चाहिए।

गुरुप्रियार्थं सर्वं हि प्रयुक्तीत न कापतः।

प्रलापकर्याणं स्नानपाचर्यैदौ ऋष्युनान्॥ २२॥

गुरु को जो प्रिय लगे वैसे सब कार्यों में प्रवृत्त रहना चाहिए। अपनी इच्छा से कोई कार्य न करे। ब्रह्मचारी को खूब मल-मल कर स्नान नहीं निकालना चाहिए (केवल शरीर पवित्र करने हेतु स्नान करना चाहिए)।

न कुर्यान्मानसं विप्रो गुरोस्त्वां बदाचन।

मोहद्वा यदि वा लोभात् त्वक्त्वैवं पतितो भवेत्॥ २३॥

ब्राह्मण को गुरुजनों को छोड़ने की बात मन में कदापि नहीं लानी चाहिए। लोभ या मोहवश गुरु का त्याग करने से पतित होना पड़ता है।

लौकिकं वैदिकञ्चापि तथाव्यात्मिकमेव च।

आददीत यतो ज्ञानं न तं दुष्क्रेत्कदाचन॥ २४॥

ब्राह्मण ने जिस गुरु से लौकिक, वैदिक और आध्यात्मिक ज्ञान ग्रहण किया हो, उस आचार्य के प्रति द्वोह कभी नहीं करना चाहिए।

गुरोरप्यवलिमस्य कार्याकार्यमजानतः।

उत्थं प्रतिपन्नस्य मनुस्त्वां समद्वीत॥ २५॥

परन्तु यदि वह गुरु अहंकारी, कर्तव्य और अकर्तव्य को न जानने वाला, कुमार्गामी हो तो, उस का भी त्याग कर देना चाहिए, ऐसा मनु ने कहा है।

गुरोर्गुरुं सञ्चिह्नते गुरुवद्वक्तिमाचरेत्।

न ज्ञातिसही गुरुणा स्वान् गुरुनभिवादेत्॥ २६॥

अपने विद्यागुरु के भी गुरु जब उपस्थित हों, तो गुरु के समान ही उनकी भक्ति करनी चाहिए तथा (गुरुगृह में रहते हुए) उनकी आज्ञा के बिना अपने पूज्यजनों का अभिवादन न करें।

विद्यागुरुष्टेतदेव नित्या वृत्तिः स्वयोनिषु।

प्रतिषेधसु चायर्थाद्वितं चोपदिशत्स्यपि॥ २७॥

इसी प्रकार अपने कुल में अर्थम का प्रतिषेध करने वालों में और हितकारी उपदेश देने वालों में भी सदा गुरु के समान ही वर्तन करना चाहिए।

श्रेष्ठसु गुरुवद्वर्ति नित्यमेव समाचरेत्।

गुरुपुत्रेषु दारेषु गुरोऽत्रैव स्ववद्वयुषु॥ २८॥

सदा हित चाहने वाले गुरु के पुत्रों, गुरु की पत्रियों और अपने बन्धुओं के प्रति भी अपने गुरु के समान ही आचरण करना चाहिए।

बालः संमानयन्मान्यान् शिष्यो वा यज्ञकर्मणि।

अध्यापयन् गुरुसुतो गुरुवन्मानर्थहृति॥ २९॥

उत्सादने वै गात्राणां स्नापनेच्छिष्टभोजने।

न कुर्यादगुरुपुत्रस्य पादयोः शौचमेव च॥ ३०॥

मान्य व्यक्तियों का सम्मान करने वाला बालक या यज्ञकर्म में संयुक्त शिष्य और अध्यापन करता हुआ गुरु का पुत्र भी गुरु के समान ही सम्मान के योग्य होता है। परन्तु (यह ध्यान रहे कि) उस गुरुपुत्र के शरीर की मालिश करना, स्नान करना, उसका उचित भोजन करना, पादप्रक्षालन करना आदि नहीं करना चाहिए।

गुरुवत्परिपूज्यात् सर्वाणि गुरुयोषितः।

असर्वर्णासु सम्पूज्याः प्रत्युत्थानाभिवादनैः॥ ३१॥

गुरु की जो पत्रियां समान वर्ण की हों तो वे गुरु के तुल्य ही पूजनीय होती हैं। किन्तु गुरु की असर्वर्णी पत्रियाँ उठकर तथा केवल नमस्कार कर अभिवादन के योग्य होती हैं।

अप्यकुर्वन् स्नापनश्च गात्रोत्सादनमेव च।

गुरुपत्न्या न कार्याणि केशानाश्च प्रसाधनम्॥ ३२॥

गुरु पत्री के शरीर में उटटन लगाना, स्नान कराना, शरीर की मालिश करना और केश प्रसाधन करना निषिद्ध है।

गुरुपत्नी तु युक्ती नभिवादेह पादयोः।

कुर्वते वन्दनं भूमावसावहमिति बृवन्॥ ३३॥

यदि गुरुपत्री युवावस्था की हो, तो उसका चरणसंर्शं कर प्रणाम नहीं करना चाहिए, अपितु ‘मैं अमुक नाम वाला आपका अभिवादन करता हूँ’, ऐसा कहकर केवल भूमि पर दंडबत् प्रणाम कर लेना चाहिए।

विप्रोष्य पादप्रहणमन्वहं चापिवादनम्।

गुरुद्वारेषु सर्वेषु सतां दर्पयनुस्परन्॥ ३४॥

परन्तु यदि शिष्य बहुत समय बाद प्रवास से लौटता है, तो सज्जनों के आचार-व्यवहार का स्मरण कर सभी गुरुपत्रियों का चरणसंर्शंपूर्वक अभिवादन करें।

मातृव्यसा मातुलाली शृङ्खुष्टाव पितृव्यसा।

संपूज्या गुरुपत्री च समस्ता गुरुपार्याः॥ ३५॥

मौसी, मामी, सास और बुआ (पिता की बहन), गुरुपत्री के समान पूजनीय होती हैं क्योंकि ये सभी गुरुपत्री के समान ही हैं।

प्रातुर्पर्यां च संग्राहा सर्वर्णाहन्यहन्यपि।

विप्रस्य तूपसंप्राप्ता ज्ञातिसप्यवियोषितः॥ ३६॥

पितृर्गिन्या पातुशु ज्यायस्यां च स्वसर्यपि।

मातृवद्वृत्तिमातिष्ठेन्माता ताप्यो गरीबसी॥ ३७॥

भाई की पत्री जो सर्वाणि हो, प्रतिदिन उसका भी अभिवादन करना चाहिए। विप्र की ज्ञाति-सम्बन्धी स्त्रियों का भी अभिवादन करना चाहिए। पिता तथा माता की बहन और अपनी बड़ी बहन का भी माता के समान ही आदर छहना चाहिए। किन्तु इन सबमें माता सब से अधिक गौरवयुक्त (प्रेरणा) होती है।

एवमाचारसंपन्नमातृपत्नतपदाभिकम्।

वेदमप्याप्येदूर्ध्वं पुराणाहृतिं नित्यशः॥ ३८॥

इस प्रकार के सदाचारों से सम्पन्न, जितेन्द्रिय और अदाभिक (दंभ न करने वाले) को वेद का अध्यापन कराना चाहिए और नित्य ही धर्म, पुराण तथा छः अङ्गों को पढ़ना चाहिए।

संवत्सरोषिते शिष्ये गुरुज्ञानमनिर्दिशन्।

हते दुष्कृतं तस्य शिष्यस्य वसतो गुरुः॥ ३९॥

जो शिष्य एक वर्ष तक गुरु के यहाँ (विद्याध्ययन के लिए) उनके पास रहता है, फिर भी शिष्य को गुरुज्ञान का निर्देश (उपदेश) प्राप्त नहीं होता, तो उस शिष्य के दुष्कृत (पाप) गुरु हरण कर लेते हैं अर्थात् उनमें आ जाते हैं।

आचार्यपुत्रः शुश्रूसानदो धार्मिकः शुचिः।

सूक्ष्मार्थदोऽरसः साखुः स्वाव्याव्यादेश्यर्थतः॥ ४०॥

कृतज्ञश्च तथाद्वोही मेधावी तूपकल्पः।

आसः प्रियोऽथ विधिवत् षड्ब्रह्माप्या द्विजातयः॥ ४१॥

एतेषु ब्रह्मणो दानमन्तव च यथोदितान्।

आचार्य संयतो नित्यमधीयोत्त हुद्वमुखः॥ ४२॥

आचार्य का पुत्र, शुश्रूषा करने वाला, ज्ञानदाता, धार्मिक, शुचि, वैदिक-सूक्तों का अर्थ देने वाला, अरसिक, सज्जन, दशलक्षणयुक्त धर्मानुसार स्वाध्याय करने वाला तथा कृतज्ञ, अद्रोही, मेधावी, उपकारी, आस, प्रिय — ये छः द्विजातियाँ विधिवत् अध्यापन के योग्य हैं। इनको वेदाध्यापनरूप दान देना चाहिए और अन्यत्र कहे हुओं को भी अध्यापित करें। आचमन करके, संयत होकर तथा उत्तर की ओर मुख करके नित्य ही अध्ययन करना चाहिए।

उपसंगृह तत्पादी वीक्षणाणो गुरोर्मुखम्।

अधीक्ष भो इति दूषद्विशापस्त्रिति नारभेत्॥ ४३॥

गुरु के चरणों में बैठकर उनके मुख को देखता हुआ ‘अध्ययन करो’ ऐसा बोलना चाहिए। और (गुरु के द्वारा) ‘विराम हो’ ऐसा कहने पर आरप्त नहीं करना चाहिए।

अनुकूलं समासीनः पवित्रैश्चैव पावितः।

प्राणाचार्यस्त्रितिः पूतस्तत ओङ्कारपर्हतिः॥ ४४॥

जैसे अनुकूल हो, उस ढंग से समासीन होकर, पवित्र कुशों द्वारा पवित्र हुआ, तीन बार प्राणाचार करके शुद्ध होकर वह ओङ्कार का उच्चारण के योग्य होता है।

ब्राह्मणः प्रणवं कुर्यादनो च विधिवद्विजः।

कुर्यादध्ययनं नित्यं ब्राह्मणलिकरस्तिः॥ ४५॥

हे ब्राह्मणो! वेदाध्ययन के अन्त में भी द्विजों को विधिवत् ओङ्कार का उच्चारण करना चाहिए तथा नित्य ब्रह्माङ्गलि (अध्ययन के समय गुरु के सामने विनयसूचक दोनों हाथ जोड़कर बैठने की स्थिति) बौधकर वेदाध्ययन करना चाहिए।

सर्वेषामेव भूतानां वेदशङ्कुः सनातनम्।

अधीयोत्ताप्ययं नित्यं ब्राह्मण्याच्यवतेऽन्यथा॥ ४६॥

सभी ग्राणियों के लिए वेद सनातन चक्षुस्वरूप है, इसीलिए प्रतिदिन वेदाध्ययन करना चाहिए, अन्यथा (वेदाध्ययन न करने से) ब्राह्मणत्व से च्युत हो जाता है।

योऽधीयोत ऋचो नित्यं क्षीराहुत्या सदेवताः।

प्रीणाति तर्पयन्त्येनं क्षापैस्तुसाः सदैव हि॥ ४७॥

जो नित्य ऋग्वेद की ऋचाओं का अध्ययन करता है और दूध की आहुति देकर देवताओं को प्रसन्न करता है। इससे तृप्त हुए देवता सभी कामनाओं की पूर्ति कर उसे सन्तुष्ट कर देते हैं।

यजुंध्यष्टीते नियतं दन्ता प्रीणाति देवताः।

सापान्यष्टीते प्रीणाति षताहुतिभिरन्यहृ॥ ४८॥

प्रतिदिन यजुर्वेद का अध्ययन करने वाला दधिरूप आहुति से देवताओं को प्रसन्न करता है तथा सामवेद का अध्ययन करने वाला षताहुति देकर प्रतिदिन देवों को प्रसन्न करता है।

अवर्वाहिन्नसो नित्यं मह्यां प्रीणाति देवताः।

वेदाहुनि पुराणानि मांसैष्ट तर्पयेत्सुरान्॥ ४९॥

प्रतिदिन अथर्ववेद का अध्ययन करने वाला मधु और वेदाङ्ग तथा पुराण का अध्ययन करने वाला विविध पदार्थों से देवताओं को प्रसन्न करते हैं।

अपां सामीपे नियतो नैत्यिकं विद्यिमाश्रितः।

गायत्रीमध्यष्टीयोत्त गत्वार्यं समाहितः॥ ५०॥

द्विज को अरण्य में जाकर पूर्णरूप से एकाग्राचिन्त होते हुए किसी जलाशय के समीप संयतचित्त से नैत्यिक-विधि का आश्रय लेकर गायत्री का भी अध्ययन (जप) करें।

सहस्रपरमां देवीं शतमष्ट्यां दशावराम्।

गायत्रीं वै जपेत्तित्यं जपयज्ञः प्रकीर्तिः॥ ५१॥

एक हजार बार गायत्री मंत्र का जप सर्वोत्तम माना गया है, सी मन्त्र का जप मध्यम है और दश बार जप करना अवर है। (परन्तु किसी भी रूप में) गायत्री का नित्य जप करना चाहिए, यही जप यज्ञ कहा गया है।

गायत्रीञ्चैव वेदांस्तु तुलयातोलयत्रम्।

एकतत्त्वतुरो वेदान् गायत्रीञ्च तदैकतः॥ ५२॥

ओङ्कारमादितः कृत्वा व्याहतीस्तदनन्तरम्।

ततोऽधीयोत्त सावित्रीमेकाशः श्रद्धयान्वितः॥ ५३॥

एक बार प्रभु ने गायत्री मन्त्र और समस्त वेदों को तुला में रखकर लोला था। एक ओर पलड़े में चारों वेद थे और दूसरी ओर केवल एक गायत्री मन्त्र ही था (दोनों का वजन बराबर था, अतः दोनों का महत्व भी समान है)। सर्वप्रथम ओङ्कार को रखकर अनन्तर व्याहृतियाँ (भूः, भुवः, स्वः) करनी चाहिए। इसके पश्चात् सावित्री है उसका एकाग्र चित होकर तथा श्रद्धा से युक्त होकर जप करना चाहिए।

पुराकल्पे समुत्पद्मा भूर्भुवः स्वः सनातनाः।

महाव्याहृतयस्तित्रः सर्वाः शुभनिवर्णाः॥५४॥

प्रथानं पुरुषः कालो विष्णुर्ब्रह्मा महेश्वरः।

सत्त्वं रजस्तमस्तित्रः क्रमादव्याहृतयः स्मृताः॥५५॥

ओङ्कारसत्तत्परं ब्रह्म सावित्री स्यात्तद्वरम्।

एव मनो महायोगः सारात्सार उदाहृतः॥५६॥

पूर्वकल्प में (सृष्टि के प्रारंभ में) 'भूः भुवः स्वः' समुत्पन हुई ये सनातन तीनों महाव्याहृतियाँ हैं। क्रम से ही ये व्याहृतियाँ कही गई हैं। ये सभी शुभ को निर्वहण करने वाली हैं। प्रधान, पुरुष काल, ब्रह्मा, विष्णु, महेश्वर, सत्त्व, रज, तम— ये क्रमशः तीन-तीन व्याहृतियाँ कही गई हैं। ओङ्कार उससे भी परश्रहा है तथा सावित्री उसका अक्षर है। यह मन्त्र महायोग है, जो उत्तम साररूप कहा गया है।

योऽद्यीतेऽह्यन्यन्येतां सावित्रीं वेदप्रत्यारम्।

विज्ञायार्थं ब्रह्मचारी स याति परमां गतिष्ठु॥५७॥

गायत्री वेदवननी गायत्री लोकपावनी।

न गायत्र्यः परं जाय्यमेतद्विज्ञाय मुच्यते॥५८॥

सावित्री वेद माता है, जो पुरुष दिन-प्रतिदिन उसका अध्ययन किया करता है और जो ब्रह्मचारी इसके अर्थ को जानकर इसका जप करता है, वह परम गति को प्राप्त होता है। यह गायत्री वेदों की जननी और लोकों को पावन करने वाली है। गायत्री से परम अन्य कोई जप नहीं है— ऐसा जो जान लेता है, वह (पुरुष) मुक्त हो जाता है।

श्रावणस्य तु मासस्य शौर्णपास्यां द्विजेत्तमाः।

आषाढ़ज्ञा प्रोष्ठपद्यां वा वेदोपाकरणं स्पृतप्॥५९॥

उत्सृज्य आप्नगरं मासान्विश्रेष्ठपञ्चाम्।

अदीयीत शूचौ देशो ब्रह्मचारी समाहितः॥६०॥

पुष्ये तु छन्दसां कुर्वाद्विसर्जनं द्विजाः।

हे द्विजोत्तमो! श्रावणमास की, आषाढ़ की अथवा भाद्रपद की पूर्णमासी में वेद का उपाकरण (वेदाध्ययन की साधन

क्रिया) कहा गया है। हे विष्र! उस तिथि से आगे के पाँच मासों तक ग्राम-नगर को त्याग कर किसी पवित्र स्थान में ब्रह्मचारी को एकाग्रित लोकर वेदाध्ययन करना चाहिए। पुष्य नक्षत्र में छन्दों का बाहरी भाग में उत्सर्जनरूप वैदिक कर्म करना चाहिए।

माघशुक्लस्य वा प्राप्ते पूर्वाह्ने प्रथमेऽहनिः॥६१॥

छन्दसां प्रीणनं कुर्यात् स्वेषु ऋक्षेषु वै द्विजाः।

वेदाङ्गानि पुराणानि कृष्णपक्षे च मानवः॥६२॥

इपात्रित्यपनव्यायामशीयानो विवर्जयेत्।

अथापनं च कुर्वाणो ह्यनव्यायामिवर्जयेत्॥६३॥

हे द्विजगण! माघ शुक्ल के प्राप्त होने पर प्रथम दिन में पूर्वाह्न में छन्दों का स्वाध्याय करना चाहिए। अपने ही नक्षत्रों में वेदाङ्ग तथा पुराणों का मनुष्य को कृष्णपक्ष में स्वाध्याय करना चाहिए। इन सबको नित्य करता रहे परन्तु अध्ययन करने वाल अयोग्य काल को छोड़ दें और अध्यापन करने वाले भी अनध्याय के दिनों को वर्जित करें।

कर्णश्रेष्ठेऽनिले रात्रौ दिवापांशुसमूहने।

विशुत्सन्नितवर्षेषु महोत्कानाङ्गं संप्लदः॥६४॥

आकालिकपनव्यायमेतेष्वाह प्रजापतिः।

जिस समय रात्रि में हवा चलने की आवाज दोनों कानों से सुनाई पड़े और जब दिन में हवा के साथ धूल उड़ती हो, विजली की चमक तथा बादलों की गङ्गड़ाहट के साथ पानी बरसता हो या कहीं उल्कापात आदि उपद्रव होते हों, तो उसे आकालिक अध्ययन (अर्थात् प्रागम्भ होने से लेकर दूसरे दिन उसी समय तक अध्ययन वर्जित) जानें— ऐसा प्रजापति ने कहा है।

निधति भूमिघलने ज्योतिषाङ्गोपसर्जने॥६५॥

एतानाकालिकान्विद्वान्दद्यायानुतावपि।

उसी प्रकार आकाश में गङ्गड़ाहट हो, भूकम्प हो रहा हो, या आकाश से तारे गिर रहे हों— इस पूरे काल को किसी भी छत्र में अनध्याय हेतु आकालिक मानना चाहिए।

प्रादुष्क्लेष्यमिषु तु विशुत्सन्नितनिस्वने॥६६॥

सज्योतिः स्यादनव्यायमृतौ चात्र दशने।

नित्यानव्याय एव स्यादपेषु नगरेषु च॥६७॥

जिस समय होमानि प्रज्वलित हो तथा बादलों की गङ्गड़ाहट के साथ विजली चमकती हो, तो भी अनध्याय करे और दिन रहते हुए भी आकाश में तारे दिखाई दें या

(वर्षा) ऋतु के बिना भी आकाश में बादल दिखाई दे रहे हों, तो भी ग्राम या नगरों में अनध्याय होता है।

धर्मैपुण्यकामानां पूतिगच्छेन नित्यः।

अनःशब्दगते ग्रामे वृषत्स्य च सत्रिष्ठौ॥६८॥

धर्म में निपुणता चाहने वालों को आसपास दुर्गन्धमय वातावरण होने पर अनध्याय रखना चाहिए। यदि गाँव में कोई शब्द पड़ा हो, तथा शूद्रजाति के पुरुष के समोप भी सदा अनध्याय रखना चाहिए।

अनध्यायो भुज्यमाने समवाये जनस्य च।

उदके मध्यरात्रे च विष्णुत्रे च विकर्जयेत्॥६९॥

उच्छिष्टः श्राद्धमुक्त चैव मनसापि न चिनतयेत्।

प्रतिगृह्ण द्विजो विद्वानेकोष्ठिष्ठस्य केतनम्॥७०॥

ऋहं न कीर्तयेद्वद्वद्व राज्ञो राहोऽक्ष सूतके।

यदि लोगों का समूह भोजन करता हो, तो अनध्याय रखना चाहिए। उसी प्रकार जल में, मध्यरात्रि में, विष्णा और मूर्त्र के त्याग करते समय (वेदाध्ययन) अध्ययन बर्जित रहें। उच्छिष्ट और (पितृनिमित्त) श्राद्ध में भोजन करने वाले द्विज को मन से भी (वेद का) चिन्तन नहीं करना चाहिए। विद्वान् द्विज को एकोष्ठिष्ठ का निर्मंत्रण प्रतिग्रहण करके राजा और राहु के सूतक में तीन दिन तक वेदाध्ययन या स्नाध्याय नहीं करना चाहिए।

यावदेकोऽनुहिष्टस्य स्नेहो लेष्णा तिष्ठति॥७१॥

विग्रस्य विपुले देहे तावद्वद्वद्व न कीर्तयेत्।

विष के निशाल देह में जब तक एकोष्ठिष्ठश्राद्ध के निषित किया हुआ भोजन थोड़ी सी भी चौकनाहट या गम्थ की स्थिति रखता हो, तब तक ब्रह्म (वेद) का कीर्तन (अध्ययन) नहीं करना चाहिए।

श्यामः प्रौढणाद्यु कृत्वा वै चावसिक्यकाप्॥७२॥

नाशीथीतामिथ जग्या सूतकाष्ठिष्ठमेव च।

नीहोरे बाणपाते च सञ्चयोरुभयोरपि॥७३॥

सोते हुए, ऐरे ऊंचे रखकर (आसनयुक्त) होकर वेदाध्यास न करें। जानुओं को वस्त्र से बौधकर, मांस खाकर तथा सूतकादि के अन्न को खाकर, कुहरा ढा जाने पर, बाण गिरने के समय और दोनों सध्या काल में अध्ययन नहीं करना चाहिए।

अपावास्या चतुर्दश्या पौर्णमास्याष्टमीषु च।

उपाकर्षणि चोत्सर्गे त्रिरात्रं क्षणाणं स्मृतम्॥७४॥

अपावास्या, चतुर्दशी, पौर्णमासी तथा अष्टमी तिथियों में, उपाकर्म संस्कार के समय और उत्सर्ग किया के समय तीन रात्रि तक क्षण (अनध्याय) कहा गया है।

अष्टकासु ऋहोरात्रमूल्वन्तासु च रात्रिषु।

मार्गशीर्षे तथा पौर्णे माघमासे तत्त्वैव च॥७५॥

तिस्रोऽष्टकाः समाख्याताः कृष्णफक्षे तु सूर्यिपिः।

इलेष्यातकस्य च्छायायां शाल्मलेष्युक्तस्य च॥७६॥

कदाचिदपि नाथ्येवं कोविदारकपित्त्वयोः।

समानविद्ये च मृते तथा सद्वाहावारिणि॥७७॥

अष्टका नामक श्राद्ध करम में एक रात-दिन का अनध्याय रहता है। ऋतु की अन्तिम रात्रियों में अनध्याय रखना चाहिए। मार्गशीर्ष, पौर्ण, माघ मास के कृष्णफक्ष में विद्वानों ने तीन अष्टक (श्राद्ध) कही हैं (उस समय अनध्याय रखना चाहिए)। इलेष्यातक, 'शाल्मलि' और मधुक की छाया में तथा कोविदार' और कपित्त्वे की छाया में कभी भी अध्ययन नहीं करना चाहिए। किसी समान विद्या वाले साहध्यायीं (सहस्राटी) की मृत्यु हो जाने पर तथा ब्रह्मचारी की मृत्यु होने पर भी अनध्याय होता है।

आचार्ये संस्थिते वापि त्रिरात्रं क्षणाणं स्मृतम्।

छिद्राण्येतानि विप्राणां येऽनव्यायाः प्रकीर्तिताः॥७८॥

हिंसनि राक्षसास्तेषु तस्मादेतान्विसर्जयेत्।

नैतिके नास्त्यनव्यायः सञ्चयोपासन एव च॥७९॥

आचार्य की मृत्यु होने पर भी तीन रात्रि का अनध्याय कहा गया है। जो उपर अनध्याय कहे गये हैं, वे विप्रों के चारे में छिद्र हैं। इनमें राक्षस प्रहार कर सकते हैं। इसीलिये इनका त्याग कर देना चाहिए। नित्य होने वाले कर्म में और सञ्चयोपासन में कभी भी अनध्याय नहीं होता है।

उपाकर्षणि कर्मने होपमनेषु चैव हि।

एकामृद्यमर्यैकं वा यजुः सामाय वा पुनः॥८०॥

अष्टकावासवधीयैत यास्ते चातिवायति।

अनव्यायस्तु नाहेतु नेतिहासपुराणयोः॥८१॥

न धर्मशास्त्रोन्वन्येषु पर्वाण्येतानि कर्येत्।

एष धर्मः सप्तासेन कीर्तितो द्रव्यावारिणाम्॥८२॥

1. *Cordia myxa Roxb. (Schasten)*

2. *Bombax malabaricum (Silk cotton tree)*

3. *Bassia latifolia*

4. *Bauhinia variageta (Mountain Ebony)*

5. *Acacia catechu*

ब्रह्माण्डिहितः पूर्वपृथीणां भावितात्मनाम्।

उपाकर्म के समय कर्म के अंत में तथा होम के मन्त्रों में अनध्याय नहीं होता। अष्टक शादृ में तथा बायु के वेगपूर्वक चलने पर ब्रह्मवेद, यजुर्वेद अथवा सामवेद का एक मंत्र, पढ़ा जा सकता है। वेदाङ्गों में तथा इतिहास-पुराणों में तथा अन्य धर्मशास्त्रों में अनध्याय नहीं होता है परन्तु पर्वों के दिन इनका अध्ययन वर्जित रखना चाहिए। ब्रह्मचारियों के इस धर्म को मैंने संक्षेप में कहा है। इसे पहले ब्रह्माजी ने शुद्धात्मा ऋषियों से कहा था।

योऽन्यत्र कुरुते यत्तमन्योत्य श्रुतिं द्विजाः॥ ८३॥

संसूडो न सम्भाष्यो वेदवाहो द्विजातिभिः।

न वेदपाठमात्रेण सनुषो वै द्विजोत्पाः॥ ८४॥

एवमाच्यारहीनस्तु पद्मे गौरिव सीदति।

योऽन्योत्य विषिवद्वेदं वेदावं न विचारयेत्॥ ८५॥

स चायः शुद्धकल्पस्तु पदार्थं न प्रपद्यते।

हे द्विजो! जो वेदाध्ययन न करके अन्यत्र (अन्य शास्त्रों में ज्ञान प्राप्ति का) यत्र किया करता है, वह अतिशय मूढ़ होता है, उस वेदवाहा व्यक्ति के साथ ब्राह्मणों को बातचीत भी नहीं करनी चाहिए। और भी हे ब्राह्मणो! केवल वेदपाठमात्र से संतुष्ट नहीं होना चाहिए। यदि वेदाध्यायी ब्राह्मण वेदोक्त सदाचारों का पालन नहीं करता है, तो वह कीचड़ में फंसी हुई गौ के समान दुःखी होता है। जो विधिपूर्वक वेदाध्ययन करके भी वेद के अर्थ पर विचार नहीं करता, उसका संपूर्ण वंश शूद्रतुल्य माना जाता है और वह दान लेने की योग्यता नहीं रखता है।

यदि चात्यनिकं यासं कर्तुमिष्छति वै गुरुः॥ ८६॥

युक्तः परिद्यरेदेनमाशीराभिधातनात्।

गत्वा वनं वा विषिवज्जुद्याज्जातवेदसम्॥ ८७॥

अथसेत्स तदा नित्यं ब्रह्मनिष्ठः समाहितः।

सावित्री शतरुद्रीयं वेदाङ्गानि विशेषतः।

अथसेत्स युक्तो भस्मस्नानपरायणः॥ ८८॥

यदि कोई द्विज मरणपर्यन्त गुरुगृह में ही वास करने की इच्छा करता हो, तो उस निष्ठवान् ब्रह्मचारी को आजीवन एकाग्रचित्त होकर गुरु की सेवा करनी चाहिए। अथवा वन में जाकर विधिपूर्वक अनि में हवन करते हुए प्रतिदिन ब्रह्म-परमात्मा में निष्ठवान् और एकाग्रचित्त होकर वेदाध्यास करना चाहिए और पूरे मनोयोग से गायत्री, शतरुद्रीय और

वेदाङ्ग का विशेषरूप से अभ्यास करते हुए भस्म लगाकर ही स्नान परायण रहना चाहिए।

एतद्विजानं परमं पुराणं

वेदागमे सम्बिगिहेरितङ्गः।

पुरा पर्विष्प्रवरानुपृष्ठः।

स्वायम्भुवो वन्मनुराह देवः॥ ८९॥

वेदज्ञान की प्राप्ति में पूर्वोक्त यह उत्कृष्ट विधान पुरातन है, जिसे मैंने आप लोगों को समझक बता दिया है। प्राचीन काल में देव स्वायम्भुव मनु ने श्रेष्ठ ब्रह्मियों द्वारा पूछे जाने पर यह बताया था।

एवंप्रेष्ठरसर्वपितानारो योऽनुतिष्ठति विष्णि विद्यानवित्।

मोहज्ञालमपहाय सोऽमृतं याति तत्पदमनामयं शिवम्॥ ९०॥

इस्तर में आत्मसमर्पण कर उपर्युक्त प्रकार से विधि विधानों का ज्ञाता जो मनुष्य इस उस क्रिया के अनुसार ही आचरण करता है, वह संसार के माया-मोह को त्याग कर निरामय (समग्र रोगों या दोषों से रहित), परम-कल्याणकारी मोक्ष को प्राप्त करता है।

इति श्रीकूर्मपुराणे उत्तरार्द्धे व्यासगीतासूष्णिष्ठत्वं

ब्रह्मचारिष्यर्पनिरूपणं नाम चतुर्दशोऽध्यायः॥ १४॥

पञ्चदशोऽध्यायः

(व्यासगीता-ब्रह्मचारियों के गार्हस्ववर्म)

व्यास उत्तरार्द्ध

वेदं वेदौ तथा वेदान्विद्याद्वा चतुरो द्विजाः।

अस्त्रीत्य चाभिगम्यावै ततः स्नायाद्विजोत्पाः॥ १॥

श्रीव्यासदेव ने कहा— हे द्विजगण! हरकोई द्विज को एक वेद, दो वेद अथवा चारों ही वेदों को प्राप्त करना चाहिए। इन वेदों का अध्ययन करके और इनके अर्थ को जानकर पुनः ब्रह्मचारी को (स्वाध्याय का समाप्ति सूचक) स्नान करना चाहिए।

गुरवे तु धने दत्त्वा स्नायोत तदनुज्ञाया।

चीर्णवृतोऽथ युक्तात्मा स शक्तः स्नातुमर्हति॥ २॥

इसके बाद अपने गुरु देव को (दक्षिणानिमित्त)धन देकर उनकी आज्ञा से ही स्नान करना चाहिए। जिसने (ब्रह्मचर्य) व्रत का अनुष्ठान किया है, वह युक्तात्मा होकर शक्तिसम्पन्न होता है और स्नान (समावर्तन) करने की योग्यता को प्राप्त करता है।

वैष्णवीं शारयेद्विष्टमनवासं तथोत्तरम्।
यज्ञोपवीतहितयं सोदकज्ञ कमण्डलम्॥३॥

इसके पश्चात् उसे ब्रांस का दण्ड धारण करना चाहिए। उसके बाद अन्तर्वास (कौपीन) और उत्तरीय (धोती आदि) वस्त्र, दो यज्ञोपवीत और जल के सहित एक कमण्डल धारण करना चाहिए।

छत्रं चोष्णीषमपलं पादुके चाप्युपानहो।
रौकमे च कुण्डले वेदं व्युमकेशनखः शुचिः॥४॥

स्वाध्याये नित्ययुक्तः स्वाद्विहर्माल्यं न धारयेत्।
अन्यत्र काङ्गनाद्विप्रः न रक्तां विभृयात्यजम्॥५॥

इसके अतिरिक्त एक छत्र, स्वच्छ पगड़ी, पादुका और सुवर्ण के दो कुण्डल धारण करने चाहिए। वेद उसके पास हो। केश तथा नख काटकर पवित्र बनें। स्वाध्याय में नित्य ही युक्त रहे तथा बाहरी भाग में पुष्पमाला को धारण न करें। प्रिप्र को सुवर्ण को माला के अतिरिक्त अन्य रक्तवर्ण की पुष्पमाला धारण नहीं करनी चाहिए।

शुक्लाप्वरघरो नित्यं सुगच्यः प्रियदर्शनः।
न जीर्णप्रलवद्वासा भवेद्वै वैभवे सति॥६॥

न रक्तमुल्पणाद्वान्यवृतं वासो न कुण्डिकाम्।
नोपानहौ ऋजं वाद पादुके न प्रयोजयेत्॥७॥

वह खेत वस्त्र धारण करने वाला हो, नित्य सुगच्य से युक्त और लोगों के लिए प्रियदर्शी हो। वैभवयुक्त होने पर फटे और मैले वस्त्र कभी धारण न करें। अत्यधिक गाढ़ लाल रंग का और दूसरे का पहना हुआ वस्त्र तथा कुण्डिका (पात्र), जूता, माला और पादुका का भी प्रयोग न करें।

उपवीतकरन् दर्धान्तथा कृष्णाजिनानि च।
नापसब्यं परीद्व्याद्वासो न विकृतज्ञ यत्॥८॥

यज्ञोपवीतहित में निर्मित कुशाओं को तथा मृगचर्म को अपसब्य अर्थात् उलटा (दाहिने कन्धे पर) धारण नहीं करना चाहिए और विकृत वेषभूता भी पहनने नहीं चाहिए।

आहोद्विधिवद्वारान् सदृशानाल्पनः शुभम्।
रूपलक्षणांसंयुक्तानयोनिदोषविवर्जितान्॥९॥

अमालूगोत्रप्रभवामसपानार्थिगोत्रजाम्।
आहोद्वाद्वाहणो भार्या शीलशौचसमन्विताम्॥१०॥

इसके बाद वह रूपलक्षण से सम्पन्न तथा योनि या गर्भाशय के दोष से रहित अपने ही समान (वर्णवाली) शुभ स्त्री के साथ विधिपूर्वक (गुरु को आज्ञा से) विवाह करे।

वह स्त्री माता के गोत्र में उत्पन्न हुई न हो तथा ऋषि गोत्र भी समान न हो। इस प्रकार द्वाहण को शील गुण और पवित्रता से युक्त भार्या से विवाह करना चाहिए।

ऋतुकालाभिगामी स्याद्वावत्पुत्रोऽभिजायते।

वर्जयेत्प्रतिषिद्धानि दिनानि तु प्रयत्नतः॥११॥

जब तक उससे पुत्र की उत्पत्ति हो, तब तक ही ऋतुकाल में स्त्री के साथ अभिगमन करना चाहिए। (परन्तु) उसमें भी निषिद्ध दिनों का प्रयत्नपूर्वक त्याग करना चाहिए।

षष्ठ्याष्टमी पञ्चदशीं द्वादशीं च चतुर्दशीम्।

द्वाहणारी भवेत्रित्यं द्वाहणः संयतेन्द्रियः॥१२॥

वे दिन हैं— षष्ठी, अष्टमी, द्वादशी, चतुर्दशी, पूर्णिमा तथा अमावास्या। द्वाहण संयतेन्द्रिय होकर सदा (उन दिनों में) द्वाहणर्चय का पालन करना चाहिए।

आदृथीतावस्थ्यामि जुहायाज्ञातवेदसम्।

ज्ञातानि स्नातको नित्यं पावनानि च पालयेत्॥१३॥

(गृहस्थ बना वह) स्नातक आवस्थ्य अग्नि को स्थापित करके उसमें नित्य होम करे और पवित्र ब्रतों का पालन करे।

वेदोदितं स्वकं कर्म नित्यं कुर्यादतन्त्रितः।

अकुर्वाणः पत्न्यासु नरकान्वाति भीषणाम्॥१४॥

वेदों द्वारा निर्दिष्ट अपने कर्मों को आलस्य त्यागकर सदा करते रहना चाहिए। यदि वे इन कर्मों को नहीं करते हैं, तो शीघ्र ही (मृत्यु पक्षात्) भीषण नरकों में गिर जाते हैं।

अप्यसेतायतो वेदं महायज्ञोऽु भावयेत्।

कुर्याद् गृहाणि कर्मणि सम्योपासनयेव च॥१५॥

उसे प्रयत्नपूर्वक वेदों का अभ्यास करते रहना चाहिए और महायज्ञों का भी सम्पादन करे। इसी प्रकार अन्य गृहामूलक कर्मों को तथा सध्योपासना आदि नित्य कर्म भी करता रहे।

सर्वे समाधिकैः कुर्याद्विदीश्वरं सदा।

दैवतान्यधिगच्छेत् कुर्याद्वार्याविभूषणम्॥१६॥

वह अपने समान या अधिक ब्रेष्ट व्यक्ति से साथ मित्रता करे और सदा ईश्वर को पूजा करे। देवों में भक्तिभाव रखे और पत्नी को आभूषण से सुसज्जित करें।

न वर्षं ऊपयेद्विहान् न याप्य गृहयेदपि।

कुर्वात्तात्महितं नित्यं सर्वभूतानुकर्पनम्॥१७॥

अपने द्वारा संपादित धर्म को किसी से न कहे और अपने पाप को भी न छिपाये। अपने आत्महित को करे और सदा प्राणियों पर दया रखे।

वयसः कर्मणोऽर्थस्य श्रुतस्याभिजनस्य च।

वेदवाण्युद्दिसास्त्राप्यमाचरेद्विहरेत्सदा॥ १८॥

वह सदा अपनी आयु, कर्म, सम्पत्ति, शास्त्रज्ञान और कुल की मर्यादा के अनुसार वेद, वाणी और बुद्धि को एकरूप करके आचरण करे और सदा जीवन यापन करे।

श्रुतिस्मुत्युदितः सम्यक् साधुभिर्यजुष सेवितः।

तपाचारां निवेदते नेहतान्यत्र कर्हिष्यतु॥ १९॥

श्रुति (वेद) और स्मृति (धर्मशास्त्र) द्वारा अनुमोदित तथा साधु पुरुषों द्वारा सेवित आचारों का ही सेवन करना चाहिए, इसके अतिरिक्त दूसरों के आचार-विचार का सेवन कभी न करे।

येनास्य पितरो याता येन याताः पितामहाः।

तेन यायात्सतो भार्ग तेन गच्छन् तरिष्यति॥ २०॥

(क्योंकि कहा भी है कि) जिस (शास्त्रोत्त) भार्ग से माता-पिता गये हों और जिस भार्ग से दादा आदि गये हों, सबनों के उस भार्ग पर ही जाना चाहिए। उस भार्ग से जाते हुए वह संसार से तर जायेगा अर्थात् मुक्त हो जाता है।

नित्यं स्वाध्यायशीलः स्यान्नित्यं यज्ञोपवीतवान्।

सत्यवादी जितक्रोधो द्विष्टभूयाय कल्पते॥ २१॥

नित्य स्वाध्यायशील हो और सदा यज्ञोपवीत धारण करना चाहिए। जो सत्यवादी है तथा जिसने क्रोध को जीत लिया है, वह ब्रह्मरूप होने की योग्यता रखता है।

स्वाध्यासानपरो नित्यं द्विष्टजपराणाम्।

अनसूयो मुदुर्दानो गृहस्थः प्रेत्य वद्दति॥ २२॥

नित्य सन्ध्या-स्नान करने वाला, ब्रह्मज्ञ का अनुशासन करने वाला, इर्ष्या न करने वाला, मृदु-स्वभाव वाला और जितेन्द्रिय गृहस्थ परलोक में अध्युदय प्राप्त करता है।

वीतरागभयक्रोधो लोभमोहविवर्जितः।

सावित्रीजापनिरतः श्राद्धकृम्युच्यते गृही॥ २३॥

राग, भय और क्रोध से रहित तथा लोभ-मोह से वर्जित, गायत्री का जप करने में तत्पर तथा श्राद्ध करने वाला गृहस्थ मुक्त हो जाता है।

मातापित्रोहिति युक्तो गोद्वाह्निहिते रतः।

दानो यज्ञा देवभक्तो द्विष्टलोके महीयते॥ २४॥

जो माता-पिता का हित करने में तत्पर, गौ तथा ब्राह्मण का हित लगा रहता है, दाता, यज्ञशील, देवों में भक्ति रखने वाला है, वह ब्रह्मलोक में प्रतिष्ठित होता है।

त्रिवर्गसेवी सततं देवतानाङ्गं पूजनम्।

कुर्यादहरहर्नित्यं नमस्येत् प्रयतः सुरान्॥ २५॥

गृहस्थ को सतत त्रिवर्ग (धर्म, अर्थ और काम) का सेवन करना चाहिए और प्रतिदिन नियमपूर्वक देवताओं को नमस्कार करे।

विचारशीलः सततं क्षमायुक्तो दयालुकः।

गृहस्थस्तु सपाञ्चयातो न गृहेण गृही भवेत्॥ २६॥

जो पुरुष सदा विचारशील, क्षमावान् और दयालु होता हो वही गृहस्थ कहा जाता है, केवल घर बनाकर उसमें रहने पात्र से गृहस्थ नहीं हो जाता।

क्षमा दया च विज्ञानं सत्यं चैव दमः शमः।

अध्यात्मनिरतज्ञानयेतद्वाह्निलक्षणम्॥ २७॥

एतस्मात्र प्रमाणोत्त विशेषणं द्विजोत्तमाः।

यथाशक्ति चरेत्कर्म निन्दितानि विवर्जयेत्॥ २८॥

क्षमा, दया, अनुभवपूर्वक ज्ञान, सत्य, दम (बाह्येन्द्रियों को वश करना), शम (अध्यन्तर-इन्द्रियों को वश करना) और अध्यात्मज्ञान में निरत होना ही ब्राह्मण का लक्षण है। श्रेष्ठ ब्राह्मणों को इनसे प्रमाद नहीं करना चाहिए और यथाशक्ति कर्म करना चाहिए और जो निन्दित कर्म है, उनका त्याग करना चाहिए।

विष्यु योहकलिलं लब्ध्वा योगमनुजमप्।

गृहस्यो मुच्यते बन्धात्रात्र कार्या विचारणाः॥ २९॥

मोहरूप पाप को धोकर और उत्तम योग को प्राप्त कर गृहस्थ बन्धन से मुक्त हो जाता है, इस विषय में कोई विचार (तक) नहीं करना चाहिए।

विगर्हातिक्रमाक्षेपिर्हिसावच्यवात्पनाम्।

अन्यमन्युसमुक्तानां दोषाणां पर्याणं क्षमा॥ ३०॥

क्रोधवश दूसरे के द्वारा की गई निन्दा, अनादर, दोषारोपण, हिंसा, बंधन और ताडनरूप दोषों को सहन करना ही क्षमा है।

स्वदुःखेच्चित्रं कारुण्यं परदुःखेषु सौहदात्।

दयेति मुनयः प्राहुः साक्षाद्वर्मस्य साधनम्॥ ३१॥

- विभागशील पाठ भासने से अर्थ होगा— अपनी संपत्ति का शास्त्रोत्त विधि से विभाग करने वाला।

स्वयं को जो दुःख होता है, वैसा ही दूसरों के दुःख में सौहार्दवश करुणा प्रकट करना ही दया है, ऐसा मुनियों ने कहा है। यहीं (दया) साक्षात् धर्म का साधन है।

चतुर्दशानां विद्यानां धारणं हि यथार्थतः।
विज्ञानमिति तद्विद्याद्यत्र धर्मो विवद्धते॥ ३२॥

चांद्रह विद्याओं (चार वेद, छः वेदाङ्ग, पुराण, न्यायशास्त्र, मीमांसा और धर्मशास्त्र) को यथार्थरूप से धारण करना ही विज्ञान जानना चाहिए। इसके द्वारा धर्म की वृद्धि होती है।

अधीत्य विद्यिवद्वेदानर्थवृद्धिवोपलभ्य तु।
धर्मकार्यान्त्रिवृत्तिष्ठेत्र तद्विज्ञानमित्यर्थो॥ ३३॥

विधिपूर्वक वेदों का अध्ययन करके तथा उसके अर्थ को जानकर भी जो धर्मकार्यों से विमुख रहता है, उसका वह जान विज्ञान इच्छा करने योग्य नहीं है।

सत्येन लोकाङ्गयति सत्यं तत्परमं पदम्।
यथापूत्रप्रवादं तु सत्यमाकुर्मनीषिणः॥ ३४॥

वह सत्य से ही लोकों को जीत सेता है, वही सत्य परम पद है। जो जैसा है, उसका उसी रूप में वर्णन करना सत्य है, ऐसा मनोविद्यों ने कहा है।

दयः शरीरोपरमः शामः प्रज्ञाप्रसादजः।
अथात्यपक्षरं विद्याद्यत्र गत्वा न शोचति॥ ३५॥

शरीर का उपरम (चेष्टाओं की विश्रान्ति या इन्द्रियनिग्रह) दम है और शाम (मन का निश्च) वृद्धि की प्रसन्नता से उत्पन्न होता है तथा अध्यात्म को ही अविनाशी परमतत्त्व जानना चाहिए, जहां जाकर मनुष्य शोक नहीं करता।

यथा स देवो भगवान्विद्या वेद्यते परः।
साक्षात्तेवो महादेवसत्त्वानमिति कोर्तितम्॥ ३६॥

जिस विद्या के द्वारा परम देव भगवान् साक्षात् महादेव का ज्ञान होता है, वही (वस्तुतः) 'ज्ञान' कहा जाता है।

तत्रिष्ठस्तपरो विद्वान्नित्यमङ्गोष्णः शुचिः।
महायज्ञपरो विद्वान् लभते तदनुत्तमम्॥ ३७॥

उनमें सदा निष्ठा रखने वाला, तत्परायण, कोष न करने वाला, पवित्र और महायज्ञपरायण विद्वान् ही उस उत्तम ज्ञान को प्राप्त करता है।

१. विद्वान् भवेत्तदनुत्तमम्' पाठ मिलता है, जो अनुचित ज्ञान पड़ता है।

धर्मस्यायतनं चलाच्छरीरं प्रतिपालयेत्।

न च देहं विना रूपे विष्णुं पुरुषैः परः॥ ३८॥

धर्म के आयतनरूप उस शरीर का यत्नपूर्वक पालन करना चाहिए। विना देह के मनुष्य परमात्मा रूप को नहीं जान सकते।

निष्ठ्यधर्मार्थकामेषु युज्येत नियतो द्विजः।

न धर्मवर्जितं कामपर्वं वा मनसा स्मरेत्॥ ३९॥

संयतचित्त होकर सदा द्विज को धर्म, अर्थ और काम में संयुक्त रहना चाहिए। परन्तु धर्म से रहित काम या अर्थ का कदापि मन से भी स्मरण न करे।

सोदशप्रियं हि धर्मेण न त्वयर्थं समाचरेत्।

धर्मो हि भगवान्देवो गतिः सर्वेषु जनुवृ॥ ४०॥

धर्माचरण करते हुए कभी दुःख भी उठाना पड़े तो भी अधर्म को ग्रहण न करें। धर्म ही देवस्तरूप भगवान् और सब प्राणियों के लिए गतिरूप है।

भूतानां प्रियकारी स्यात्र परद्वाहुकर्मणीः।

न वेददेवतानिन्दा कुर्यात्तेषु न संवदेत्॥ ४१॥

प्राणियों का सदा प्रिय करने वाला होना चाहिए और दूसरों के प्रति द्वेषवृद्धि वाला नहीं होना चाहिए। वेद तथा देवताओं की निन्दा नहीं करनी चाहिए और निन्दा करने वालों के साथ बोलना भी नहीं चाहिए।

यस्त्वयं नियतं विष्णो धर्मविद्याय पठेच्छुचिः।

अस्यायेच्छावयेष्टा ब्रह्मलोके महोयते॥ ४२॥

जो विष्र नियमपूर्वक पवित्र होकर इस धर्मध्याय को पढ़ता है, (दूसरे को) पढ़ाता है अथवा सुनाता है, वह ब्रह्मलोक में पूजित होता है।

इति श्रीकृष्णपुराणे उत्तराद्देव व्यासगीतासूष्णिनिष्ठु ब्रह्मविद्यायां

योगशास्त्रे ऋषिव्याससंवादे ब्रह्मचारिणां गार्हस्यधर्मनिरूपणं

नाम पछदशोऽध्यायः॥ १५॥

षोडशोऽध्यायः

(गार्हस्यधर्म-निरूपण)

व्यास उवाच

न हिंस्यात्सर्वभूतानि नानुतं वा वदेत्क्षयितु।

नाहिते नाप्रियं दृश्यात् स्तेनः स्यात्क्षयात्॥ १॥

व्यास बोले— किसी भी प्राणी को हिंसा न करें और कभी भी असत्य न बोलें। अहितकारी और अप्रिय लगाने वाला भी न बोले और कभी भी चोरी न करें।

तुणं वा यदि वा शाकं पूर्दं वा जलमेव च।
परस्यापहरञ्जनुर्नरकं प्रतिपद्धते॥ २॥

कोई भी व्यक्ति दूसरे की घास, शाक, मिठी तथा जल को चुराता है तो वह ग्राणों नरक को प्राप्त करता है।

न राज्ञः प्रतिगृहीयात्र शूद्रात्पतितादपि:
नान्यस्माद्याचक्त्वच्छ निनिदत्ताद्वज्जयेद्युषः॥ ३॥

(कोई भी ब्राह्मण) राजा से दान ग्रहण न करें तथा शूद्र और (वर्णाश्रमधर्म से) पतित व्यक्ति से भी न लें। अन्य निनिदत्त व्यक्तियों से भी बुद्धिमान् पुरुष को याचना नहीं करनी चाहिए।

नियं याद्यनको न स्यापुनस्तत्रैव याद्येत्।
प्राणानपहरत्वेष्य याद्यकस्तस्य दुर्भागिः॥ ४॥

प्रतिदिन दान मांगने वाला नहीं होना चाहिए और एक ही व्यक्ति से बार-बार नहीं मांगना चाहिए। ऐसी दुर्बुद्धि वाला याद्यक दाता के ग्राणों को ही हर लेता है।

न देवद्रव्यहारी स्याद्विशेषेण द्विजोत्तमः।
द्वाहस्वं वा नापहरेदापश्चापि कदाचन॥ ५॥

न विषं विषभित्यादुर्द्वाहस्वं विषमुच्यते।
देवस्वं चापि यन्मेन सदा परिहरेतः॥ ६॥

विशेषरूप से श्रेष्ठ ब्राह्मण को देवताओं के निमित्त रखे द्रव्य को नहीं चुराना चाहिए। ब्राह्मण के धन को तो आपत्तिकाल में भी चुराना नहीं चाहिए; क्योंकि विष को ही विष नहीं कहा जाता, अपितु ब्राह्मण की सम्पत्ति या द्रव्य ही विष कहलाता है। इसी कारण देवद्रव्य का भी यत्रपूर्वक सदा त्याग कर देना चाहिए।

पुष्टे शाकोदके काष्ठे तथा भूले तृणे फले।
अदत्तादामपस्तेयं मनुः प्राह प्रजापतिः॥ ७॥

पुष्ट, शाक, जल, काष्ठ तथा तृण, भूल और फल को विना दिये हुए जो ग्रहण नहीं करता है, वह अस्तेय है, (विना दिये ले लेना चोरी है) ऐसा प्रजापति मनु ने कहा है।

प्रहीतव्यानि पुष्टाणि देवार्थनक्षी हिजाः।
नैकस्मादेव नियतपननुज्ञाय केवलम्॥ ८॥

द्विज देवताओं की पूजा के लिए पुष्ट ग्रहण कर सकते हैं परन्तु उन पुष्टों को भी प्रतिदिन केवल एक ही स्थान से विना (स्वामी की) अनुमति के ग्रहण नहीं करना चाहिए।

तृणं काष्ठं फलं पुष्टं प्रकाशं वै होद्युषः।

धर्मर्थं केवलं ब्राह्मं ह्यन्यथा पतितो भवेत्॥ ९॥

उसी प्रकार विद्वान् पुरुष को चाहिए कि तृण, काष्ठ, फल और पुष्ट को प्रकटरूप में अर्थात् किसी की मौजूदगी (या मालिक की अनुमति से) केवल धर्मकार्य के लिए ग्रहण करे, अन्यथा वह नरक में गिरता है अथवा नौतिमार्ग से पतित हुआ माना जाता है।

तिलपुद्गत्यवादीनां मुष्टिर्शङ्खा पश्चि स्थितैः।

क्षुधर्त्तर्नान्यथा विश्रा धर्मविद्विरिति स्थितिः॥ १०॥

(फिर भी) हे विद्रो! धर्मवेत्ताओं ने यह मर्यादा स्थित की है कि मार्ग में चलते समय (कभी) भूख से पीड़ित होने पर मुझे भर तिल, मूँग और जौ (मालिक से विना पूछे) ग्रहण किया जा सकता है, अन्यथा नहीं।

न धर्मस्यापदेशेन पापं कृत्वा त्रितं चरेत्।

द्वैतेन पापं प्रच्छात् कुर्वन् खीशूदलम्बनम्॥ ११॥

प्रेत्येह येदृशो विद्रो गहने द्वाहवादिपिः।

छदना चरितं यद्य त्रितं रक्षांसि गच्छति॥ १२॥

वैसे ही धर्म के बहाने से (जानबूझ कर) पाप करके (प्रायशितरूप) ब्रतादि का अनुष्ठान भी नहीं करना चाहिए। ब्रत के द्वारा पाप को छिपाकर वह ब्राह्मण स्वीय या शूद्र का जन्म लेकर इस लोक में भी ब्रह्मवादियों द्वारा निनिदत्त होता है। छब्बरूप (कपट) से किया हुआ उसका ब्रत का फल राक्षसों को जाता है अर्थात् राक्षस ही उसका भोग करते हैं।

अलिङ्गी लिङ्गिवेषेन यो वृत्तिपुरजीवति।

स लिङ्गिनां हरेदेनस्तिर्यग्योनौ च जायते॥ १३॥

जो अलिङ्गी अर्थात् साधु-संन्यासी के विशेष चिह्नों से रहित होते हुए भी जो (ढौंगपूर्वक) लिङ्गी अर्थात् साधु-संन्यासी के वेष को धारण करके उससे अपनी आजीविका चलाता है, वह लिङ्गधारियों के पार्षदों को स्वयं हर लेता है (उसका भागी बनता है) और (अगले जन्म में) पक्षियों की योनि में उत्पन्न होता है।

वैदालव्रतिनः पापा लोके धर्मविनाशकाः।

सदा पतनिं पापेन कर्षणस्तस्य तत्पत्तम्॥ १४॥

1. वैदालव्रती से तात्पर्य है— विद्रो के समान ब्रतधारी। विद्रो चूहे को पकड़कर खाने लिए ध्यानमान होकर चुपचाप बैठे रहती है और अपने पापाचार का भाव प्रकट होने नहीं देती, वैसे ही दुराचारी का भी ब्रत होता है।

जो इस लोक में बैठाल के समान व्रत रखने वाले पापाचारी हैं, वे (पाखण्डी) धर्म के विनाशक होते हैं और शीघ्र ही पाप से (नरक में) गिर जाते हैं। उसके कर्मों का यही फल है।

**पाखण्डिनो विकर्षस्थान्वामाचारांस्तवैव च।
पञ्चरात्रान् पाशुपतान् वाङ्मात्रेणापि नार्चयेत्॥ १५॥**

पाखण्डी (दोंगी), (शास्त्र) विपरीत कर्म करने वाले, वामाचारो (विपरीत आचरण करने वाले), पाञ्चरात्रसिद्धानी और पाशुपत मत के अनुयायी को बाणीमात्र से भी सत्कार नहीं देना चाहिए।

**वेदनिन्दारतान् मर्त्यादेवनिन्दारांसत्या।
द्विजनिन्दारतांस्तवैव मनसापि न विनायेत्॥ १६॥**
यजने योनिसत्यं सहवासमु भाषणम्।
कुर्वाणः पतते जनुस्तस्याद्यलेन वर्जयेत्॥ १७॥

वेद की निन्दा में तप्तर तथा देवों की निन्दा में आनन्द रखने वाले और ब्राह्मणों की निन्दा में आसक्त मनुष्यों का मन से भी चिन्तन नहीं करना चाहिए। इनका यज्ञ करने, उनसे विवाह-संबन्ध रखने, उनके साथ वास करने और उनसे वार्तालाप करने से भी प्राणी परित हो जाता है। इसलिए यत्तपूर्वक इनका त्याग करना चाहिए अर्थात् उनके साथ सभी व्यवहार त्याग देने चाहिए।

**देवदोहादगुरुदोहः कोटिकोटिगुणाधिकः।
ज्ञानापवादो नास्तिक्यं तस्यात्कोटिगुणाधिकम्॥ १८॥**

देवदोह करने से गुरुदोह करना करोड़ो गुना अधिक (दोषपूर्ण) है। ज्ञान की निन्दा करना और नास्तिकता उससे भी करोड़ गुना अधिक खराब है।

**गोपिष्य दैवतीविर्गेः कृष्ण राजोपसेवया।
कुलान्यकुलता यानि यानि हीनानि धर्मतः॥ १९॥**

गौ-बैल द्वारा और देवताओं या ब्राह्मणों के निमित्त कृपिकर्म करने तथा राजा की सेवा द्वारा (जीविकोपार्जक व्यक्ति के) सारे कुल अकुलता को प्राप्त हो जाते हैं और ये सब धर्म से भी हीनता को प्राप्त होते हैं।

**कुविवाहैः क्रियालोपैदेवानव्ययनेन च।
कुलान्यकुलतां यानि द्वाह्नाणातिक्रमेण च॥ २०॥**

निन्दा से विवाह करने से, धार्मिक क्रियाओं का लोप होने से और वेदों के अनध्याय से तथा ब्राह्मणों का अपमान

करने से भी (दोषयुक्त होकर) सभी उद्ध कुल निम्नता को प्राप्त होते हैं।

**अनुत्तात्यारदार्याद्य तथाऽभद्र्यस्य भक्षणात्।
अश्रौतैर्याचरणाक्षिप्रं नश्यति वै कुलम्॥ २१॥**

असत्य भाषण करने से, दूसरे की स्त्री से सम्बन्ध रखने से, अभद्र्य (मांसादि) पदार्थों का भक्षण करने से तथा अर्चादिक धर्म का आचरण करने से निष्ठय ही कुल शीघ्र नष्ट हो जाता है।

**अश्रोत्रियेषु वै दानादद्वप्तलेषु तत्त्वैव च।
विहिताद्यारहीनेषु क्षिप्रं नश्यति वै कुलम्॥ २२॥**

उसी प्रकार अश्रोत्रियों को, शुद्धों को तथा शास्त्रविहित आचारों से हीन पुरुषों को दान देने से (उद्ध जाति का) कुल भी अवश्य नष्ट हो जाता है।

**नार्थापिकैवृति श्रामे न व्याधिवाहुते भृशम्।
न शुद्राद्ये निवसेन्न पाखण्डजनैवृति॥ २३॥**

अधार्मिकों से व्याप्त तथा अनेक प्रकार की व्याधियों से अत्यन्त संकुल ग्राम में और पाखण्डी लोगों से घिरे हुए शूद्र के राज्य में निवास नहीं करना चाहिए।

**हिमवहित्ययोर्पिण्ये पूर्वपश्चिमयोः शुभम्।
मुक्त्वा समुद्रयोर्हेशं नान्यत्र निवसेद्विजः॥ २४॥**
कृष्णो वा यत्र चरति पृष्ठो नित्यं स्वभावतः।
पुण्यस्त्रुता विश्रुता नद्यस्त्र वा निवसेद्विजः॥ २५॥

हिमवान् और विध्याचल के मध्य का शुभ प्रदेश और पूर्व तथा पश्चिम के उत्तम समुद्री भागों को छोड़कर अन्यत्र कहीं पर भी द्विज को वास नहीं करना चाहिए अथवा उस स्थान पर जहाँ कृष्णमृग स्वच्छन्दतापूर्वक विचरते हों तथा जहाँ ग्रसिद्ध पवित्र नदियाँ बहती हों, वहीं पर द्विज को निवास करना चाहिए।

**अर्द्धकोशात्रदीकृतं वर्जयित्वा द्विजोत्तमः।
नान्यत्र निवसेत्पुण्यो नान्यत्रज्ञामसक्षिण्यौ॥ २६॥**

अथवा प्रत्येक उत्तम द्विज को किसी भी नदी के किनारे आगे मील पवित्र प्रदेश को छोड़कर अन्यत्र कहीं भी निवास नहीं करना चाहिए और निम्नवर्णों के ग्राम के समीप भी निवास नहीं करना चाहिए।

न संवसेय पतितैर्व घण्डालैर्व पुक्कसैः।
न मूर्खेन्वलिमैष्टु नान्यैर्नान्यावासायिभिः॥ २७॥

उसी प्रकार धर्म से पतित लोगों के साथ, चांडालों के साथ, पुक्कस जाति के लोगों के साथ, मूर्खों के साथ, चमड़ियों के साथ, निम्न जाति के लोगों के साथ तथा उनके साथ रहने वालों के साथ भी (द्विज को) निवास नहीं करना चाहिए।

एकशब्दास्त्वं पंक्तिर्भाण्डपक्षात्रायिक्षणम्।
याजनाव्यापने योनिस्तर्वैव सहभोजनम्॥ २८॥
सहाव्याप्तु दशमः सहाजनमेव च।
एकादशैति निर्विष्टा दोषाः साकूर्यसंज्ञिताः॥ २९॥

(उन लोगों के साथ) एक शश्या पर सोना और बैठना, एक पंक्ति में भोजन करना, उनके बर्तनों में खाना, पके हुए अव्र को मिश्रित करना, उनका यज्ञ करना, उनको पढ़ाना, उनके साथ विवाहादि करना, एक साथ भोजन करना, एक साथ पढ़ना और एक साथ यज्ञ करना— ये एकादश दोष सांकर्य नाम वाले कहे गये हैं अर्थात् वर्णसंकरता के कारण होने वाले दोष हैं।

सपोषे वा व्यवस्थानात्पापे संक्रमते तृणाम्।
तस्यात्पर्यप्रयत्नेन संकरं वर्जयेद्युषः॥ ३०॥
एकपंक्त्युपविष्टा ये न स्पृशन्ति परस्परम्।
भस्मना कृतपर्यादा न तेषां संकरो भवेत्॥ ३१॥

(इतना ही नहीं) ऐसे लोगों के समीप उठने-बैठने से भी उनका पाप संक्रमित हो जाता है, इसलिए बुद्धिमान् को सब प्रकार से प्रयत्नपूर्वक वर्णसंकरों का त्याग करना चाहिए। परन्तु कुछ लोग जो उनके साथ एक पंक्ति में बैठे हों और परस्पर एक-दूसरे को स्पर्श न करते हों तथा भस्म द्वारा (रेखा से) जिसने सीधा बाँध दी हो, उनको सांकर्य दोष नहीं लगता।

अग्निना भस्मना चैव सलिलेन विशेषतः।
द्वारेण स्तम्भयार्गेण पाइभः पंक्तिर्विभिष्टो॥ ३२॥

इस प्रकार अग्नि से, भस्म से, विशेषतः जल के प्रोक्षण से, द्वार खड़ा कर देने से, स्तम्भ लगा देने से तथा मार्ग में

१. एक अधम जाति। मनु के अनुसार शूद्रा में उत्तम निषाद की सन्तान को पुक्कस कहा जाता है— जाते निषादचूद्रायां जात्या भवति पुक्कसः (मनु० १०.१८)

अबरोध खड़ा कर देने से— इन छः प्रकार की क्रियाओं से पंक्ति का भेदन हो जाता है।

न कुर्यादुःखवैराणि विवादं चैव ऐश्वर्यम्।
परक्षेव गां चरन्ती न चाचक्षति कस्यचित्॥ ३३॥
किसी से भी अकारण शब्दुता, झगड़ा और चुगलखोरी नहीं करनी चाहिए। दूसरे के खेत में चरती हुई गौ के बारे में किसी को नहीं कहना चाहिए।

न संवसेत्सूतकिना न कश्चिन्मर्याणि स्मृशेत्।
न सूर्यपरिवेष वा नेन्द्र्यापं शवान्मिकम्॥ ३४॥
परस्मै कथयेद्विद्वावृश्निं वा कदाचन।
न कुर्याद्विषिः सार्वं विरोधं वा कदाचन॥ ३५॥
किसी भी सूतकी के साथ नहीं सोना चाहिए। किसी को भी मर्मस्थान में स्पर्श न करें। सूर्य के चारों ओर का मंडल, इन्द्रधनुष, चिताग्नि तथा चन्द्र-मंडल को देखकर भी विहान् पुरुष दूसरे से न कहें। बहुत से लोगों के साथ और बन्धु-बान्धवों के साथ कभी भी विरोध नहीं करना चाहिए।

आत्मनः प्रतिकूलानां परेणां न समाचरेत्।
तिथि पञ्चस्य न दृयाक्षक्षत्राणि विनिर्विशेत्॥ ३६॥

जो कुछ अपने प्रतिकूल हो अथवा स्वयं को अच्छी न लगती हो, वैसा आचरण दूसरों के लिए भी नहीं करना चाहिए। कोई भी पक्ष की तिथि को न बतावे और नक्षत्रों के विषय में भी निर्देश न करे।

नोदक्यापिष्ठाषेत नाशुचिं वा हिजोन्तपः।
न देवगुरुविश्राणां दीयमानं तु वारयेत्॥ ३७॥
श्रेष्ठ द्विज रजस्वला स्त्री से बात न करे और अपवित्र व्यक्ति के सामने भी बार्तालाप न करे। यदि देवता, गुरु या विप्रों के निमित्त कुछ दिया जा रहा हो तो उसको रोकना नहीं चाहिए।

न चात्मानं प्रश्नेद्वा परनिन्दाश्च वर्जयेत्।
वेदनिन्दा देवनिन्दा प्रयत्नेन विवर्जयेत्॥ ३८॥
अपनी प्रश्नांसा कभी न करे और दूसरों की निन्दा का त्याग करें। उसी प्रकार वेदनिन्दा तथा देवनिन्दा का भी यत्पूर्वक त्याग करना चाहिए।

यस्तु देवानृथीन् विश्रान् वेदान्वा निन्दति द्विजः।
न तस्य निष्कलिर्दृष्टा शास्त्रेष्विह मुनीष्वराः॥ ३९॥
निन्दयेद्वै गुरुदेवान्वेदं वा सोपबृहणम्।

कल्पकोटिशतं सात्रं रौरवे पच्यते नरः॥४०॥

क्योंकि हे मुनोष्ठो ! जो द्विज देवों, त्रैषिंयों, विश्रों अथवा वेदों की निन्दा करता है, उनके लिए शास्त्रों में इस लोक में कोई प्रायश्चित्त नहीं देखा गया है। और भी जो गुरुओं, देवों तथा उपर्युक्त (अंग) सहित वेद की निन्दा करता है, वह सीं करोड़ कल्पों से भी अधिक समय तक रौरव नामक नरक में पकाया जाता है अर्थात् कष्ट भोगता है।

तृष्णीयासीत् निन्दायो न दृयात्किञ्चिदुत्तरम्।

कर्णी पिधाय गनव्य न चैतानवलोकयेत्॥४१॥

उसी प्रकार इन सबकी जहाँ निन्दा हो रही हो, वहाँ सुनने वाला चुप रहे और कोई भी उत्तर न दे तथा दोनों कान बंद करके कहीं अन्यत्र चला जाना चाहिए और निन्दा करने वालों को देखना भी नहीं चाहिए।

वर्जयेद्दृ रहस्यम् परेषां गृहयेद्वृः।

विवादं स्वजनैः सादृ न कुर्याद्दृ कदाचन॥४२॥

बुद्धिमान् पुरुष दूसरों के रहस्य को किसी के सामने प्रकट न करे। अपने बन्धुओं के साथ कभी भी विवाद नहीं करना चाहिए।

न पापं पापिनं दूयादपापं वा द्विजोत्तमाः।

स तेन तुल्यदोषः स्यान्मिथादिदोषवान् भवेत्॥४३॥

हे द्विजोत्तमो ! पापी को उसके पाप के विषय में न कहें और वैसे ही अपाप को भी पापी न कहें। ऐसा करने वाला वह पुरुष उसके समान ही दोषयुक्त होता है अर्थात् जो पापी को दोष लगता है, वही उसको भी लगता है और (अपापी को पापी कहने से) मिथ्यादि दोषयुक्त भी वह हो जाता है। अर्थात् दूरा आरोप लगाने से वह उस दोष का भी भागी होता है।

यानि मिथ्याभिशस्तानो पतन्त्रशृणि रोदनात्।

तानि पुत्रान् पश्नून् घन्ति तेषां मिथ्याभिशस्तिनाम्॥४४॥

उसी प्रकार जिन पर यह मिथ्या आरोप किया गया हो, (इस दुःख के कारण) रोने से, उनके जितने औंसु गिरते हैं, उतने ही संलग्न में उन मिथ्या आरोप करने वालों के पुत्रों और पशुओं का हनन होता है।

द्रष्ट्वा हत्यासुरापाने स्तेव्युर्वृक्षनागये।

दृष्टं विशेष्यनं सदिन्नर्सिं मिथ्याभिशंसने॥४५॥

ब्रह्महत्या, सुरापान, चोरी तथा गुरुपत्रों के साथ व्यापिचार करने वाले पापी को शुद्ध करने वाला प्रायश्चित्त

सद्गां द्वारा (शास्त्र में) देखा गया है, परन्तु मिथ्यारोपी के लिए कोई प्रायश्चित्त नहीं है।

नेष्टोष्टन्तपादित्यं शशिनश्चनिमित्ततः।

नास्तं यातं न वारिस्वं नोपसृष्टं न मध्यगम्॥४६॥

विना निमित्त के किसी भी पुरुष को उदित होता हुआ सूर्य और चन्द्र को नहीं देखना चाहिए। वैसे ही अस्त होते हुए, जल में प्रतिविमित्त, ग्रहण से उपसृष्ट और आकाश के मध्य में स्थित सूर्य और चन्द्र को नहीं देखना चाहिए।

तिरोहितं वाससा वा न दर्शनतरगामिनम्।

न नग्नां स्त्रियमीक्षेत पुस्त्रं वा कदाचन॥४७॥

न च मूत्रं पुरीयं वा न च मंसृष्टैयुनम्।

नाशुचिः सूर्यसोमादीन् ब्रह्मानालोकयेद्वयः॥४८॥

उसी प्रकार बस्त्र से ढैके हुए अथवा दर्पण के भीतर प्रतिविमित्त सूर्य और चन्द्र को कभी नहीं देखना चाहिए। नन स्त्री अथवा पुरुष को कभी भी न देखें। वैसे ही (अपने या अन्य के) मूत्र या विष्णु को नहीं देखना चाहिए तथा मैथुनासक किसी भी मिथुन को नहीं देखना चाहिए। उसी प्रकार बुद्धिमान् पुरुष को अपनी अपवित्र अवस्था में सूर्य-चन्द्रादि किसी भी ग्रह को नहीं देखना चाहिए।

पतितव्यहृचण्डालानुच्छिष्टावलोकयेत्।

नाभिष्येत च परमुच्छिष्टो वावर्गादितः॥४९॥

उसी प्रकार पतित, विकलाङ्ग, चाण्डाल तथा अशुद्ध लोगों को नहीं देखना चाहिए। अथवा स्वयं उच्छिष्ट हो और मुख ढैककर बैठा हो, तब उसे किसी से वार्तालाप नहीं करना चाहिए।

न स्पृशेत्यतसंस्पर्शं न कुम्हस्य गुरोर्मुखम्।

न तैलोदकयोश्चायां न पल्ली भोजने सति।

नियुक्तव्यनाहृं वा नोन्मत्तं मत्तयेव वा॥५०॥

जिसने मृतशरीर का स्पर्श किया हो, उसे स्पर्श न करें और कुम्ह हुए गुरुजन के मुख को, तेल या जल में अपनी छाया को, भोजन करते समय पल्ली को, अयोग्य हैंग से बैधे हुए गाय-बैल को, उन्मत्त एवं मदमत व्यक्ति को नहीं देखना चाहिए।

नाशनीयात् भार्या सादृ नैनामीक्षेत मेहनीम्।

क्षुवन्नीं जृष्यमाणां वा नासनस्यां यथामुखम्॥५१॥

अपनी भार्या के साथ कभी भोजन न करे। वह जब पेशाव कर रही हो, छींक कर रही हो, जम्हाई ले रही हो या

सुखपूर्वक आसन पर बैठी हो, तो उस अवस्था में भी उसे न देखें।

नोदके चात्यनो रूपं शुभं वाशुभेव वा।
न लङ्घयेद्य मूत्रं वा नाशितिष्टेत्कदाचन॥५२॥

अपना रूप शुभ हो अथवा अशुभ, उसे जल में नहीं देखना चाहिए। किसी के भी मूत्र को कभी लौंघे नहीं और न उसके ऊपर खड़ा रहे।

न शुद्धाय मतिन्द्रात्कृशरं पापम् दद्यि।
नोच्छिष्टं वा पृतम्भु न च कृष्णाजिनं हविः॥५३॥

कोई भी दिज शूद्र जाति के मनुष्य को सदयुदि (उपदेश) प्रदान न करे (क्योंकि उसके लिए वह योग्य ही नहीं है)। उसे कृशर (खोचडी), खोर, दहों तथा अपवित्र घृत या मधु भी न दे। उसी तरह उसे कृष्णमृगचर्म और हविष्याम भी न दें।

न चैवास्मै व्रतं दण्डनं च धर्मं वदेद्युधः।
न च क्रोधवशङ्गुच्छेद्येवं रागाङ्गु दद्यन्येत्॥५४॥
लोभं दार्थं तथा यत्कादसूयां ज्ञानकृत्सनम्।
यानं योहं तथा क्रोधं द्वेषं एविवर्जयेत्॥५५॥

कोई भी विद्वान् उस शूद्र को व्रत धारण न करावे और धर्म का उपदेश भी न दे। उसके सामने क्रोध के वशीभूत न हो और द्वेष तथा राग को भी त्याग दे। लोभ, धमण्ड, असूया (दूसरों के गुणों में दोषारोपण करना), ज्ञान की निन्दा, मान, मोह, क्रोध तथा द्वेष को यत्पूर्वक त्याग देना चाहिए।

न कुर्यात्कस्यचित्पीडां सुतं शिष्यञ्ज ताडयेत्।
न हीनानुपमेवेत न च तीक्ष्णापतीन् क्वचित्॥५६॥
किसी भी व्यक्ति को पीड़ित न करे (परंतु हित की दृष्टि से) अपने पुत्र और शिष्य को प्रतिडित किया जा सकता है। कभी भी हीन व्यक्ति का आश्रय ग्रहण न करे और वैसे ही तीखी बुद्धि वाले का भी आश्रय न ले।

नात्मानश्चावमन्येत दैन्यं यत्नेन वर्जयेत्।
न विशिष्टानसत्कुर्यात्रात्मानं शंसयेद्युधः॥५७॥
बुद्धिमान् पुरुष को अपनी अवमानना नहीं करनी चाहिए और दीनभाव को भी प्रयत्नपूर्वक त्याग देना चाहिए। अपने

1. वन्यं यात्राविज्ञानकृत्सनम्। इति याठः।
2. न चाशित्यं न.. इति याठः।

से उत्तम व्यक्तियों का अनादर नहीं करना चाहिए और स्वयं को संशयग्रस्त नहीं होना चाहिए।

न नर्तुर्विलिखेद्युमि गां च संवेशयेत् हि।

न नदीषु नदी दूयात्पवेते न च पर्वतान्॥५८॥

नदों से भूमि को कूतरना नहीं चाहिए और गाय पर सवारी नहीं करनी चाहिए। नदी में स्थित रहते हुए (अन्य) नदी के विषय में कुछ न कहे और पर्वत में विचरते हुए (दूसरे) पर्वतों के विषय में चर्चा न करे।

आ वसेतेन नैवापि न त्पजेतसहयायिनम्।

नावगाहेदपो नमो बहिष्टापि द्रजेत्पदा॥५९॥

आवास और भोजन के समय अपने साथ रहने वाले साथी को कभी छोड़ना नहीं चाहिए। जल में नमन होकर हनान न करे तथा अनि पर पैर रखाकर कभी न चले।

शिरोऽध्याहूवशिष्टेन तैलेनाङ्कं न लेपयेत्।

न शस्त्रसर्पैः कीड़ेत न स्यानि खानि च सृष्टेत्॥६०॥

शिर पर मालिस करने के बाद चबे हुए तेल से दूसरे अङ्गों पर लेप न करें। शस्त्र और सर्प से खिलबाढ़ न करे और अपनी इन्द्रियों को भी स्पर्श न करें।

रोपाणि च रहस्यानि नाशिष्टेन मह द्रजेत्।

न पाणिपादावमौ च चापलानि समाश्रयेत्॥६१॥

अपने गुप्तस्थानों के रोपों को स्पर्श न करे तथा असभ्य व्यक्ति के साथ गमन न करे। अनि में हाथ-पैर डालने की चपलता ग्रहण न करे।

न शिष्मोदरयोर्नित्यं न च क्रवणयोः क्वचित्।

न चाङ्गनखयादं वै कुर्यात्राङ्गुलिना पिवेत्॥६२॥

उसी प्रकार लिङ्ग, उदर और कानों की चपलता भी कभी न करे। अपने किसी अंग या नख को नहीं बजाना चाहिए तथा अड़ाल करके जलादि पीड़ा नहीं चाहिए।

नापिहन्याज्जलं पद्मयां पाणिना वा कदाचन।

न शातयेदिष्टकामिः फलानि सफलानि च॥६३॥

कभी भी अपने हाथ या पैरों से जल को आहत नहीं करना चाहिए। ईट-पत्थर लेकर फलों को नहीं तोड़ना चाहिए और फलों से भी फलों को नहीं तोड़ना चाहिए।

न म्लेच्छाभाषणं शिष्मेष्टाकर्येद्यं पदासनम्।

न भेदनमधिस्फोटं छेदनं वा विलेखनम्॥६४॥

कुर्याद्विद्वनं धीमननाकस्मादेव निष्फलम्।

नोत्सङ्के भक्षयेद्दद्यवान् वृथावेष्टाङ्गु नाशरेत्॥६५॥

मनेच्छ लोगों को भाषा को सीखना नहीं चाहिए और पैर से आसन को खींचना नहीं चाहिए। बुद्धिमान् को अकस्मात् व्यर्थ ही नाखूनों से चौराना, बजाना, उससे काटना या कूतरना आदि नहीं करना चाहिए और व्यर्थ ही अंगों का मर्दन नहीं करना चाहिए। भक्ष्य पदार्थों को अपनी गोद में रखकर नहीं खाना चाहिए और व्यर्थ चेष्टाएँ भी नहीं करना चाहिए।

न नृत्येदवा गायेत्र वादित्राणि वादयेत्।
न संहताप्यां पाणिप्यां कण्ठूयेदात्मनः शिरः॥६६॥

उसी प्रकार (विना प्रयोजन के) नृत्य और गायन नहीं करना चाहिए तथा बाय-यन्त्र भी नहीं बजाने चाहिए। अपने शिर को दोनों हाथों से खुजलाना नहीं चाहिए।

न लौकिकैः स्तर्वैदेव्यांस्तोषयेद्यजैरपि।
नाक्षीः क्रोडेत्र धावेत नापु विष्णूव्रमाचरेत्॥६७॥

लौकिक स्तोत्रों द्वारा देवों की स्तुति नहीं करनी चाहिए और औपरिधियों से भी उन्हें सन्तुष्ट करने का प्रयत्न न करे। पाशों से जू़आ नहीं खेलना चाहिए और जलाशय में मल-मूत्र का त्याग नहीं करना चाहिए।

नोच्छिष्टः संविशेशितं न नमः स्नानमाचरेत्।
न गच्छेत्र पठेद्वापि न चैव स्वशिरः स्पृशेत्॥६८॥

अपवित्र होकर कभी सोना नहीं चाहिए और निर्वस्त्र होकर स्नान नहीं करना चाहिए। उसी अवस्था में न चले, न पढ़े और न अपने शिर को स्पर्श करे।

न दन्तैर्नखुरोमाणि छिन्द्यात्सुसं न योषयेत्।
न बालातपयासेवेत् प्रेताद्युपं विवर्जयेत्॥६९॥

दृतों से नाशून और रोएँ न काटे। सोये हुए को जगाना नहीं चाहिए। प्रातः कालीन सूर्य की धूप का सेवन न करे और शवाग्नि के धूएँ का त्याग कर देना चाहिए।

नैकः सुप्याकृत्यग्ने स्वयं नोषानहीं हरेत्।
नाकारणाद्वा निष्ठोवेत्र बाहुप्यां नदीं तरेत्॥७०॥

सूने घर में अकेले सोना नहीं चाहिए और स्वयं अपने जूतों को उटाकर नहीं ले जाना चाहिए। अकारण थूकते नहीं रहना चाहिए तथा मात्र भुजाओं के बल से नदी को पार नहीं करना चाहिए।

न पादक्षालनं कुर्यात्पादेनैव कदाचन।
नाम्नौ प्रतापयेत्यादौ न कांस्ये धावयेद्वयः॥७१॥

कभी भी अपने पैरों से पैरों को धोना नहीं चाहिए। विद्वान् पुरुष को दोनों पैर अग्नि में तपाने नहीं चाहिए और कांस्य पात्र में भी पाँव धोने नहीं चाहिए।

नानिप्रसारयेदेवं द्वाहाणान् गाम्यापि वा।
वाव्यनिगुरुविप्रान्वा सूर्यं वा शशिनं प्रति॥७२॥

देवताओं, ब्राह्मणों तथा गौओं, बायु, अग्नि, गुरु, विष तथा सूर्य और चन्द्रमा को तिरस्कृत नहीं करना चाहिए।

अशुद्धशयनं यानं स्वाध्यायं स्नानभोजनम्।
वहिनिकमण्डुव न कुर्यात् कश्चुन॥७३॥

अशुद्ध स्थिति में शयन करना, यात्रा करना, स्वाध्याय करना, स्नान और भोजन करना तथा घर से बाहर जाना आदि कभी भी नहीं करना चाहिए।

स्वप्नप्रवद्यनं यानमुद्यारं भोजनं गतिम्।
उभयोः सम्ययोर्नित्यं प्रव्याह्वे तु विवर्जयेत्॥७४॥

दोनों सम्भ्या काल में तथा मध्याह्न में सोना, अध्ययन करना, बाहन पर चढ़ना, भोजन करना और मल-मूत्र का त्याग करना आदि का त्याग कर देना चाहिए।

न स्फृशेत्याणिनोच्छिष्टो विष्णो गोद्वाहाणानलान्।
न चैवाक्रं पदा वापि न देवप्रतिष्ठां स्मृशेत्॥७५॥

द्विज अपवित्र होने पर अपने हाथों से गौ, ब्राह्मण और अग्नि का स्पर्श न करे तथा कोई भी अपने पैरों से अन्न तथा देवप्रतिष्ठा का स्पर्श न करे।

नाशुद्वाऽग्निं परिचरेत्र देवान् कीर्तयेदूषीन्।
नावगाहेदगायाम्यु धारयेत्राग्निमेकतः॥७६॥

अपवित्र होने पर अग्नि की परिचर्या, देवों तथा ऋषियों का कीर्तन न करे। गहरे जल में स्नानार्थ प्रवेश न करे तथा अपने किसी भी एक भाग में अग्नि को धारण न करे।

न यामहसोनोदृत्यं पिवेदृक्षेण वा जलम्।
नोत्तरेदनुपस्मृश्य नाप्यु रेतः समुत्सजेत्॥७७॥

अपने चाँचे हाथ को उठाकर मुख से जल को नहीं धीना चाहिए। जल का उपस्मरण करके ही उसमें प्रवेश करे और जल में चीर्य का त्याग न करे।

अपेक्षलिप्तमन्यद्वा लोहितं वा विषाणि वा।
व्यतिक्रमेत्र खवन्तीं नाप्यु पैथुनमाचरेत्॥७८॥

अपवित्र बस्तु से लिस किसी पदार्थ का, खून का, विष का तथा नदी का अतिक्रमण कभी न करे और कभी भी जलाशय आदि में मैथुन न करे।

चैत्यं दृष्टं न वै छिन्नाद्राप्यु ष्ठीवनमुल्स्तेत्।
नास्थिभस्मकपालानि न केशान्न च कण्टकान्।
ओषांगारकरीयं वा नादिनिष्ठेत्कदाच्चन॥७९॥

चैत्य (यज्ञस्थान) या चौराहे के बृक्ष को कभी न काटे और पानी में कभी थूकना नहीं चाहिए। जल में कभी भी अस्थि, भस्म, कपाल, केश, कॉट, धान के छिलके, अंगार और गोबर नहीं डालना चाहिए।

न चार्निं लंघयेद्दीपाद्वोपदद्याद्यः क्वचित्।
न चैत्यं पादतः कुर्यान्मुखेन न धमेद्द्युयः॥८०॥

बुद्धिमान् पुरुष कभी भी अग्नि को लाँच नहीं और उसे अपने पास भी न रखे। उसी प्रकार अपने पैरों को तरफ अग्नि को न रखे और मुख से अग्नि को फूँकना भी नहीं चाहिए।

न कृषपवरोहेत नाचक्षीताशुचिः क्वचित्।
अग्नौ न प्रस्त्रिपेदर्थिं नादिः प्रश्नपयेत्तथा॥८१॥

अपवित्र व्यक्ति को कुर्यां के ऊपर चढ़ना चाहिए और न कभी उस में मुँह डालकर देखना चाहिए। अग्नि में अग्नि का प्रक्षेप न करे और जल से उसे बुझाना भी नहीं चाहिए।

मुहन्मरणमार्ति वा न स्वयं श्रावयेत्परान्।
अपश्यपथं पण्यं वा विक्रये न प्रयोजयेत्॥८२॥

किसी को भी अपने मित्र की मृत्यु अथवा उसके दुःख का समाचार स्वयं दूसरों को सुनाना नहीं चाहिए। जो विक्रय के अशोभ हों और जो छल-कपट द्वारा प्राप्त हों, ऐसे पदार्थों का प्रयोग नहीं करना चाहिए।

न वास्तु मुखनिशामैर्ज्वालयेत्राशुचिर्वृद्धिः।
पुण्यस्नानोदकस्नाने सीमानं वा कृपेत्र तु॥८३॥

उसी प्रकार बुद्धिमान् पुरुष अपवित्र अवस्था में अग्नि को अपने मुख से फूँक देकर प्रज्वलित न करे। ऐसी अवस्था में तीर्थस्थान के पवित्र जल में स्नान न करे तथा उसकी सीमा पर्यन्त भूमि को भी न जोते।

न भिन्नात्पूर्वसम्पर्यं सत्योपेते कदाचन।
परस्परं पश्नून् व्यालान् पश्चिमो नावबोधयेत्॥८४॥

इसी प्रकार सत्य से युक्त पूर्व प्रतिज्ञ नियम को तोड़ना नहीं चाहिए तथा परस्पर पशुओं को, सर्पों को और पश्चिमों को लड़ाने के लिए प्रेरित नहीं करना चाहिए।

परवाणां न कुर्वात जलयानायनादिभिः।
कारगिल्या सुकर्माणिं कारून् पश्चात्र वर्जयेत्।

सायं प्रातर्गृहद्वाग्नं भिस्तार्यं नावघाटयेत्॥८५॥

जल, बायु और धूप द्वारा दूसरे को बाधा नहीं पहुँचानी चाहिए। अच्छे काम करा लेने के बाद बाद में कारीगरों को (पारिश्रमिक दिये बिना) छोड़ नहीं देना चाहिए। उसी प्रकार सायं तथा प्रातः काल भिक्षा के उद्देश्य से आने वालों के लिए घर के द्वार बन्द नहीं कर देने चाहिए।

वहिर्गत्यं वहिर्गत्यं भार्या सह भोजनम्।

विग्रहवादं कुद्वारप्रवेशं च विवर्जयेत्॥८६॥

उसी प्रकार बाहर की कोई दूसरे अनजाने व्यक्ति की माला धारण न करे। बाहर के गम्ब-चन्दन आदि, पत्ती के साथ भोजन करना, विश्रहपूर्वक विवाद और कुत्सित द्वार से प्रवेश आदि का त्याग कर देना चाहिए।

न खादन् ब्राह्मणस्तिष्ठेन्न जल्पन्न हसन् दुष्टः।

स्वप्रभिन्नं नैव हसेन सूर्योद्गाम्यु चिरं वसेत्॥८७॥

किसी भी विद्वान् ब्राह्मण को खाते हुए खाड़ा नहीं होना चाहिए और हँसते हुए बोलना नहीं चाहिए। अपने हाथ से अपनी अग्नि का स्वर्ण नहीं करना चाहिए और देर तक पानी के भीतर नहीं रहना चाहिए।

न पश्चकेणोपद्येन्न शूर्येण न पाणिना।

पुखैर्नैव धपेदर्थिं मुखादग्निरजायत॥८८॥

अग्नि को पंखे से, सूर्य से या हाथ से (हवा देकर) प्रज्वलित नहीं करना चाहिए। मुख से (फूँकनी द्वारा) अग्नि को जलाना चाहिए क्योंकि (परमात्मा के) मुख से ही अग्नि की उत्पत्ति हुई है।

परस्तियं न भावेत नावास्यं योजयेद् ह्रिजः।

नैकञ्चरेत् सभां विप्रसमवायं च वर्जयेत्।

देवतायतनं गच्छेत्कदाचिन्नाप्रदक्षिणाम्॥८९॥

न वीजयेत्प्रावल्लेशं न देवायतने स्वपेत्।

द्विज को परस्त्री के साथ बात नहीं करने चाहिए और जो यज्ञ कराने के लिए योग न हो, उसके यज्ञादि नहीं कराने चाहिए। ब्राह्मण को सभा में अकेले नहीं जाना चाहिए तथा मण्डली का भी त्याग कर देना चाहिए अर्थात् एक-दो व्यक्तियों के साथ ही जाना चाहिए। देवालय में बालों ओर से कभी भी प्रवेश नहीं करना चाहिए अथवा बिना प्रदक्षिणा के देवमन्दिर में नहीं जाना चाहिए। किसी भी वस्त्र से हवा नहीं करनी चाहिए और देवमन्दिर में सोना नहीं चाहिए।

नैकोऽव्यानं प्रपष्ठेत नार्यार्पिकाजनैः सह॥९०॥

न व्याधिदृष्टैर्बाधि न शूद्रैः पतितैर्व वा।

नोपानद्विजितोऽस्त्रानं जलादिरहितस्त्राणा॥ ११॥

मार्ग में कभी भी अकेले, अधार्मिक जनों के साथ, रोगप्रस्त भनुओं, शूद्रों और परितों के साथ नहीं जाना चाहिए। बिना जूता पहने तथा बिना जल लिये हुए भी यात्रा नहीं करनी चाहिए।

न रात्रो वारिणा सार्द्धं न विना च कमण्डलुम्।

नामिणोद्वाहणादीनामनतरेण द्रवेत्कवचित्॥ १२॥

रात्रि में, शत्रु के साथ और बिना कमण्डलु लिए तथा अग्नि, गौ अथवा ब्राह्मण आदि को साथ लिये बिना कहीं नहीं जाना चाहिए।

निवलस्यन्तीं न वनितापतिक्रापेद् द्विजोत्पाः।

न निदेष्टोगिनः सिद्धान् गुणिनो वा यतींस्त्राणा॥ १३॥

हे श्रेष्ठ ब्राह्मणो! अच्छे आचरण वाली नम्र स्वभाव की स्त्री का तिरस्कार न करें। उसी प्रकार योगियों, सिद्धों और गुणवान् संन्यासियों की भी निन्दा न करें।

देवतायतने प्राज्ञो न देवानां च सक्षियै।

नाक्रापेत्कापतश्छायां द्वाहणानां गवामपि॥ १४॥

बुद्धिमान् पुरुष को देवमन्दिर में या देवमूर्तियों के सामने ब्राह्मणों की तथा गौओं की परछाई को जानबूझकर नहीं लौंघना चाहिए।

स्वां तु नाक्रपयेच्छायां पतितादीर्नं रोगिभिः।

नाक्षारभस्मकेशादिष्वयितिष्ठेत्कदाव्यन्॥ १५॥

उसी प्रकार पतित आदि नीच लोगों से अथवा रोगियों से अपनी छाया को लौंघने नहीं देना चाहिए और कभी भी अंगार, भस्म, केश आदि पर खड़े नहीं होना चाहिए।

वर्जयेन्मार्बनीरेणु स्नानवस्त्रपटोदकम्।

न भक्षयेदभृत्याणि नापेयक्षापिवेदिद्वाजा॥ १६॥

हे द्विजो! झाड़ की धूल, स्नान किया हुआ बरस और उस घड़ के जल का त्याग कर देना चाहिए अर्थात् उस जल को पुनः काम में नहीं लाना चाहिए। उसी प्रकार अभृत्य पदार्थों का भक्षण नहीं करना चाहिए और अपेय पदार्थों को पीना भी नहीं चाहिए।

इति श्रीकृष्णपुराणे उत्तरार्द्धे गार्हस्त्वधर्मनिरूपणे नाम
षोडशोऽध्यायः॥ १६॥

समदशोऽध्यायः

(भृत्याभृत्यनिर्णय)

व्यास उवाच

नाशाच्छूदस्य विप्रोऽन्नं मोहाद्वा यदि वान्यतः।

स शूद्रयोनि द्रवति यस्तु भुज्ञे हृनापदि॥ १॥

ब्राह्मण को शूद्र का अत्र नहीं खाना चाहिए। आपात्काल को छोड़कर जो मोहवज्ज या अन्य प्रयोजन से शूद्र का अत्र खाता है, वह शूद्रयोनि को ही प्राप्त होता है।

वषष्मासान्यो हितो भुज्ञे शूद्रस्यान्नं विगर्हितम्।

जीववेव भवेच्छूद्रो मृत एवाभिजायते॥ २॥

जो हिज छः मास तक निरन्तर शूद्र का निनित आहार ग्रहण करता है, वह जीवित अवस्था में ही शूद्र हो जाता है और मरणोपरान्त भी उसी योनि को प्राप्त होता है (या आनयोनि में जाता है)।

द्वाहणक्षत्रियविशां शूद्रस्य च मुनीश्वराः।

यस्याद्वेदोदरस्येन पृतस्तद्योनिमाम्नयात्॥ ३॥

हे मुनीश्वरो! ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र में से जिसका भी अत्र उदर में स्थित रहता है, मृत्यु के पश्चात् वह उसी योनि को प्राप्त करता है।

नटान्नं नर्तकाश्रुं तक्षणोऽन्नं चर्पकारिणः।

गणान्नं गणिकाश्रुं षड्जानि च वर्जयेत्॥ ४॥

नट (अथवा राजा), नर्तक, बड़ई, चर्पकार (मोनी) किसी जनसमूह का और वेश्या का अत्र— इन छः प्रकार के अन्यों का त्याग करना चाहिए।

चक्रोपजीविरजकतस्कर्वयिनां तथा।

गच्छर्वलोहकारान्नं सूतकाश्रुं वर्जयेत्॥ ५॥

उसी प्रकार चक्रोपजीवि अर्थात् चक्र निर्माण करके आजीविका चलाने वाला या तैली, कपड़े रंगने वाला या धोबी, चोर, मध्यविक्रीयी, गायक, लुहार तथा सूतक के अत्र का भी त्याग करना चाहिए।

कुलालचित्रकर्मान्नं वास्त्रिः पतितस्य च।

सुवर्णकारशैलूपव्याघ्रवद्वातुरस्य च॥ ६॥

चिकित्सकस्य धैवान्नं पुंश्चल्या दण्डकस्य च।

स्तेननास्तिक्योरन्नं देवतानिदकस्य च॥ ७॥

सोमविक्रियिणश्चान्नं शुपाकस्य विशेषतः।

उसी प्रकार कुम्हार, चित्रकार, व्याज लेने वाले, पतित (धर्माचरण से रहित) सुनार, नर, व्याध, कैदी, रोगी, चिकित्सक, छविचारिणी ली, पाखण्डी, चोर, नास्तिक, देवनिन्दा करने वाला, सोम बेचने वाले तथा शपाक-चाण्डाल के अन्न का विशेषरूप से स्थान कर देना चाहिए।

भार्याजितस्य चैवात्रं दस्य चोपपतिगृहै॥ ८॥

उच्छिष्टस्य कदर्दस्य तदैवोच्छिष्टमेजिनः।

जो खो का वंशागामी हो और जिसके घर में पत्नी का प्रेमी (जार पुरुष) रहता हो, जो अपवित्र रहता हो, जो कंजूस हो और जो सदा उच्छिष्ट अन्न खाने वाला हो, उसके अन्न को भी त्याग दे।

अपंकन्त्यन्नं संथात्रं शस्त्रजीवस्य चैव हि॥ ९॥

कलीवसन्यासिनद्वात्रं पत्नोन्मत्तस्य चैव हि।

भीतस्य रुदितस्यात्रमवकृण्ठं परिग्रहम्॥ १०॥

पंक्ति (अपनी विरादी) से चाहर हुए व्यक्ति का अन्न, समुदाय विशेष का अन्न, जो मनुष्य शख्सजीव हो, नपुंसक हो, संन्यासी हो, शराबी, उन्मत्त और भयभीत हो, जो रोते रहता हो, जो तिरस्कृत हुआ हो और जिस पर छोंका गया हो, ऐसे अन्न को ग्रहण नहीं करना चाहिए।

ब्रह्मद्विषः पापरुदेः श्राद्धात्रं सूतकस्य च।

दृद्यापाकस्य चैवात्रं शठात्रं चतुरस्य च॥ ११॥

ब्रह्मद्वेशो का, पापासक का, श्राद्ध का और सूतक का अन्न नहीं खाना चाहिए। देवों को त्यागकर अपने निर्मित पकाया हुआ, धूर्त और चतुर व्यक्ति का अन्न भी नहीं खाना चाहिए।

अप्रजानानु नारीणां भृतकस्य तदैव च।

कारुकात्रं विशेषेण शस्त्रविक्रियणस्तथा॥ १२॥

शौण्डात्रं धातिकातं च पिषजापत्रपेव च।

विदुप्रजननस्यात्रं परिवेत्रन्नपेव च॥ १३॥

पुनर्भुवो विशेषेण तदैव दिविषूपतेः।

अवज्ञातं चावशूतं सरोवं विस्मयान्वितप्॥ १४॥

गुरोरपि न घोक्तव्यपत्रं संस्कारवर्जितम्।

दुष्कृतं हि मनुष्यस्य सर्वपत्रे व्यवस्थितप्॥ १५॥

यो यस्यात्रं समश्नाति म तस्याइनाति किल्विषम्।

सन्तानहीन नारी, नौकर, शिल्पी और विशेषतः शस्त्रविक्रेता का अन्न नहीं खाना चाहिए। सुरा बेचने वाले का अन्न, भाट-चारण तथा वैश्या का अन्न, विदुलिङ्गी का अन्न,

परिवेता-ज्येष्ठ भाई के अविवाहित रहने पर जिसने विवाह कर लिया हो उसका अन्न, दो बार विवाहिता खो या ऐसी खो के पति का अन्न विशेषरूप से त्याज्य है। जो अन्न अवज्ञात-अनजाना हो या अवज्ञा-तिरस्कारपूर्ण हो, जो अवधूत हुआ हो, जो ऋषिधूर्वक दिया गया हो, जो सन्देहयुक्त हो, तथा गुरु के द्वारा दिया गया संस्कारहीन अन्न भी ग्रहण नहीं करना चाहिए। मनुष्य का जो कुछ पापकर्म होता है, वह उसके अन्न में ही रहता है। इस कारण जो मनुष्य जिसका अन्न खाता है वस्तुतः वह उस अन्न विक्रेता के पाप का ही भक्षण करता है।

आर्द्धिकः कुलमित्रस्तु श्वरोपालक्ष्मा नापितः॥ १६॥

कुशीलिवः कुम्हाकारः क्षेत्रकर्मक एव च।

एते शूद्रेषु भोज्यात्रं दत्त्वा स्वत्वं पणं बुद्धैः।

इन शूद्रों में जो आर्द्धिक (जो शूद्र द्विजाति के यहाँ खेत का आधा भाग लेकर खेती करता है) कुलमित्र (जो कुल में परम्परागत चला आ रहा हो, दाश नामक शूद्र) जो अपनी गौओं का पालन करने वाला हो और जो नापित हो, जो कुशीलिव नाम से प्रसिद्ध शूद्र जाति में यश फैलाने वाले नहीं हों, चारण या भाट हों अथवा गायकरूप से प्रसिद्ध हों, कुम्हार जाति के हों, क्षेत्रकर्मक अर्थात् खेतों में काम करने वाले हों—ऐसे शूद्र जाति के लोगों को थोड़ा बहुत धन देकर बुद्धिमान् पुरुष उनका अन्न ग्रहण कर सकते हैं।

पायसं स्नेहयक्वं यत् गोरसं चैव सक्तवः॥ १७॥

पिण्याकं चैव तैत्त व शूद्रादश्वाहुं तदैव च।

दूध से निर्मित तथा शी में पकाई हुई वस्तुएं, दूध, सतू, पिण्याक (तिल या सरसों की खलीया गम्बद्रव्य) और तेल आदि शूद्र से लिये जा सकते हैं।

दृनाकं जालिका' शाकं कुमुम्पाश्पन्तकं तथा॥ १८॥

पलाण्डुं लहसुं सूकं निर्यासं चैव वर्जयेत्।

उत्ताकं विद्वराहज्ज शैलं पीयूषपेव च॥ १९॥

विलयं सुमुखञ्जैव कवकानि च वर्जयेत्।

बैंगन, नालिकासाग, कुमुम्प (पुष्पविशेष) अशमन्तक (अम्लोटक) प्याज, लहसून, सूक (कांजी) और निर्यास अर्थात् किसी भी वृक्ष का गोंद आदि- ये सब अधक्षय होने

1. जालिका के स्थान पर 'नालिका' पाठ मिलता है। यह तालाब में होता है, जो ढंगलमात्र रहता है।

से नहीं लेने चाहिए। उसी प्रकार मशरूम, जंगली सूअर, लसोडा (बहुवार)¹, पीयूष-ताजी व्यायी हुई गी का दूध विलय और सुमुख नामक खाद्य पदार्थ तथा कुकुरमुत्ते का त्याग करना चाहिए।

गृज्जन² किंशुक³ चैव कुकुटं च त्वैव च॥ २०॥

उद्धरमलाबुं च जग्धा पताति वै द्विजः।

वृद्धा कृजरसंयावं पायसापूषमेव च॥ २१॥

अनुपाकृतपासं च देवान्नानि हवीषि च।

यवागृं मातुलिङ्गं च मत्स्यानप्यनुपाकृतान्॥ २२॥

नींपं कपिलं एलकं च प्रयत्नेन विवर्जयेत्।

गाजर, पलाश, कुकुट, गूलर (Fig tree) लौकी खाने से द्विज पतित हो जाता है। कृशर (तिल का चावल से निर्मित पदार्थ) संयाव (हलूआ) खीर, मालपुआ, असंस्कारित मांस, देवों को अर्पित अन्न, हविष, यवागृ (जौ की खीर) मातुलिङ्ग, मन्त्रों द्वारा असंस्कृत मत्स्यादि, नीम-कदम्ब, कपिल, कोठफल और पीपल के फलों का त्याग करना चाहिए।

पिण्याकं चोदूतस्तेहं दिवाश्चानास्त्वैव च॥ २३॥

रात्री च तिलसम्बद्धं प्रयत्नेन दधि त्वजेत्।

नाश्नीदात्पर्यसा तक्तं न बीजान्द्युपजीवयेत्॥ २४॥

क्रियादुष्टं आवदृष्टप्रसत्संगं विवर्जयेत्।

दिन में घृतादि रहित दूध या तिल को खालों या उससे युक्त धान्य और रात्रि में तिल मिश्रित दहों का सावधानी से त्याग कर देना चाहिए। इसी प्रकार बीज चाले द्रव्यों का आजीविका के साधनरूप में उपयोग नहीं करना चाहिए। मनुष्य आदि को क्रिया से दूषित अथवा भाव से दूषित दूध का भी त्याग करना चाहिए। उसी प्रकार दुर्जनों के संग का भी विशेषरूप से संग नहीं करना चाहिए।

केशकीटावपत्रं च स्वपूर्लेखं च नित्यशः॥ २५॥

श्वासातं च पुनः सिद्धं चण्डालावेशितं तथा।

उद्कृथया च पतितैर्गवा चाश्वातमेव च॥ २६॥

अनर्चितं पर्युषितं पर्याश्वानं च नित्यशः।

काकुकुटसंस्पृष्टं कृपिभिर्गैव संयुतपृ॥ २७॥

मनुष्यरथया द्वातं कुरुष्वा मृष्टमेव च।

यदि अन्न में चाल और कोड़े हों तथा नाश्वून या रक्त आदि से युक्त हो तो उसे निश्चित ही छोड़ देना चाहिए। जिस दूध को कुत्ते ने सूंघ लिया हो, जो फिर से पकाया गया हो, जिस पर चाण्डाल की नजर पड़ी हो, उसे भी छोड़ देना चाहिए। उसी प्रकार जिस पदार्थ पर किसी अशुद्ध खी की दृष्टि पड़ जाये, जिसे पतित व्यक्ति ने सूंघ लिया हो अथवा देख लिया हो, जिसका सत्कार न किया गया हो, जो बासी हो गया हो, जिस पर सदाधारणि बनी हुई हो, जिस दूध को कौए ने तथा मुर्गे ने स्पर्श किया हो, जिसमें कोड़ा लग गया हो और जिस दूध को मनुष्यों ने सूंघ लिया हो अथवा जिसे किसी कोड़ी व्यक्ति ने स्पर्श किया हो उसे अवश्य ही त्याग देना चाहिए।

न रजस्वलया दत्तं न पुंछल्या सरोषकम्॥ २८॥

मलवद्वाससा चापि परयाचोपयोजयेत्।

विषत्सायष्ठा गोः क्षीरमौष्ट्रं वा निर्दृशस्य च॥ २९॥

आविकं सचिवीक्षीरपयेयं मनुष्वद्वीत।

जो वस्तु किसी रजस्वला खी ने दी हो उसका प्रयोग न करें उसी प्रकार किसी व्यभिचारिणी खी द्वारा दी गयी और रोग के साथ दी गयी वस्तु का भी उपयोग नहीं करना चाहिए। जिस वस्तु को मलीन बख पहने हुए किसी दूसरे की खी ने दिया हो उसका भी उपयोग नहीं करना चाहिए। भगवान मनु ने ऐसा भी कहा है कि विना बछड़े की गी का दूध पीने योग्य नहीं होता। कैंटनी का दूध भी न पियें।

बलाकं हंसदात्युहं कलविङ्गं शुकं तथा॥ ३०॥

तथा कुररवल्लूरं जालपादञ्ज कोकिलम्।

चांचु खड्गरीटांचु श्येनं गृष्णं त्वैव च॥ ३१॥

उत्तूकं चक्रवाकञ्ज भासं पारावतं तथा।

कपोतं टिण्डिभङ्गैव ग्रामकुकुटमेव च॥ ३२॥

सिंह व्याघ्रञ्ज मार्जारं श्वानं कुकुरमेव च।

शृगालं मर्कं चैव गर्दभञ्ज न भक्षयेत्।

यदि कोई मांसाहारी हो उसे भी बगुला, हंस, चातक, जल कौआ, चिड़िया, तोता, कुर, सुखा हुआ मांस, जिन पक्षियों के नाश्वून आपस में जुड़े हुए हो कोयल नीलकंठ, कंजन, बाज, गिर्द, उलू, चक्रवाक, भास पक्षी, कबूतर, पंडूक, टिण्डरी, ग्राम्य मुर्गा, सिंह, बाघ, बिली, कुत्ता, ग्रीमीण सूअर, सियार, बन्दर और गधे का मांस नहीं खाना चाहिए।

1. *Cordia myza*.

2. गृज्जन गाजरं प्रोक्तं तथा नारङ्गवर्णकम् (भावनिं शाकवर्ग)

3. पलाश; किंशुक; पर्णो... (भावनिं शाकवर्ग)

न भक्षयेत्सर्वपृगाप्रान्यावनचरान् द्विजान्॥ ३३॥

जलेचरान् स्थलचरान् प्राणिनङ्गेति धारणा।

उसी प्रकार सभी जाति के मृग और अन्य जो भी जंगली पक्षियों का मांस, जलचर तथा स्थलचर प्राणियों का मांस कभी नहीं खाना चाहिए, ऐसा शास्त्रीय नियम है।

गोदा कूर्मः शशः शावित् सल्लक्षी चेति सत्तमाः॥ ३४॥

भक्ष्या: पञ्चनरुषा नित्यं मनुराह प्रजापतिः।

और भी मनु कहते हैं कि गोह, कछुआ, खरगोश, गेंडा और शाही जैसे पाँच नख वाले प्राणीयों का मांस नहीं खाना चाहिए।

पत्स्यान् सशस्कान् भुजीयान्मासे रौरवमेव च॥ ३५॥

निवेद्य देवताभ्यस्तु द्वाहाणेभ्यस्तु नान्यथा।

परन्तु जो मछलियाँ शल्क नाम के चमड़े से युक्त हो उसका मांस और रुह नाम के मृगों का मांस देवताओं को तथा द्वाह्याणों को अपीत करने के बाद ही खा सकते हैं परन्तु अन्य प्रकार से उन्हें नहीं खाना चाहिए।

मयूरनितिरञ्जीव कपिञ्जलकमेव च॥ ३६॥

वार्षीणसं द्वीपिनङ्ग भक्ष्यानाह प्रजापतिः।

मयूर, तितिर, श्वेत तितिर या चातक, गेंडा अथवा इस नाम का एक प्रकार का पक्षी, चिड़िया इन सब को प्रजापति मनु ने भक्ष्य बताया है।

राजीवान् सिंहतुण्डाङ्ग तथा पाठीनरोहितौ॥ ३७॥

मत्स्येष्वेते समुद्दिष्ट भक्षणीया मुनीश्वराः।

प्रेक्षितं भक्षयेदेषा मासमुद्द द्विजकाम्याया॥ ३८॥

यशाविष्य नियुक्तं च प्राणानामपि चात्यये।

भक्षयेदेव मांसानि ज्ञेयभेजो न लिप्यते॥ ३९॥

औषधार्वमशक्तौ वा नियोगाद्वान् न कारयेत्।

उसी प्रकार हे मुनीश्वरो! मत्स्य, सिंह के समान मुख वाला मत्स्य, पाठीन नामक मत्स्य तथा रोहित मत्स्य इतने मत्स्यों को भक्षण करने योग्य कहा गया है। परन्तु इन ऊपर कहे हुए प्राणियों का मांस मन्त्रों द्वारा या अधिमन्त्रित जल से सिंचित हो तभी द्विज वर्ण को अपनी इच्छा होने पर विधि के अनुसार देवों को अपीत करने के बाद अथवा प्राण संकट में आ गये हों, तभी खाना चाहिए। वस्तुतः कोई भी मांस भक्ष्य नहीं होता फिर भी देवों को अपीत करने के बाद अवशिष्ट प्रसादरूप में ही जो मनुष्य उसे खाता है उसे पाप नहीं लगता अथवा जो मनुष्य औषधरूप में, अशक्ति होने

पर अथवा किसी की विशेष प्रेरणा से अथवा यज्ञ के निमित्त उसे खाता है, वह भी पाप से लिप्त नहीं होता।

आमन्त्रितस्तु च; श्राद्धे देवे वा पांसमुत्सुकेत्।

यावन्ति पञ्चुरोमाणि तावतो नरकान् द्वजेत्॥ ४०॥

अपेयं वाष्पयेष्व तदैवास्पृश्यमेव च।

द्विजातीनामानालोच्य नित्यं महापिति स्थितिः॥ ४१॥

जिसे श्राद्धरूप पितृकर्म में आमन्त्रित किया गया हो अथवा किसी देवकर्म में आमन्त्रित किया हो फिर भी जो मनुष्य उस समय उस नैवेद्यरूप मांस का त्याग करता है तो वह जिस पशु का मांस परोसा गया हो, उसके जितने रोम होते हैं, उतने ही काल तक वह नरक में जाता है।

तस्मात्सर्वप्रयत्नेन महां निनाश्च वज्जयेत्।

पीत्वा पतितः कर्मध्यो न सम्पाद्यो भवेदिद्वैः॥ ४२॥

भक्षयित्वा ह्यभक्ष्याणि पीत्वापेयान्यपि द्विजः।

नायिकारी भवेत्तावशावनन्न द्वजत्यक्षः॥ ४३॥

तस्मात्प्रियोऽन्नेन्नित्यमभक्ष्याणि प्रयत्नतः।

अपेयानि च विप्रा वै तदा चेष्टाति रौरवपृ॥ ४४॥

उसी प्रकार जो वस्तु दान देने अयोग्य हो, जो पीने योग्य न हो और जो स्पर्श करने योग्य न हो तो वह द्वाह्याण आदि को भी देखने के लिए अयोग्य होती है। क्योंकि वे सभी वस्तुएँ मदिरा के समान हैं अथवा द्विज को मदिरा आदि देना योग्य नहीं है। वैसे ही पीने, स्पर्श करने तथा देखने योग्य भी नहीं हैं ऐसी मर्यादा है। इस कारण सावधानीपूर्वक मदिरा का त्याग कर देना चाहिए। जो विप्र इन अभक्ष्यों तथा अपेयों को ग्रहण करता है वह रौरव नामक नरक में जाता है।

इति श्रीकूर्मपुराणे उत्तरार्द्धे भक्ष्याभक्ष्यनिर्णये व्यासगीताम्
सप्तदशोऽन्ध्यायः॥ १०॥

आष्टादशोऽन्ध्यायः:

(द्वाष्ट्राणों के नित्यकर्तव्यकर्म)

ऋषय ऊचुः:

अहन्यहनि कर्तव्यं द्वाष्ट्राणां महामुने।

तदावध्याखिलं कर्म येन मुच्येत बथनात्॥ १॥

ऋषियों ने कहा— हे महामुनि! द्वाष्ट्राणों के प्रतिदिन के करने योग्य सभी नित्य कर्मों के विषय में कहिए, जिसे करने से वह संसार-बंधन से मुक्त हो जाता है।

व्यास उवाच

वृथे समाहिता यूयं शृणुच्च गदतो यमा।

अहन्वहनि कर्तव्यं द्राहणानां क्रमाद्विष्प॥ २॥

व्यासजो बोले— द्राहणानों को जो कर्म प्रतिदिन करने योग्य है, उसकी विधि मैं यथाक्रम से कहता हूँ आप सब एकाग्राचित होकर श्रवण करें।

द्राहे मुहूर्ते तृत्याय धर्मर्थञ्जु चिन्तयेत्।

कायकलेशञ्जु यन्मूलं व्यावेत मनसेष्वरम्॥ ३॥

प्रत्येक द्राहण को प्रातः द्राह्य मुहूर्त (सूर्योदय से पूर्व) में उठकर धर्म और अर्थ का चिन्तन करना चाहिए तथा उसके मूलरूप कायकलेशों पर भी विचार करें और मन से इंकर का ध्यान करता रहे।

उपःकाले च सम्यासे कृत्वा चावश्यकं द्रुष्टः।

स्नायान्नदीषु शुद्धासु शौचे कृत्वा यद्याविधिः॥ ४॥

प्रातः स्नानेन पूयन्ते येऽपि पापकृतो जनाः।

तस्मात्सर्वप्रयत्नेन प्रातः स्नानं समाचरेत्॥ ५॥

इसके बाद प्रातःकाल हो जाने पर बिद्वान् को आवश्यक शौचादि कर्म करके पवित्र नदियों में यथाविधि स्नान करना चाहिए। इस प्रकार प्रातः काल में स्नान करने से यापाचारी मनुष्य भी पवित्र हो जाते हैं। इसलिए सब प्रकार के प्रयत्न से प्रातः काल का स्नान करना चाहिए।

प्रातः स्नानं प्रशंसनि दृष्टादृष्टकरं हि तत्।

ऋणाणाध्यिता नित्यं प्रातः स्नानान्न संशयः॥ ६॥

बिद्वान् लोग इस प्रातःकालीन स्नान की प्रशंसा करते हैं, क्योंकि वह दृष्ट (प्रत्यक्ष शुभ) और अदृष्ट (पुण्य आदि) दोनों प्रकार का फल देने वाला है। नित्य प्रातः स्नान से ही ऋणियों का भी ऋणित्व स्थायी है, इसमें कोई संशय नहीं है।

मुखे सुमस्य सततं लाला याः संस्कृतिः हि।

ततो नैवाद्यरेत्कर्म अकृत्वा स्नानपादितेः॥ ७॥

सोये हुए व्यक्ति के मुख से जो निरन्तर लार बहती है, उसको भलिनता को प्रातःकालीन स्नान से दूर किये बिना किसी भी कर्म का अनुष्ठान बस्तुतः करना ही नहीं चाहिए।

अलक्ष्मको जलं किञ्चित् दुःख्यं दुर्विचिनितम्।

प्रातः स्नानेन पापानि पूयन्ते नोत्र संशयः॥ ८॥

उस प्रातः कालीन स्नान से दरिद्रता, जलदोष, दुःख्य, और खराब विचार नहीं होते हैं और सारे पाप भी धूल जाते हैं, इसमें सन्देह नहीं है।

अतः स्नानं विना पुंसां प्रभातं कर्म संस्मृतम्।

होमे जप्ये विशेषेण तस्मात्स्नानं समाचरेत्॥ ९॥

अतः प्रातः स्नान किये बिना मनुष्यों का कोई भी कर्म करने में पवित्रता नहीं मानी जाती, होम और जप करने में तो विशेष आवश्यक है। इसलिए प्रातःकाल स्नान करना ही चाहिए।

अशक्तावशिरस्कं वा स्नानप्रस्य विधीयते।

आद्रेण वाससा वाव याज्ञवं कापिलं स्मृतम्॥ १०॥

(रुणावस्था में) स्नान करने में असमर्थ होने पर शिर पर बिना पानी डाले स्नान किया जा सकता है अथवा गीले बस्त्र से शरीर पौँछकर भी पवित्र होना कहा गया है।

आयत्ये वै समुत्पत्ते स्नानप्रेव समाचरेत्।

द्राह्यादीनाम्याशक्ती स्नानान्याहुर्मनीषिणः॥ ११॥

असहाय (असमर्थ) होने पर भी (किसी भी विधि से) स्नान करना चाहिए। इसलिए अशक्त होने पर बिद्वानों ने द्राह्यादि स्नानों की विधि कही है।

द्राह्यमान्येयमुहिष्टं वायव्यं दिव्यप्रेव च।

वारुणं योगिकं यद्य योद्धा स्नानं समाप्तः॥ १२॥

द्राह्यं तु याज्ञवं पन्तैः कुशैः सोदकविन्दुभिः।

आमेयं भस्मना पादमस्तकादेहूर्घूलनम्॥ १३॥

गवां हि रजसा प्रोक्ते वायव्यं स्नानमुत्पम्।

यतु सातप्तवर्णं स्नानं तद्विष्युत्यते॥ १४॥

वारुणाङ्गावगाहस्तु मानसं स्वात्मवेदनम्।

योगिनां स्नानमाख्यातं योगे विश्वातिचिन्तनम्॥ १५॥

आत्मतीर्थपिति ख्यातं सेवितं द्राह्यावादिभिः।

यनःशुद्धिकरं पुंसां नित्यं तत्स्नानपाचरेत्॥ १६॥

शक्त्वेद्वारुणं विद्वान् प्राजापत्यं तदैव च।

द्राह्य, आमेय, वायव्य, दिव्य, वारुण और योगिक ये छः प्रकार के स्नान संक्षेपतः कहे गये हैं। कुशों को लेकर जलविन्दुओं से मन्त्रपूर्वक मार्जन करना 'द्राह्य' स्नान है। भस्म द्वारा मरतक से लेकर पौँछ तक शरीर को लिप्त करना 'आमेय' स्नान है। गोधूलि से सर्वाङ्ग लेप करना उत्तम 'वायव्य' स्नान कहा गया है और जो सूर्य के आत्मप के साथ वर्षा के जल से किया जाने वाला स्नान 'दिव्य' स्नान कहा जाता है। जलाशय के अन्दर स्नान करना 'वारुण' स्नान है। इसी प्रकार अपने मन को आत्मा में निवेदित करना योगियों का योगिक स्नान कहा गया है। इस योग में सम्पूर्ण

विश का आत्म-चिनन होता है। यही आत्मतीर्थ नाम से कहा गया है, जो ब्रह्मवादियों द्वारा सेवित है। यह स्नान मनुष्यों के मन को नित्य शुद्ध करने वाला होता है, अतः इसे अवश्य करना चाहिए। परन्तु जो विद्वान् समर्थ हो, उसे वारुण स्नान या पाजापत्य स्नान करना चाहिए।

प्रक्षाल्य दनकाष्ठं वै भक्षयित्वा विद्यानवतः॥ १७॥

आचम्य प्रथतो नित्यं स्नानं प्रातः सप्ताचरेत्।

मध्याह्नुलिसमस्यैल्यं द्वादशांगुलसम्पित्तम्॥ १८॥

सत्वरं दनकाष्ठं स्वाननदेष्ट तु धावयेत्।

दातुन को अच्छी तरह धोकर विधिपूर्वक उसको चबाना चाहिए। फिर आचमन करके मुख स्वच्छ करके नित्य प्रातः स्नान करना चाहिए। दातुन भी मध्यम ऊंगली के तुल्य स्थूल और बारह अंगुल जितना लम्बा तथा छाल से युक्त होना चाहिए। उसके अग्रभाग से दनधावन करना चाहिए।

क्षीरवृक्षसमुद्धूतं मालतीसम्पवं शुभम्।

अपापार्गज्ञं विलच्छ करवीरं विशेषतः॥ १९॥

वह दातुन बराद आदि 'क्षीरवृक्ष' का हो, मालती¹ का हो, अपापार्ग² या बिल्व का हो। कनेर³ का विशेषरूप से उत्तम है।

कर्ज्जयित्वा निनिदितानि गृहीत्वैकं यज्ञोदितम्।

परिहृत्य दिनं पापं भक्षयेद्दै विद्यानवित्॥ २०॥

अन्य निनिदित वृक्षों को छोड़कर यज्ञायिति एक दातुन लेकर प्रातःकाल कर लेना चाहिए। दिन निकल जाने के बाद जो दातुन करता है, वह पाप को ही खाता है, ऐसा विशिष्ज जन कहते हैं।

नेत्याटयेहनकाष्ठं नाहुल्यदेष्ट धारयेत्।

प्रक्षाल्य भंक्त्वा तज्जहाच्छुचौ देशे सप्ताहितः॥ २१॥

उस दनकाष्ठ को कहीं से उखाड़ना नहीं चाहिए और ऊंगलियों के अग्रभाग से भी उसे पकड़ना नहीं चाहिए। उसे करने के बाद धोकर, तोड़कर किसी पवित्र स्थान में छोड़ देना चाहिए।

स्नात्वा सन्तर्पयेद्वानुधीन् पितृगणांसत्त्वा।

आचम्य मन्त्रविश्रित्य पुनराचम्य वाग्यतः॥ २२॥

इसके बाद स्नान करके, आचमन करके मन्त्रवेत्ता को देवताओं, ऋषियों तथा पितरों को तर्पण करना चाहिए और पुनः आचमन कर मौन धारण कर लेना चाहिए।

सम्मार्ज्यं मन्त्रैरात्मानं कुशैः सोदकविन्दुभिः।

आपोहिष्टाव्याहृतिभिः सावित्रा वारुणैः शुभैः॥ २३॥

ओङ्कारव्याहृतियुतां गायत्रीं वेदमातरम्।

जप्त्वा जलाङ्गुर्लिं दधाद भास्करं प्रति तन्मनाः॥ २४॥

फिर ऊंगोद्धारपूर्वक अपने शरीर पर कुशाओं से जलविन्दुओं द्वारा मार्जन करके 'आपोहिष्टा' इस मंत्र और गायत्री तथा वरुणदेव की शुभ व्याहृतियों सहित ओंकार-व्याहृतियुक्त वेदमाता गायत्री का जप करके सूर्य के प्रति मन लगाकर जलाङ्गुर्लि देनी चाहिए।

प्रावक्तव्येषु ततः स्तित्वा दर्भेषु सुसमाहितः।

प्राणायामत्रयं कृत्वा व्यायेत्सम्याप्तिः स्मृतिः॥ २५॥

पहले से बिछाई हुई कुशासनों पर एकाग्रधित से बैठकर तीन प्रकार से प्राणायाम करके सध्या-ध्यान करना चाहिए, ऐसा स्मृतिवचन है।

या च सन्ध्या जगत्सूतिर्भायातीता हि निष्कला।

ऐश्वरी केवला शक्तिसत्त्वव्रयसमुद्धवा॥ २६॥

वह सन्ध्या जगत् को उत्पन्न करने वाली होने से नाया से रहित और कलातीत है। वही परिपूर्ण केवल ऐश्वरी शक्ति है, जो तीनों तत्त्वों (ब्रह्म-विष्णु-महेश) से उत्पन्न है।

व्यात्वार्कमण्डलगतां गायत्रीं तै जपेद्युधः।

प्राइमुखः सततं विप्रः सन्ध्योपासनमाचरेत्॥ २७॥

विद्वान् ब्राह्मण को चाहिए कि सूर्यमण्डल में स्थित सावित्री का जप करे और सदा पूर्व का ओर मुख करके ही सन्ध्योपासना करे।

सन्ध्याहीनोऽशुचिनित्यमनहः सर्वकर्मसु।

यदन्यत्कुरुते किञ्चित्प्रति तस्य फलपानुवादः॥ २८॥

अनन्यवेत्सः शान्ता ब्राह्मणा वेदपारगाः।

उपास्य विधिवत् सन्ध्या प्राप्ताः पूर्वेषरां गतिम्॥ २९॥

सन्ध्या न करने वाला सदा अपवित्र ही होता है और सभी कार्यों में अयोग्य माना जाता है। सन्ध्योपासना के अतिरिक्त जो अन्य कर्म करता है, उसका उसे फल ही नहीं मिलता है। ऐसा जानकर अन्यत्र चित्त को न लगाते हुए वेद के पारगामी ब्राह्मण शान्त होकर विधिवत् सन्ध्योपासना करके परम गति को प्राप्त हुए हैं।

1. Ficus Indicus.

2. Jasminum grandiflorum.

3. Achyranthes aspera.

4. Nerium odoratum soland.

योऽन्त्र कुस्ते यत्वं धर्मकार्ये द्विजोत्तमः।
विहाय सम्भाश्रणति स याति नरकाचुतम्॥ ३०॥
तस्मात्सर्वप्रथलेन सम्योपासनमाचरेत्।
उपासितो भवेतेन देवो योगतनुः परः॥ ३१॥

जो द्विजोत्तम सम्योपासना को छोड़कर अन्य किसी धर्मकार्य में प्रयत्न करता है, वह हजारों नरकों को ग्रास होता है। इसलिए सब प्रकार से प्रयत्नपूर्वक सम्योपासना करनी चाहिए। ऐसा करने से योगशरीरधारी परम देव ही उपासित होते हैं।

सहस्रपरमा नित्यं शतमध्यां दशावराम्।
सावित्री वै ज्योतिर्द्वान् प्राइमुखः प्रवतः स्थितः॥ ३२॥

विद्वान् पुरुष को प्रयत्नपूर्वक पूर्व को ओर खड़े होकर नित्य उत्तमरूप से एक हजार, मध्यमरूप से एक सौ और निम्नरूप से दस सावित्री मन्त्र का जप करना चाहिए।

अशोपतिर्देवादित्यमुद्यन्तं वै समाहितः।
पत्रैस्तु विविधैः सौरै ऋग्वेदः सामसम्बैः॥ ३३॥

इसके बाद सावधान होकर उगते हुए सूर्य का उपस्थान और आराधन भी ऋग्वेद, यजुर्वेद और सामवेद के सूर्यपरक विविध मंत्रों से करना चाहिए।

उपस्थाय महायोगं देवदेवं दिवाकरम्।
कुर्वति प्रणति भूमौ भूर्णा देवैव मन्त्रतः॥ ३४॥

इस प्रकार महायोगी देवदेव दिवाकर का उपस्थान करके भूमि पर ममतक रखकर उन्हीं के मंत्रों द्वारा प्रणामपूर्वक ग्राह्यना करनी चाहिए।

ओहुद्वाताय च शानाय कारणप्रयहेतने।
निवेदयामि चात्मानं नमस्ते विष्णुर्लिणो॥ ३५॥

ख्योतस्वरूप, शान्तस्वरूप और तीनों कारणों के हेतुरूप आपको मैं आत्मनिवेदन करता हूँ। विश्वरूप आपको नमस्कार है।

नमस्ते धूणिने तुर्थं सूर्याय ब्रह्मरूपिणो।
त्वपेव द्वाह परममायोज्योतीरसोऽभृतम्।
भूर्षुवः स्वस्त्वपोद्वारः शर्वो रुद्रः सनातनः॥ ३६॥
प्रकाशस्वरूप, ब्रह्मस्वरूप आप सूर्य को नमस्कार हैं। आप ही परब्रह्म, जल, ज्योति, रस और अमृतस्वरूप हो। भूः, भुवः, स्वः, च्याहति, औंकार, शर्व और सनातन रुद्र हैं।
पुरुषः सन्महोऽन्तस्त्वं प्रणामामि कष्ठदिनम्।
त्वपेव विश्वं बहुधा जात यज्ञायते च यत्।

नमो रुद्राय सूर्याय त्वापहं शरणं गतः॥ ३७॥

आप ही परम पुरुष होकर ग्राणियों के भीतर रहने वाले महान् तेजरूप हो। जटाधारी शिवस्वरूप आपको प्रणाम है। आप ही विश्वरूप हैं, जो बहुधा उत्पन्न हुआ है और होता रहता है। रुद्ररूप सूर्य को नमस्कार है, मैं आपकी शरण में आया हूँ।

प्रचेतसे नमस्तुर्थं नमो भीदुष्टमाय च।
नमो नमस्ते रुद्राय त्वापहं शरणं गतः।
हिरण्यवाहवे तुर्थं हिरण्यपतये नमः॥ ३८॥

प्रचेतस् वरुणरूप आपको नमस्कार है और भीदुष्टमरूप आपको नमस्कार है। रुद्ररूप आपको बार बार नमस्कार है, मैं आपकी शरण में आया हूँ। हिरण्यवाहु और हिरण्यपति आपको नमस्कार हैं।

अम्बिकापतये तुर्थमुपायाः पतये नमः।
नमोऽस्तु नीलश्रीवाय नमस्तुर्थं दिनाकिने॥ ३९॥
विलोहिताय भार्गाय सहस्राक्षाय ते नमः।
तपोऽपहाय ते नित्यमादित्याय नमोऽस्तु ते॥ ४०॥
अम्बिकापति, पार्वतीपति, नीलश्रीव, दिनाकिन आपको नमस्कार हैं। विशेष लाल रंग वाले, भर्ग तथा सहस्राक्ष आपको नमस्कार हैं। नित्य अंधकार को नष्ट करने वाले आदित्यरूप आपको नमस्कार हैं।

नमस्ते वज्रहस्ताय त्र्यम्बकाय नमो नमः।
प्रण्टे त्वां विरुपाक्षं महान्तं परमेष्वरम्॥ ४१॥
हिरण्यये गृहे गुप्तमात्मानं सर्वदेहिनाम्।
नमस्थामि परं ज्योतिर्द्वाणां त्वां परामृतम्॥ ४२॥

हाथ में वज्र धारण करने वाले और त्रिनेत्रधारी आपको नमस्कार है। आप विरुपाक्ष तथा महान् परमेष्वर की शरण में जाता हूँ। सर्वप्राणियों के अन्तःकरणरूप सुवर्णमय गृह में गुप्त आत्मरूप में विराजमान परम ज्योतिस्वरूप, ब्रह्मरूप, परम अमृतस्वरूप आपको नमस्कार करता हूँ।

विश्वं पशुपतिं भीमं नरनारीशरीरिणम्।
नमः सूर्याय रुद्राय भास्वते परमेष्विने॥ ४३॥
उग्राय सर्वतक्षाय त्वां प्रपणे सदैव हि।
विश्वमय, पशुपतिरूप, भीम और अर्धनारीहररूप, रुद्रस्वरूप, परमेष्टीरूप प्रकाशमान सूर्य को नमस्कार है। उग्ररूप होने से सब का भक्षण करने वाले आपकी शरण में आता हूँ।

एतदै सूर्यहृदयं जप्तवा स्तवमनुत्तमम्॥४४॥
प्रातःकालेऽथ प्रव्याहे नमस्कुर्यादिवाकरम्।
इदं पुत्राय शिष्याय यार्पिकाय द्विजातये॥४५॥
प्रदेवं सूर्यहृदयं ब्रह्मणा तु प्रदर्शितम्।

इस सर्वोत्तम सूर्यहृदय स्तोत्र का मन में पाठ करके प्रातःकाल अथवा मध्याह्न काल में सूर्य को नमस्कार करें। ब्रह्मण द्वारा बताये गये इस सूर्यहृदय स्तोत्र को अपने पुत्र, शिष्य तथा द्विजाति के धार्मिक पुरुष को अवश्य देना चाहिए।

सर्वापापाशमनं वेदसारसमुद्भवम्।
ब्राह्मणानां हितं पुण्यमृषिसंधैनिवितम्॥४६॥

यह स्तोत्र समस्त पापों को शान्त करने वाला, वेदों के साररूप में उत्पन्न, ब्राह्मणों के लिए हितकारी, पुण्यमय और ऋषियों के समुदाय द्वारा सुसेवित है।

अव्यागम्य गृहं विष्णुः सपाचम्य यशाविदि।
प्रज्वाल्य वहिं विष्णवज्ञुह्यायामात्वेदसम्॥४७॥

इसके बाद ब्राह्मण को अपने घर आकर विष्णूपूर्वक आचमन करके अग्नि को प्रज्वलित करके यशाविदि उसमें होम करना चाहिए।

ऋत्विक् पुत्रोऽथ पत्नी वा शिष्यो वापि सहोदरः।
प्राप्यानुजां विशेषेण हात्यर्थुर्वा यशाविदि॥४८॥
पवित्रपाणिः पूतस्त्वा शुक्लाम्बरधरः ज्ञुचिः।
अनन्यमनसा नित्यं जुहुयात्संयतेनियः॥४९॥

ऋत्विक्, पुत्र, पत्नी, शिष्य, सहोदर अथवा अध्वर्यु भी विशेष अनुजा प्राप्त करके विष्णूपूर्वक पवित्री हाथ में धारण कर पवित्रात्मा होकर, व्यति वस्त्र धारण करके, पवित्र होकर इन्द्रियों को संयत करके अनन्यचित्त से नित्य होम कर सकते हैं।

विना दर्भेण यत्कर्म विना सूत्रेण वा पुनः।
राक्षसं तद्वेत्सर्वं नामुत्रेह फलप्रदम्॥५०॥
विना कुश के और बिना यज्ञोपवीत के जो कर्म किया जाता है, वह सब राक्षस के लिए होता है। उसका फल न तो इस लोक में मिलता है न परतोक में।

देवतानि नमस्कुर्यादुपहारानिवेदयेत्।
द्वाष्टुपुष्पादिकं तेषां वृद्धांश्चौवाभिवादयेत्॥५१॥
प्रत्येक द्विज को चाहिए कि वह देवताओं को नमस्कार करे और उन्हें नैवेद्यादि अर्पित करे। बाद में पुष्पाङ्गलि अर्पित करे तथा अपने से बड़े लोगों का अभिवादन करे।

गुरुकैवायुपासीत हितञ्जात्य सपाचरेत्।
वेदाभ्यासं ततः कुर्याद्वयलाच्छक्तितो ह्रिजः॥५२॥
उसी तरह गुरु की भी सेवा करे तथा उनके हित के लिए आचरण करे। तदनन्तर ह्रिज को अपनी शक्ति के अनुसार वेदाभ्यास करना चाहिए।

जपेद्व्यापयेचित्तव्यायायेत्वै विचारयेत्।
अवेक्षय तत्त्वं शास्त्राणि धर्मदीनि ह्रिजोत्तमाः॥५३॥

श्रेष्ठ ब्राह्मणों को धर्मशास्त्रों का अवलोकन करते हुए जप करना चाहिए, तथा शिष्यों को उसका अध्यापन कराना चाहिए, उसे कण्ठस्थ बतावें और उन पर विचार-विमर्श करना चाहिए।

वैदिकंश्चौत्र निगमान्वेदांगानि च सर्वशः।
उपेयादीश्वरं वाच योगस्त्रप्रसिद्धये॥५४॥
मात्रयेत्तुविद्यानर्थान् कुटुम्बार्थं ततो ह्रिजः।
ततो मष्टाहुसमये स्नानार्थं पृदमाहरेत्॥५५॥

इसके अतिरिक्त वेदशास्त्र, आगम और सभी वेदांगों का स्तवाचाय करें और अपने जीवन के सुन्दर निर्णय हेतु ईश्वर की शरण में जाय। ह्रिज को चाहिए कि वह अपने परिवार के लिए विष्णु पदार्थों का संपादन करे। इसके बाद मध्याह्न काल में स्नान के लिए मिट्टी का संग्रह करे।

पुष्पाक्षतान् कुशतिलान् गोशकुत्सुद्धपेव वा।
नदीषु देवखातेषु तडागेषु सरस्सु च।
स्नानं सापाचरेत्रित्वं गर्तप्रस्त्रवणेषु च॥५६॥

पुष्प, आक्षत, कुश, तिल तथा पवित्र गाय का गोबर भी लाना चाहिए। सदा नदियों, जलाशयों, तालाबों, सरोवरों, स्वाभाविक गर्त से प्रवाहित झरनों आदि में स्नान करना चाहिए।

परकीयनिषेषु न स्नायाहौ कदाचन।
पञ्चपिण्डान्समुद्भव्य स्नायाद्वा सप्तये पुनः॥५७॥
पृदैकया शिरः क्षाल्यं द्वाष्ट्यां नाभेस्तथोपरि।
अधस्तु तिश्यमिः कार्यं पादो षड्भिस्तवैव च॥५८॥

दूसरों के जलाशयों में कभी भी स्नान नहीं करना चाहिए। यदि सार्वजनिक जलाशय उपलब्ध न हों, तो दूसरे के जलाशय में से पाँच पिण्डों को निकालकर फिर उसमें स्नान करना चाहिए। सबसे पहले मिट्टी से शिर को, फिर दो बार नाभि और उसके ऊपरी भाग को धोये। उसी तरह तीन बार नाभि से नीचे का भाग और पैरों को छः बार प्रशालित करे।

पूर्णिका च समुद्दिष्टा सार्वात्मकमात्रिका।
गोपयस्य प्रमाणस्तु तेनाहुं लेपयेत्युनः॥ ५९॥
लेपयित्वा तीरसंस्वं तस्मिन्हृते भन्तः।
प्रशास्याद्याप्य विधिवत्तः स्नायात्सपाहितः॥ ६०॥

मिट्टी गोली होनी चाहिए और उसका प्रमाण एक औंवले के बराबर बताया गया है। पुनः उन्ने ही प्रमाण का गोबर लेकर शरीर पर लेप करना चाहिए। (जलाशयादि के) तट पर रखे हुए उस गोबर से उस उस अंग से संवर्धित मंत्र से उस उस अंग पर लेप करने के बाद पुनः उसे धोकर विधिवत् आचमन करके एकाग्रचित्त होकर स्नान करना चाहिए।

अभिषन्त्र्य जलं भन्तेस्तस्मिन्हृत्यास्तौः शुष्ठैः।
भावपूतस्तदव्यक्तं धारयेद्विष्टुष्टव्यप्यप्॥ ६१॥

उस समय तत्सम्बन्धी वरुण देवता के शुभ मंत्रों से जल को अभिमंत्रित करके पुनः पवित्र भावों से युक्त होकर अव्यक्त, अविनाशी विष्णु का ध्यान करना चाहिए।

आपो नारायणोद्गतास्ता एवास्थायनं पुनः।
तस्मान्नारायणं देवं स्नानकाले स्पर्शेद्गुह्यः॥ ६२॥
प्रेक्ष्य सोऽनुरथादित्यं विर्निष्पज्जेऽजलाशये॥ ६३॥
आचान्तः पुनराचामेन्मन्त्रेणानेन भन्तवित्॥ ६४॥

ये जल नारायण से ही समुद्रूत हैं और ये ही जल उनका भी आश्रयस्थान है। इसलिए स्नान के समय विद्वान् पुरुष को नारायण देव का अवश्य स्मरण करना चाहिए। ओंम् का उद्घारण करते हुए सूर्य का ओर देखकर जलाशय में तीन बार दूबकी लगानी चाहिए। इसके बाद भन्तवेत्ता को निम्न मंत्र के द्वारा एक बार आचमन किया होने पर भी पुनः आचमन करना चाहिए।

अन्तश्चरसि भूतेषु गुहायां विश्वतोपुखः।
त्वं यज्ञस्वं वप्तकार आपो ज्योतीरसोऽपृतम्॥ ६५॥
हे विश्वतोमुख ! आप प्राणिमात्र के अन्तःकरणरूप गुफा में विचरण करते हैं। आप ही यज्ञ, वप्तकार, जल, ज्योति, रस और अमृतस्वरूप हैं।

दुष्टां या विरभ्यस्येद्विवाहितं प्रणवान्विताम्।
सावित्रीं वा जपेद्विद्वान्त्वा चैवाधमर्षणम्॥ ६६॥

अथवा तीन बार 'दुष्टा' मंत्र का उद्घारण करना चाहिए तथा ओंकार सहित व्याहातियों का पाठ करना चाहिए। अथवा प्रणव सहित गायत्री का जप करे। इस प्रकार विद्वान् को अधमर्षण सूक्त का भी जप करना चाहिए।

ततः सम्मार्जनं कुर्यात् आपोहिष्टा मयो भुवः।

इदमापः प्रवहतो व्याहातिभिस्तस्यैव च॥ ६७॥

त्वाभिषन्त्र्य ततोयमापो हिष्टादिभिस्तिकैः।

अन्तर्जलगतो भन्तो जपेत्विरघमर्षणम्॥ ६८॥

इसके पश्चात् 'आपोहिष्टा मयो भुवः' और 'इदमापः प्रवहतो' मंत्र और व्याहातियों से सम्मार्जन करना चाहिए। उस प्रकार 'आपो हिष्टा' आदि तीन मंत्रों से जल को अभिमंत्रित करके जल के अन्दर दूबकी लगाते हुए अधमर्षण मंत्र का तीन बार जप करना चाहिए।

दुष्टां यावद् सावित्रीं तद्विष्णोः परमं पदम्।

आवर्तयेद्य व्रणवं देवं वा संस्मरेद्गरिष्म॥ ६९॥

उसी प्रकार दुष्टा और सावित्री का भी पाठ करना चाहिए क्यों कि यह विष्णु का ही परम पद है। अथवा ओंकार का बार-बार जप करना चाहिए या भगवान् विष्णु का स्मरण करते रहना चाहिए।

दुष्टादिव यो भन्तो यजुर्वेदि प्रतिष्ठितः।

अन्तर्जले त्रिग्रावर्त्य सर्वपापैः प्रमुच्यते॥ ७०॥

यजुर्वेद में प्रतिष्ठित दुष्टादिव मंत्र को जल के भीतर रहते हुए जो तीन बार आवृत्ति करता है वह समस्त पापों से मुक्त हो जाता है।

अपः पाणी सपादाय जल्वा वै मात्रनि कृतो।

विन्यस्य मूर्च्छित ततोयं मुच्यते सर्वपापत्तैः॥ ७१॥

शरीर की शुद्धि करने के बाद अथेती में जल लेकर भन्त वार करते हुए उस जल को सिर पर ढालने से समस्त पापों से मुक्त हो जाता है।

यथाष्टुपेष्यः क्रतुराद् सर्वपापापोदनः।

त्वाधमर्षणं प्रोक्तं सर्वपापापोदनम्॥ ७२॥

जैसे यज्ञों में सर्वक्षेत्र अष्टमेष्य यज्ञ समस्त पापों का नाश करना बाला होता है वैसे ही अधमर्षण सूक्त सम्पूर्ण पापों को दूर करता है।

अदोपतिष्ठादिदिव्यमूर्च्छ पुण्याक्षतान्वितम्।

प्रस्त्रियालोकयेद्य मूर्च्छ यस्तपासः परः॥ ७३॥

इसके अनन्तर पुण्य और अक्षत युक्त जल को ऊपर की ओर छिड़क कर अन्यकार से रहित होने वाले सूर्य को ऊपर की ओर मुँह करके देखना चाहिए।

उत्तर्व चित्रमित्येते तत्पुरुषिति भन्तः।

हसः सुचिष्टदनेन सावित्रा सविशेषतः॥ ७४॥

अन्यैषु वैदिकैर्यन्तैः सौरैः पापश्रणाशनैः।

सावित्री वै जपेत्प्रकृतजपयज्ञः स वै स्पृतः॥७५॥

'उदुल्यं' 'चित्रं' तद्धक्षुः', हंसः 'शुचिपत्', इन वैदिक मन्त्रों से सूर्योपस्थान करना चाहिए। तत्पक्षात् सावित्री मन्त्र जपना चाहिए, सावित्री जप को ही जपयज्ञ कहा गया है।

विविधानि पवित्राणि गुह्यविद्यास्तथैव च।

शतरुद्रीयं शिरसं 'सौराम्बन्धांषु सर्वतः॥७६॥

इस के अतिरिक्त पवित्र, विविध मन्त्र और गुरु विद्याएँ शतरुद्रीय और अर्थवृशिरस् स्तोत्र और अपनी इच्छा अनुसार अन्य सूर्य सम्बन्धी मन्त्रों का भी यथाशक्ति पाठ करना चाहिए।

प्राक्कूलेषु सपासीनः कुशेषु प्राइसुखः शुचिः।

तिष्ठुषु वीक्षणोऽकं जप्य कुर्वत् सपाहितः॥७७॥

जलाशय के पूर्व दिशा की ओर कुशासन पर बैठकर पूर्व की ओर पुख करके शुद्ध और एकाग्रचित्त होकर सूर्य की ओर देखते हुए जप करना चाहिए।

स्फटिकेन्द्राक्षरुद्राक्षैः पुत्रजीवसमुद्दैः।

कर्तव्या त्वक्षमाला स्यादुन्नरादुत्तमा स्मृता॥७८॥

जप करते समय स्फटिक की माला इन्द्राक्ष, रुद्राक्ष या पुत्रजीव औषधि विशेष से उत्पन्न बीजों की माला लेकर जप करना चाहिए। इसमें यदि रुद्राक्ष की माला हो तो उत्तरोन्तर ब्रेष्ट मानी गई है।

जपकाले न भाषेत छ्वांगा न प्रस्त्रेषुद्युः।

न कंपयेच्छिरो श्रीवां दन्तान्त्रैव प्रकाशयेत्॥७९॥

जिस समय जप किया जा रहा हो उस समय बुद्धिमान मनुष्य को कुछ भी बोलना नहीं चाहिए। दूसरी ओर देखना नहीं चाहिए, सिर तथा गर्दन कम्पाना नहीं चाहिए और दाँत भी नहीं निकालने चाहिए।

गुह्यका राक्षसा सिद्धा हरनि प्रसर्वं यतः।

एकान्तेषु शुचौ देशे तस्माज्जन्यं सपाचरेत्॥८०॥

जप करते समय एकान्त और पवित्र स्थान में बैठ कर ही जप करना चाहिए अन्यथा गुह्यक, राक्षस और सिद्धगण उस जप के फल को बलपूर्वक हरण कर लेते हैं।

चण्डालाशौचपतितान् श्रष्टा चैव पुनर्जपेत्।

तैरेव भाषणं कृत्वा स्नात्वा चैव पुनर्जपेत्॥८१॥

उस समय चाण्डाल, घटित और अपवित्र अर्थात् सूतकी व्यक्ति को देख लेने पर आचमन करके पुनः जप करना

चाहिए। ऐसे नीच लोगों के साथ यदि बातचीत हो जाए तो स्नान करके ही पुनः जप करना चाहिए।

आचम्य प्रयतो निव्यं जपेदशुचिदश्नने।

सौराम्बन्धान् शक्तिं वै पावमानीस्तु कामतः॥८२॥

प्रतिदिन नियमानुसार आचमन करके अपनी शक्ति के अनुसार स्वाध्याय भी करना चाहिए और अपवित्र व्यक्ति को देख लेने पर सूर्य के मन्त्र अथवा पावमानी मन्त्र का जप करना चाहिए।

यदि स्यात् किलप्रवासा वै वारियम्ह गतोऽपि वा।

अन्यथा तु शुचौ भूम्यां दर्भेषु सुमधाहितः॥८३॥

यदि गोले वस्त्र पहनकर जप करना हो तो उसे जल के भोतर रह कर ही जप करना चाहिए अन्यथा सूखा वस्त्र पहनकर पवित्र भूमि पर कुशासन पर एकाग्रचित्त से जप करना चाहिए।

प्रदक्षिणं समावृत्य नमस्कृत्य ततः क्षिती।

आचम्य च यथाशास्त्रं भक्त्या स्वाध्यायमाचरेत्॥८४॥

इसके पक्षात् सूर्य की परिक्रमा करके भूमि को नमस्कार करके आचमन करने के बाद शास्त्र विधि के अनुसार स्वाध्याय करना चाहिए।

ततः सनर्पयेदेवानुवीन् पितृगणास्तथा।

आदावाङ्कारमुद्यार्व नामाने तर्पयामि वः॥८५॥

इसके अनन्तर देवताओं, ऋषियों तथा पित्रों का तर्पण करना चाहिए, उस समय हाथ में जल लेकर ३० का उद्घारण करते हुए नाम के अन्त में 'तर्पयामि वः' अर्थात् मैं आपको तुम करता हूँ— ऐसा कहना चाहिए।

देवान् ब्रह्मऋषिण्डैव तर्पयेदक्षतोदकैः।

तिलोदकैः पितृन् भक्त्या स्वसूत्रोक्तविद्यानतः॥८६॥

उस समय अपनी शाखा के ग्रहासूत्र में बताए हुए नियम के अनुसार ही देवताओं तथा ऋषियों को अक्षतयुक्त जल से तथा पितरों को तिल युक्त जल से भक्तिपूर्वक तर्पण करना चाहिए।

अन्वारब्देन सव्येन पाणिना दक्षिणेन तु।

देवर्णीस्तर्पयेद्विष्णुनुदक्षुलिपिः षिन्।

यज्ञोपवीती देवानां निवीती ऋषितर्पणे॥८७॥

प्राचीनावीती पित्रे तु स्वेन तीर्थेन भावितः।

बुद्धिमान पुरुष को चाहिए कि वह देवों को तथा ऋषियों को बाँध तथा दाहिने हाथ की अंजलि में जल सेकर तर्पण

करें। उसी प्रकार देवों को तर्पण करते समय द्विज को तर्पणरूप कर्म में यज्ञोपवीत धारण करना चाहिए। ऋषियों के तर्पण में यज्ञोपवीत को माला के रूप में और पितरों के तर्पण में दक्षिण को ओर यज्ञोपवीत धारण करना चाहिए और अपने तीर्थ स्थान के द्वारा भक्ति भाव से युक्त होना चाहिए।

निष्ठीङ्गं स्नानबस्त्रं तु सामाच्य च वाग्यतः।
स्वैर्यन्वैरव्ययेऽवान् पुण्ये: पौरवाय्युधिः॥ ८८॥

तदनन्तर भीने वर्खों को निचोड़ कर आचमन करके, वाणी को संयमित रखते हुए, देवताओं का तत्संबन्धित मन्त्रों द्वारा पुण्य, पत्र और जल से पूजन करना चाहिए।

ब्रह्माणं शङ्कुरं सूर्यं तदैव मधुसूदनम्।
अन्याङ्गाभिमतान्देवान् भक्त्यायारो नरोत्तमः॥ ८९॥

हे नरोत्तम! ब्रह्मा, शिव, सूर्य, मधुसूदन-विष्णु एवं अन्यान्य अभीष्ट देवताओं को भक्तिभाव से पूजना चाहिए।

प्रदद्याद्वाय पुण्याणि सूक्तेन पौरवेण तु।
आपो वै देवताः सर्वास्तेन सम्यक् समर्चिताः॥ ९०॥

अथवा पुरुषसूक्त के मन्त्रों से स्तुति करते हुए पुण्य और जल प्रदान करना चाहिए। ऐसा करने से सभी देवता भलीभांति पूजित हो जाते हैं।

व्यात्वा प्रणवपूर्वं देवतानि समाहितः।
नपस्कारेण पुण्याणि विन्यसेद्दृ पृथक् पृथक्॥ ९१॥

समाहितचित्त होकर ३५ का उत्तरण करने के पश्चात्, सभी देवताओं का ध्यान करके पृथक्-पृथक् रूप से सभी देवताओं को नपस्कारपूर्वक पुण्य अर्पित करने चाहिए।

विष्णोराग्रथनात्युप्यं विष्टाते कर्तवैदिकम्।
तस्मादनादिमध्यानं नित्यमारवदेदुरिष्म॥ ९२॥

विष्णु को आराधना के अतिरिक्त अन्य कोई भी पुण्य प्रदान करने वाला वैदिक कर्म नहीं है, इसलिए आदि, मध्य और अन्त रहित विष्णु को नित्य आराधना करनी चाहिए।

तद्विष्णोरिति भन्नेण सूक्तेन सुसमाहितोः।
न तात्यां सदृशो मन्त्रो वेदेषुक्त्युत्तुर्विष्म॥
तदात्मा तन्मना: शानतस्तद्विष्णोरिति भन्नतः॥ ९३॥
अथवा देवमीशानं भगवन्ते सनातनम्।
आराधयेन्महादेवं भावपूतो महेष्वरपृ॥ ९४॥

उस समय 'तद्विष्णोः' इस मन्त्र से और पुरुषसूक्त से समाहितचित्त होकर मंत्र जपना चाहिए व्योंकि इनके समान मन्त्र चारों वेदों में भी नहीं हैं। अतः तन्मय होकर विष्णु में चित्त लगाकर, शान्त भाव से, 'तद्विष्णोः' मन्त्र का पाठ करना चाहिए। अथवा सनातन, भगवान्, ईशानदेव, भगवान्, शंकर को भक्तिभाव से आराधना करनी चाहिए।

भन्नेण रुद्रगायत्र्या प्रणवेनाथ वा पुनः।
ईशानेनाथवा रुद्रस्यायकेन समाहितः॥ ९५॥

पुण्ये: पौरवाय्युधिर्द्वावचन्दनादौपैष्वरपृ।
उक्त्वा नमः शिवायेति भन्नेणानेन वा जपेत्॥ ९६॥

एकाग्रचित्त होकर रुद्रगायत्री, प्रणव, ईशान, शतरुद्रिय और व्याघ्रक मन्त्र का उत्तरण करके पुण्य, विल्वपत्र अथवा चन्दनादियुक्त केवल जल से 'नमः शिवाय' मन्त्र से उसका जप करते हुए भगवान् शङ्कुर की पूजा करनी चाहिए।

नपस्कुर्याद्यादेवं त पृत्युंजययोष्वरपृ।
निवेदयेति स्वत्वामां यो ब्रह्माणभितीष्वरपृ॥ ९७॥

तदनन्तर मृत्युज्ञ, देवेश भगवान् देव को नमस्कार करके 'यो ब्रह्माण' आदि मन्त्र का पाठ करते हुए ईश्वर के प्रति आत्म-समर्पण करना चाहिए।

प्रदक्षिणं द्विजः कुर्यात्पञ्च वर्षाणि वै दुष्टः।
व्यायोत देवमीशानं व्योममध्यवत शिवम्॥ ९८॥

विद्वान् ब्रह्मण को पाँच वर्षों तक प्रदक्षिणा करनी चाहिए और आकाश के मध्यस्थित ईशानदेव, भगवान् शिव का ध्यान करना चाहिए।

अवावलोकयेदर्कं हंसः शुचिषदित्यूचा।
कुर्वन् पञ्च महायज्ञान् गृहं गत्वा समाहितः॥ ९९॥

देवयज्ञे पितृयज्ञं भूतयज्ञं तदैव च।
मानुष्यं ब्रह्मयज्ञं च पंचयज्ञान् प्रचक्षते॥ १००॥

'हंसः शुचिषद्' त्रृक् स्तुति द्वारा सूर्य का दर्शन करना चाहिए। तदनन्तर यह जाकर एकाग्रचित्त से पंच महायज्ञ करने चाहिए। वे पंचयज्ञ हैं— देवयज्ञ, पितृयज्ञ, भूतयज्ञ, मनुष्ययज्ञ तथा ब्रह्मयज्ञ।

यदि स्पात्तर्पणादवर्कं ब्रह्मयज्ञः कृतो न हि।
कृत्वा मनुष्ययज्ञं वै ततः स्वाव्यायमाचरेत्॥ १०१॥

यदि तर्पण से पूर्व ब्रह्मयज्ञ न किया जाय तो मनुष्ययज्ञ (अतिथि सेवा) सम्पत्र करने के उपरान्त वेदाध्ययनरूप स्वाव्याय (ब्रह्मयज्ञ) करना चाहिए।

अमे: पश्चिमतो देशे भूतयज्ञान एव च।
कुशपुड्डे सपासीनः कुशपाणिः सपाहितः॥ १०२॥

सपाहित होकर कुशपुड्डे पर बैठकर तथा हाथ में कुशा धारण करके अग्नि के पश्चिम भाग में भूतयज्ञ (पशु आदि को अन्न देना) सम्पन्न करना चाहिए।

शालान्नी लौकिके वाय जले भूप्यामयापि वा।
वैश्वदेव्यज्ञ कर्तव्यो देवयज्ञः स वै स्मृतः॥ १०३॥

यज्ञशाला की अग्नि, लौकिकाग्नि, जल या भूमि में वैश्वदेव होम करना चाहिए, उसे देवयज्ञ कहा जाता है।

यदि स्याल्लौकिके एषे ततोऽन्नं तत्र हृयते।
शालान्नी तत्प्रदेवान्नं विष्विरेष सनातनः॥ १०४॥

यदि लौकिकाग्नि में भोजन पकाया गया हो तो लौकिकाग्नि में और शालान्नी में बनाया गया हो तो शालान्नी में ही वैश्वदेव होम करना चाहिए, यही सनातन विधान है।

देवेष्यज्ञ हुतादत्राच्छेषाङ्कूतवल्लि होत्।
भूतयज्ञः स विजेयो भूतिदः सर्वदिहिनाम्॥ १०५॥

वैश्वदेव होम से बचे हुए अन्न से भूतवल्लि कर्म करने चाहिए। यह भूतयज्ञ समस्त प्राणियों को ऐश्वर्य प्रदान करने जाना चाहिए।

शुभ्यज्ञं शुष्पेष्यज्ञं पतितादिष्य एव च।
दण्डाङ्कौविहितान्नं पक्षिष्यो हिजसन्तापाः॥ १०६॥

हे द्विजक्रेष्टो! पतित, चाण्डाल, कुञ्जुर और पक्षियों को वह अन्न घर से बाहर भूमि पर देना चाहिए।

सायञ्ज्ञान्नस्य सिद्धस्य पत्यमन्नं वल्लि होत्।
भूतयज्ञस्वयं नित्यं सायञ्ज्ञान्नर्याविष्य॥ १०७॥

सायंकाल पके हुए अन्न से बिना मन्त्र ओले ही पत्ती बलि प्रदान करे तथा प्रतिदिन प्रातः और सायंकाल विधिपूर्वक भूतयज्ञ करे।

एकनु भोजयेहिष्पि पितृनुहिष्य सन्ततम्।
नित्यश्राद्धं तदुच्छिष्टं पितृयज्ञो गतिश्रदः॥ १०८॥

पितरों के निमित्त प्रतिदिन एक ब्राह्मण को भोजन कराना चाहिए। यही नित्यश्राद्ध कहा गया है और यही गतिश्रद पितृयज्ञ है।

उद्युत्य वा यथाशक्ति किञ्चिदत्रं सपाहितः।
वेदतत्त्वार्थविदुये हिजायैवोपपादयेत्॥ १०९॥

वेद के तत्त्वार्थ को जानने वाले किसी ब्रेष्ट ब्राह्मण को यथाशक्ति थोड़ा सा अन्न लेकर सावधानीपूर्वक दान करना चाहिए।

पूजयेदतिर्थि नित्यं नमस्वेदद्वयेद्विष्मृम्।
मनोवाक्कर्मधिः शान्तं स्वागतं स्वगृहं गतः॥ ११०॥

उसी प्रकार घर पर आए हुए शान्त स्वभाव वाले अतिथि को मन, बचन और कर्म से सदा पूजा करनी चाहिए, तथा नमस्कार और यथाशक्ति आदर सत्कार भी करना चाहिए।

अन्वारब्देन सख्येन पाणिना दक्षिणेन तु।
हन्तकारमवाग्रं वा भिक्षां वा शक्तिं द्विजः॥ १११॥

दण्डादितिवये नित्यं दुष्येत परमेष्वरम्।

याएं हाथ से थामकर, दाहिने हाथ से अतिथियों को प्रतिदिन अपने सामर्थ्य के अनुसार हन्तकार, अग्र या भिक्षा करनी चाहिए। अतिथि को सदा परमेष्वररूप ही मानना चाहिए।

भिक्षापाहुर्वासपात्रामत्रं तत्प्राच्यतुर्गुणम्॥ ११२॥

पुष्कलं हन्तकारन्तु तद्दुर्गुणमुच्यते।

एक ग्रास के बराबर अन्न देना भिक्षा कहलाती है, उसका चौंगुना अग्र होता है और अग्र का चौंगुना पुष्कल अन्न हन्तकार कहलाता है।

गोदोहकालयात्रं वै प्रतीक्षयो ह्वतिविः स्ववप्म्॥ ११३॥

अप्यागतान्वयाशक्ति पूजयेदतिर्थीन्सदा।

गो-दोहन के समय तक ही किसी अतिथि की भिक्षा के लिए प्रतीक्षा करनी चाहिए। स्वयं अतिथि को भी उतने ही काल तक रुक्ना चाहिए। आए हुए अतिथियों की सदैव अपनी शक्ति के अनुसार पूजा करनी चाहिए।

भिक्षां वै भिक्षवे दण्डाद्विष्विद्वाह्वाचारिणे।
दण्डाद्वान्यथाशक्ति ह्वर्थिष्यो लोभवर्जितः॥ ११४॥

भिक्षु और ब्रह्मचारी को विधिवत् भिक्षा देनी चाहिए और लोभवर्जित होकर यथाशक्ति याचकों को अन्न देना चाहिए।

सर्वेषामव्यलामे हि त्वं गोप्यो निवेदयेत्।
भुज्ञीत वहुभिः सार्वं वाग्यतोऽन्नमकुत्सयन्॥ ११५॥

यदि ये सभी (याचक) न मिले अर्थात् घर पर न आये तो, वह अन्न गाय को ही दे देना चाहिए। तत्प्रात् बहुत से लोगों के साथ अर्थात् परिजनों के साथ मौन होकर अन्न की निन्दा न करते हुए भोजन करना चाहिए।

अकृत्वा तु ह्रिजः पञ्च महायज्ञान् ह्रिजोत्पाः।
भुज्ञीत चेत्स मूढात्मा तिर्यग्योर्नि स गच्छति॥ १६॥

हे उत्तम ब्राह्मणो! परन्तु यदि कोई ह्रिज पंच महायज्ञ किए बिना अत्र ग्रहण करता है, तो वह दुर्बल्दि युक्त मनुष्य पक्षी-योनि में जन्म ग्रहण करता है।

वेदाभ्यासोऽन्वह शक्त्या महायज्ञः क्रियाक्षया।
नाशयन्त्याशु पाणानि देवताभ्यर्थनं तथा॥ १७॥

पंच महायज्ञ करने में असमर्थ होने पर प्रतिदिन शक्ति के अनुसार वेदाभ्यास तथा देवताओं का पूजन करना चाहिए। ऐसा करने से सभी पाप शोषण नष्ट हो जाते हैं।

यो मोहद्यवाज्ञानादकृत्वा देवतार्घ्नम्।
भूते स याति नरकं सूकरं नात्र संशयः॥ १८॥

जो मोहवश अथवा अज्ञानवश, देवपूजन किए बिना भोजन करता है, वह मरणोपरान्त नरक में जाता है और शुकर योनि में जन्म लेता है, इसमें कोई सन्देह नहीं।

तस्मात्सर्वप्रयत्नेन कृत्वा कर्माणि वै ह्रिजाः।
भुज्ञीत स्वजनैः सादृं स याति परमां गतिम्॥ १९॥

अतः सभी प्रकार से यत्पूर्वक जो ब्राह्मण विधिपूर्वक कर्म संपादित करके सगे-सम्बन्धियों के साथ बैठकर भोजन करता है, वह परम गति को प्राप्त करता है।

इति श्रीकृष्णपुराणे उत्तरार्द्धे व्यासगीताम् ब्राह्मणानां नित्यकर्त्तव्यकर्त्तव्यनिरुपयां नाम अष्टादशोऽध्यायः॥ १८॥

एकोनविंशोऽध्यायः

(ब्राह्मणों के नित्यकर्मों में भोजनादिप्रकार)

व्यास उवाच

प्राइमुखोऽत्रानि भुज्ञीत सूर्याभिषुख एव वा।
आसीनः स्वासने शुद्धे भूम्यां पादौ नियाय चा॥ १॥

व्यास बोले— शुद्ध और अपने ही आसन पर बैठकर पैरों की भूमि पर रखकर, पूर्व दिशा की ओर अथवा सूर्य की तरफ मुँह करके अत्र ग्रहण करना चाहिए।

आयुर्व्यं प्राइमुखो भुइले यशस्य दक्षिणापुरुः।
श्रिय प्रत्याइमुखो भुइले ऋतं भुइले हादिमुखः॥ २॥

दोषांशु की कामना करने वालों को पूर्व दिशा की ओर, यश की इच्छा रखने वाले को दक्षिण दिशा की ओर,

सम्पत्ति की कामना करने वालों को पूर्वोत्तर दिशा की ओर सत्य-फल की प्राप्ति की इच्छा रखने वालों को उत्तर दिशा की ओर मुख करके भोजन करना चाहिए।

पञ्चाङ्गो भोजनं कुर्याद्गौपौ पात्रं नियाय च।
उपवासेन ततुल्यं मनुराह प्रजापतिः॥ ३॥

पाँचों अङ्गों को धोकर और भोजन के पात्र को भूमि पर रखकर भोजन करना चाहिए। प्रजापति मनु ने ऐसे भोजन को उपवास के तुल्य कहा है (माना है)।

उपलिसे शुचौ देशे पादौ प्रक्षाल्य वै करौ।
आचम्याद्वानोऽक्रोधः पञ्चाङ्गो भोजनं चरेत्॥ ४॥

दोनों पैर, दोनों हाथ और मुख— ये पाँच अङ्ग धोकर, गोबर से लिपे हुए स्वच्छ स्थान पर बैठकर, आचमन करके, क्रोध रहित अवस्था में भोजन करना चाहिए।

महाब्याहृतिभिस्त्वं परिधायोदकेन तु।
अपृतोपस्तरणमसीत्यापोशानक्रियाङ्गरेत्॥ ५॥

महाब्याहृति का पाठ करते हुए, अत्र को जल से नारों ओर से परिधि बनाकर 'अपृतोपस्तरणमसि' मन्त्र का पाठ करके, जल की आचमनरूप अपाशन क्रिया करनी चाहिए।

स्वाहाब्राह्मणवसंयुक्तो प्राणायाद्याहुतिं ततः।
अपानाय ततो भुक्त्वा व्यानाय तदनन्तरम्॥ ६॥

उदानाय ततः कुर्यात्समानावेति पञ्चमम्।
विज्ञाय तत्त्वमेतेषां जुहुयादात्मनि ह्रिजः॥ ७॥

उसके बाद ३० के साथ (पंच)प्राणादि आहुति करनी चाहिए अर्थात् '३० प्राणाय स्वाहा' कहकर प्राणाहुति, '३० अपानाय स्वाहा' कहकर अपानाहुति, '३० व्यानाय स्वाहा' कहकर व्यानाहुति, '३० उदानाय स्वाहा' कहकर उदानाहुति और अन में '३० समानाय स्वाहा' कहकर पाँचवीं आहुति देनी चाहिए। इन आहुतियों का तत्त्वज्ञान कर लेने के बाद ही ब्राह्मण को स्वयं आत्मा में आहुति प्रदान करनी चाहिए।

शेषमत्रं यथाकामं भुज्ञीत व्यंजनैर्युतम्।
व्याल्वा तत्प्रसादे देवानामात्मानं वै प्रजापतिम्॥ ८॥

इसके बाद शेष अत्र को व्यंजनों के साथ, अपनी इच्छानुसार देवता, आत्मा और प्रजापति का घन से व्यान करके भोजन करना चाहिए।

अपृतापिण्यानपसीत्युपरिष्ठादपः पिवेत्।

१. यह जलरूप आसन अपृतस्वरूप विद्युतीना है।

आचान्तः पुनराचामेदयं गौरति मन्त्रतः॥ ९॥

भोजनोपरान्तं 'अमृतापिधानमसि' मन्त्रोद्घारणपूर्वक जल पीना चाहिए। उसके उपरान्त 'अर्यं गौः' मन्त्र से पुनः आचमन करना चाहिए।

तुष्टां वा त्रिरातर्य सर्वपापग्रणाश्नीष्।

प्राणानां ग्रन्थिरसीत्यालभेदुदरं ततः॥ १०॥

सर्वपापनाशक 'तुष्टा' मन्त्र की तीन बार आवृत्ति करके फिर 'प्राणानां ग्रन्थिरसि' मन्त्र से उदर को स्पर्श करना चाहिए।

आद्यम्यांगुष्ठमात्रेण पादांगुष्ठेन दक्षिणे।

निस्वावयेद्वस्तजलमूर्ख्यहस्तः सपाहितः॥ ११॥

कृतानुमन्त्रणं कृत्यात्सन्धायायामिति मन्त्रतः।

अव्याकृतेण स्वात्मानं योजयेद्वाक्षणेति हि॥ १२॥

अंगुष्ठमात्र जल से आचमन करके, उसे दक्षिणपाद के अंगुष्ठे पर गिराना चाहिए, फिर एकाशनित होकर हाथों को उपर उठाना चाहिए। तब 'सन्धायां' इस मन्त्र से पूर्वकृत का अनुस्मरण करना चाहिए। इसके अनन्तर 'द्राहाण' इस मन्त्र से अपनी आत्मा को अक्षर-ब्रह्म के साथ जोड़ना चाहिए।

सर्वेषयेव योगानामात्मयोगः स्मृतः परः।

योऽनेन विधिना कुर्यात्स कविर्द्वाहणः स्ववयम्॥ १३॥

सभी योगों में आत्मयोग को श्रेष्ठ माना गया है। जो उपर्युक्त विधि के अनुसार आत्म का संयोजन करता है, वह विद्वान् स्वयं ब्रह्मस्वरूप हो जाता है।

यज्ञोपवीती भुजीत स्वग्राह्यालंकृतः शुचिः।

सायद्वातर्नान्तरा वै सन्ध्यायान्तु विशेषतः॥ १४॥

यज्ञोपवीत धारण करके, पवित्र होकर चन्दनादि गन्ध से अलंकृत होकर और माला धारण करके भोजन करना चाहिए और वह भी सायं और प्रातः भोजन करें अन्य समय में भोजन नहीं करना चाहिए। विशेषकर सन्ध्याकाल में तो भोजन अवश्य नहीं करना चाहिए।

नादात्सूर्यश्वहात्पूर्वं प्रतिसायं शशिश्वहात्।

ग्रहकाले न चाश्नीयात्सन्धायाद्विमुक्तये॥ १५॥

उसी प्रकार सूर्यग्रहण से पूर्व कुछ समय पहले भोजन नहीं करना चाहिए और चन्दग्रहण से पूर्व भी सायंकाल में भोजन न करें। ग्रहण काल में भी भोजन न करें, परन्तु ग्रहण

समाप्ति के अनन्तर स्नान करने के पश्चात् भोजन करना चाहिए।

मुक्ते शशिनि चाश्नीयाश्वदि न स्यान्महानिशा।

अयुक्तयोरस्तगयोरश्वादददृष्टा परेऽहनि॥ १६॥

चन्द्रग्रहण हूट जाने पर यदि वह मध्यरात्रि का समय न हो, तो भोजन किया जा सकता है अर्थात् मध्यरात्रि के समय भोजन नहीं करना चाहिए। यदि ग्रहण से मुक्त हुए बिना ही चन्द्र अथवा सूर्य अस्त हो जाते हैं तो दूसरे दिन ग्रहण से मुक्त हुए चन्द्र अथवा सूर्य के दर्शन करने के बाद ही भोजन करना चाहिए।

नाश्नीयात्प्रश्वाणानाप्रदाय च दुर्यतिः।

यज्ञावशिष्टमद्वाहा न कुम्हो नान्यमानसः॥ १७॥

भोजन के समय जो (भूखा व्यक्ति) हमारी ओर देख रहा हो, उसे बिना दिए भोजन नहीं करना चाहिए। ऐसा न करने वाला अर्थात् भोजन बिना दिए स्वयं खाने वाला दुर्बुद्धि माना जाता है अथवा पञ्चमहायज्ञ करने के उपरान्त ही जो अत्र शेष रहता है उसे ही खाना चाहिए और क्रोधयुक्त और अन्यमनरक होकर नहीं खाना चाहिए।

आत्माद्वयं भोजनं यस्य रत्वर्थं यस्य मैष्वनम्।

वृत्त्वर्थं यस्य चात्मोत्तं निष्फलं तस्या जीवितम्॥ १८॥

जो मनुष्य केवल अपनी तृप्ति के लिए ही भोजन पकाता है, जो मैथुन केवल रति के लिए ही अर्थात् सन्तान प्राप्ति के उद्देश्य से रहित मात्र आनन्द के लिए ही करता है और जो धन कमाने के लिए ही अध्ययन करता है उसका जीवन व्यर्थ ही होता है।

यद्वहके वेष्टितशिरा यद्य भुहके हुदस्मुखः।

सोणानक्तश्च यो भुहके सर्वं विद्यात्तदासुरम्॥ १९॥

जो मनुष्य अपने मस्तक को ढाँक कर (पाण्डी या टोपी पहनकर) उत्तर दिशा की ओर मुख करके, सीढ़ी पर बैठ कर भोजन करता है, वह सब उसका भोजन राशसों के लिए ही जानना चाहिए।

नार्दुरात्रे न मद्याह्वे नाजीरेण नार्द्ववस्त्रायक्।

न च मिद्रासनगतो न यानस्सिक्तोऽपि वा॥ २०॥

आधी रात को, मध्याह्नकाल में, अजीर्ण (बदहजमी) के समय, गीले कपड़े पहनकर, टूटे हुए आसन पर तथा किसी भी वाहन पर बैठे हुए भोजन नहीं करना चाहिए।

न भिन्नभाजने चैव न धूम्यां न च पाणिषु।
नोचिङ्गेषु धूतमादद्यात् न मूर्द्धानं स्पृशेदपि॥ २६॥

किसी टूटे हुए पात्र में, भूमि पर अथवा हाथ में अब रखकर भोजन नहीं करना चाहिए। भोजन करते समय जूठे हाथों से घी नहीं लेना चाहिए, और उस समय सिर में स्पर्श भी नहीं करना चाहिए।

न द्वाहा कीर्तयेद्यापि न निःशेषं न भार्यया।
नाम्यकारे न सम्भवायां न च देवालयादिषु॥ २७॥

भोजन करते समय वेद का उद्धारण न करें और परोसा हुआ अब पूरा का पूरा न खा जाय अर्थात् कुछ बचा कर रखें। अपनी पत्नी के साथ अन्येरे में, सम्भवाकाल में और देवालय आदि में भोजन नहीं करना चाहिए।

नैकवस्त्रास्तु भुज्ञीत न यानशयनस्थितः।
न पादुकार्निगतोऽथ न हस्तन्विलपत्रिपि॥ २८॥

भुक्त्वा वै मुख्यामास्याय तदन्नं परिणामयेत्।
इतिहासपुराणात्यां वेदार्थानुपूर्वेत्यत्॥ २९॥

एक वस्त्र धारण कर (विना उपवस्त्र के) वाहन में बैठकर या सोते हुए, खाड़ाकैं पहन कर, हैंसते हुए या विलाप करते हुए भोजन नहीं करना चाहिए। भोजन के बाद सुखपूर्वक बैठकर जब तक अब टीक से पचने की स्थिति में न आ जाय तब तक विश्राम करें और इतिहास तथा पुराणों द्वारा वेदों के अर्थ का मनन करें।

ततः सम्भवापुराणसीति पूर्वोक्तविविना शुचिः।
आसीनश्च जपेहेवीं गायत्रीं पञ्चिमां प्रतिः॥ २५॥

इसके पश्चात् पवित्र होकर पूर्वोक्त विधि के अनुसार सन्ध्योपासना करें और पश्चिम की ओर मुख करके आसनस्थ होकर गायत्रीं मन्त्र का जप करें।

न तिष्ठति तु यः पूर्वोपास्ते सम्भवां तु षष्ठिमापि।
स शूद्रेण सपो लोके सर्वकर्मविवर्जितः॥ २६॥

जो मनुष्य विधि-पूर्वक प्राप्तः और सायंकाल सन्ध्योपासना नहीं करता है, वह शूद्र के समान इस लोक में सभी कर्मों से अयोग्य बन जाता है।

हुत्वार्णं विश्विवर्मनैर्भुक्त्वा यज्ञावशिष्टकम्।
समृत्यवान्यवज्जनः स्वपेच्छुक्षपदो निशि॥ २७॥

सायंकाल विधिवत् मन्त्रोद्धारपूर्वक अग्नि में आहुति देकर यज्ञ से बचे हुए, अब को भक्षण कर रात्रि में अपने सेवकों तथा वन्धु-वान्धवों के साथ मूर्खे पैर ही सो जाना चाहिए।

नोत्तराभिमुखः स्वप्यात्पञ्चिमाभिमुखो न च।
न चाकाशे न नग्ने वा नाशुचिर्वासने क्वचित्॥ २८॥

न शीर्णायानु खद्वायां शून्यागरे न चैव हि।
नानुवंशे न पालाशे शयने वा कदाचन॥ २९॥

उत्तर या पश्चिम दिशा की ओर सिर करके नहीं सोना चाहिए, उसी प्रकार खुले स्थान में, बखरहित, अपवित्र स्थिति में किसी आसन पर नहीं सोना चाहिए। टूटी हुई खाट पर, सूने घर में बैंस और बंज परम्परा से प्राप्त या पलाश की बनी हुई चारपाई पर कभी भी नहीं सोना चाहिए।

इत्येतदिखिलेनोक्तमहन्यहनि वै पथः।
द्वाहणानां कृत्यजातमपवर्गफलप्रदम्॥ ३०॥

नास्तिक्यादथवालस्याद्वाहणो न करोति यः।
स याति नरकान्त्योरान् काकयोनौ च जायते॥ ३१॥

इस प्रकार मैंने द्वाहणों के लिए प्रतिदिन करने योग्य शास्त्रोक्त कर्म बता दिए हैं। वे सभी मोक्षरूप फल को देने वाले हैं। इन सब कर्मों को जो द्वाहण नास्तिकता के कारण या आलस्यवश नहीं करता है वह मृत्युके बाद घोर नरक में जाता है और काकयोनि में जन्म लेता है।

नान्यो विगुल्ये पश्चा मुक्त्याक्षमविविष्टं स्वकम्।
तस्मात्कर्मणि कुर्वीत तुष्टये परमेष्ठिनः॥ ३२॥

अपने-अपने आश्रमों में बताए गए निवार्मों का पालन करने के अतिरिक्त मुक्ति का दूसरा कोई अन्य रास्ता नहीं है (उपाय नहीं है)। इसलिए इंश्वर की मन्त्रुष्टि के लिए बताए गए कर्मों का यत्क्षुर्वक पालन करना चाहिए।

इति श्रीकृष्णपुराणे उत्तराद्देव व्यासगीतामु द्वाहणानां
नित्यकर्त्तव्यकर्मसु भोजनादिप्रकारवर्णने
नामेकोनविशोऽध्यायः॥ १९॥

विशोऽध्यायः

(श्राद्धकल्प)

व्यास उवाच

अथ श्राद्धमपावास्यां प्राप्य कार्यं द्विजोत्तमैः।
पिण्डान्याहार्यकं भक्त्या भुक्तिमुक्तिफलप्रदम्॥ १॥

व्यासजी बोले— प्रत्येक श्रेष्ठ द्विज को अमावस्या के दिन भक्तिपूर्वक पिण्डदानसहित अन्वाहार्यक नामक श्राद्ध अवश्य करना चाहिए, यह धोग और मोक्षरूपी फल देने वाला है।

पिण्डान्वाहार्यकं श्राद्धं क्षीणे राजनि शस्यते।
अपराह्ने द्विजातीनां प्रशस्तेनामिषेण च॥ २॥

चन्द्रमा जय क्षीण होता है अर्थात् कृष्णपक्ष में, पिण्डान्वाह अन्वाहार्यकं श्राद्ध करना श्रेष्ठ माना गया है। इसलिए सभी द्विजातीयों को अपराह्न के समय उत्तम प्रकार के आमिण या भोज्य पदार्थों द्वारा यह श्राद्ध करना चाहिए।

प्रतिपद्यपृथिवी हृन्यास्तिथ्यः कृष्णपक्षके।

चतुर्दशी वर्जयित्वा प्रशस्ता हृपरोष्टः॥ ३॥

अमावास्याष्टकास्तिथः पौष्टिकादिवृत्रिषु।

तिस्रस्तास्त्वष्टकाः पुण्या माघी पञ्चदशी तथा॥ ४॥

प्रयोदशी मध्यायुक्ता वर्षासु च विशेषतः।

शस्यपाकश्राद्धकालाः नित्याः प्रोक्ता दिने दिने॥ ५॥

प्रत्येक कृष्णपक्ष में प्रतिपदा से लेकर सभी तिथियों में केवल चतुर्दशी को ढोड़कर उत्तरोत्तर सभी तिथियां प्रशस्त मानी गई हैं। पौष्टिक आदि तीनों मास की सभी अमावस्याएँ और तीनों अष्टकाएँ (सहस्री, आष्टमी और नवमी ये तीन अष्टक कहलाती हैं) श्राद्ध के लिए उपयुक्त हैं। तीनों अष्टकाएँ और माघ मास की पूर्णिमा पुण्यदायी मानी गई है। उसी प्रकार वर्षा ऋतु की मध्या नक्षत्र से युक्त त्रयोदशी तिथि तो विशेष उत्तम है।

नैमित्तिकनु कर्त्तव्यं ब्रह्मे चन्द्रसूर्ययोः।

बाघवानां विस्तरेण नारकी स्यादतोऽन्यथा॥ ६॥

चन्द्रग्रहण, सूर्यग्रहण के समय नैमित्तिक श्राद्ध करना चाहिए। उसी प्रकार बन्धु-बान्धवों के मरणोपरान्त यह श्राद्ध करना चाहिए अन्यथा (श्राद्ध न करने वाला) नरक को भोगा जा है।

काम्याति चैव श्राद्धानि शस्यते ग्रहणादिवृ।

अयने विषुवे चैव व्यतीपाते त्वननकम्॥ ७॥

इसी प्रकार ग्रहण आदि के समय किए जाने वाले सभी काम्य-श्राद्ध करना भी प्रशंसनीय माना गया है। दक्षिणायन, उत्तरायण के समय विषुव काल में तथा व्यतीपात होने पर जो श्राद्ध किया जाता है वह अनन्त पुण्यदायी होता है।

संक्रान्त्यामक्षयं श्राद्धं तथा जन्मदिनेष्वपि।

नक्षत्रेषु च सर्वेषु कार्यं काले विशेषतः॥ ८॥

सर्वगङ्गा लभते कृत्वा कृतिकामु द्विजोत्तमः।

अपत्यपव रोहिण्यां सौष्ठ्ये तु द्वाहवर्चसम्॥ ९॥

रौद्राणां कर्मणां सिद्धिपार्वाणां शौर्येष्व च।

पुनर्वसी तथा भूमि विष्ये पुष्टे तथैव च॥ १०॥

संक्रान्ति काल में तथा प्रत्येक जन्मदिन पर अक्षय-श्राद्ध करना चाहिए, उसी प्रकार सभी नक्षत्रों में भी विशेषकर काम्य-श्राद्ध करना चाहिए। प्रत्येक द्विज श्रेष्ठ को कृतिका नक्षत्र में श्राद्ध करने से स्वर्ग की प्राप्ति होती है, रोहिणी नक्षत्र में श्राद्ध करने से सन्तान की प्राप्ति होती है और मृगशिरा नक्षत्र में श्राद्ध करने से ब्रह्मतेज की प्राप्ति होती है। आद्वा नक्षत्र में श्राद्ध करके प्रत्येक व्यक्ति रौद्र कर्मों को सिद्धि और पराक्रम प्राप्त करता है। पुनर्वसु नक्षत्र में भूमि तथा पुष्ट में लक्ष्मी प्राप्त होती है।

सर्वान्कामांस्तथा सार्वे पित्र्ये सौभाग्यमेव च।

अर्यष्टे तु धनं विनेत् फाल्गुन्यां पापनाशनम्॥ ११॥

उसी प्रकार सर्वे के 'आश्लेषा नक्षत्र' में श्राद्ध करने से मनुष्य सभी कामनाओं की पूर्ति कर लेता है और पितरों के मध्या नक्षत्र में श्राद्ध करने में सौभाग्य प्राप्त करता है। पूर्वा फाल्गुनी नक्षत्र में श्राद्ध करने से धन प्राप्त करता है और उत्तराफाल्गुनी में समस्त पापों का नाश होता है।

ज्ञातिब्रैष्टयं तथा हस्ते चित्रायां च बहून् सुताम्।

वाणिज्यसिद्धिं स्वातौ तु विशाखामु सुवर्णकम्॥ १२॥

हस्त नक्षत्र में किया गया श्राद्ध ज्ञातिब्रैष्टओं में श्रेष्ठता प्रदान करता है। चित्रा में अनेक पुत्रों की प्राप्ति होती है। स्वाति में श्राद्ध करने से व्यापार में लाभ होता है और विशाखा में किया गया श्राद्ध स्वर्णदायक होता है।

पैत्रे वरूनि पित्राणि राज्यं ज्ञाके तथैव च।

पूले कृपिं लभेत्वानं सिद्धिमाप्ये समुद्रतः॥ १३॥

सर्वान् कामान्वैशुदेवे श्रैष्टुनु श्रवणे पुनः।

धनिष्ठायां तथा कामानम्बुप्ये च परम्बलम्॥ १४॥

अनुराधा में श्राद्ध करने से अनेक भित्रों की प्राप्ति होती है और ज्येष्ठा नक्षत्र में राज्य की प्राप्ति होती है। मूल में कृपि लाभ होता है और पूर्वाशुद्ध में सभी कार्य सिद्ध हो जाते हैं। उत्तराशुद्ध में श्राद्ध करने से सभी कामनाएँ पूर्ण होती हैं। श्रवण नक्षत्र में श्रेष्ठता और धनिष्ठा में सभी इच्छाएँ पूर्ण होती हैं तथा शतभिषा नक्षत्र में श्राद्ध करने से तो श्रेष्ठ वल की प्राप्ति होती है।

अवैकपादे कुरुं स्यादहिकुने गृहं शुभम्।

रेवत्याम्बह्यो गायो हास्तिन्यानुरगांस्तदा।

याप्ये तु जीवितनु स्यादाः श्राद्धं सप्त्यच्छिति॥ १५॥

पूर्वभाद्रपद में श्राद्ध करने से कुप्य (सोने और चाँदी से भिन्न) धन की प्राप्ति होती है। उत्तरभाद्रपद नक्षत्र में उत्तम घर, रेखती में अनेक गाय, अविनी में अनेक अख और भरणी में श्राद्ध करने से दीर्घायु की प्राप्ति होती है।

आदित्यवारेऽन्वारोग्यं चन्द्रे सौभाग्यमेव च।
कुजे सर्वत्र विजयं सर्वान् कामान् वृथस्य तु॥ १६॥
विद्यामधीष्टानु गुरी धनं वै भार्गवे पुनः।
शैनैश्चरै लभेदायुः प्रतिपल्सु सुतान् शभान्॥ १७॥

उसी प्रकार रविवार को श्राद्ध करने से आरोग्य, सोमवार को करने से सौभाग्य, मंगल को करने से सर्वत्र विजय और बुधवार को करने से सभी कामनाएँ पूर्ण होती हैं। गुरुवार को किया गया श्राद्ध इच्छित विद्या को देता है। शुक्रवार को करने पर धन लाभ होता है। शनिवार को दीर्घायु और प्रतिपदा को करने से उत्तम पुत्र की प्राप्ति होती है।

कन्यका वै हितीयायां तृतीयायानु विन्दिता।
पश्चन् क्षुराङ्कुरुर्था वै पञ्चम्यां शोभनान् सुतान्॥ १८॥
पष्ठाणो हुर्ति कृषिशापि सप्तम्यां च धनं नरः।
अष्टम्यामपि वाणिज्यं लभते श्राद्धदः सदा॥ १९॥
स्यात्रवप्यामेकखुरं दशम्यां द्विखुरं वहु।
एकादश्यान्ताथा रूप्यं द्वाहवर्चस्विनः सुतान्॥ २०॥

उसी प्रकार द्वितीया में श्राद्ध करने से उत्तम कन्या की प्राप्ति होती है, तृतीया में उत्तम ज्ञान, चतुर्थी में छोटे पशुओं की प्राप्ति तथा पञ्चमी में श्राद्ध करने से उत्तम पुत्रों की प्राप्ति होती है। पाष्ठी में श्राद्ध करने वाला द्युति (तेज) और कृषि लाभ करता है। सप्तमी में मनुष्य धन प्राप्त करता है। आठमी में श्राद्ध करने वाला सदा वाणिज्य को प्राप्त करता है। नवमी में श्राद्ध करने से एक खुर वाले पशु, दशमी में दो खुर वाले पशु, और एकादशी में श्राद्ध करने से बहुत सी चाँदी और द्वाहवर्चस्वी पुत्रों को प्राप्त करता है।

द्वादश्यां जातरूप्यं च रजतं कुप्यमेव च।
ज्ञातिष्ठैष्ठ्यं त्रयोदश्यां चतुर्दश्यानु कुप्रज्ञाः।
पञ्चदश्यां सर्वकामान् प्राप्नोति श्राद्धदः सदा॥ २१॥
द्वादशी में श्राद्ध करने से स्वर्ण, रजत तथा कुप्य नामक द्रव्य को प्राप्त करता है। त्रयोदशी में श्राद्ध करने वाला अपनी जाति में श्रेष्ठता को प्राप्त करता है परन्तु चतुर्दशी में श्राद्ध करने से कुसन्तान को प्राप्ति होती है। पञ्चदशी तिथि को श्राद्ध करने वाला सदा सभी कामनाओं को पा लेता है।

तस्माच्छ्राद्धं न कर्त्तव्यं चतुर्दश्यां हिजातिपिः।

शस्त्रेण तु हतानानु श्राद्धं तत्र प्रकल्पयेत्॥ २२॥

इसलिए द्विजाति के लोगों को चतुर्दशी में श्राद्ध नहीं करना चाहिए, केवल शत्रु द्वारा मारे गए व्यक्ति का ही श्राद्ध इस तिथि में करना चाहिए।

द्रव्यद्वाहणसम्पत्तौ न कालनियमः कृतः।

तस्माद्दोगपद्मर्गी श्राद्धं कुर्य द्विजातयः॥ २३॥

द्रव्य, द्वाहण और सम्पत्ति की प्राप्ति होने पर समय सम्बन्धी नियमों पर विचार किए बिना किसी भी दिन श्राद्ध किया जा सकता है। इसलिए भोग मोक्ष के लिए द्विजातियों को (किसी भी समय) श्राद्ध करना चाहिए।

कर्मारम्भेषु सर्वेषु कुर्यादभ्युदये पुनः।

पुत्रजन्म्यादिषु श्राद्धं पार्वणं पर्वमु स्मृतम्॥ २४॥

सभी कार्य आरम्भ करने से पूर्व, उत्तरि के निमित्त किए जाने वाले कार्य से पहले, पुत्र जन्म पर और पर्व के दिन पार्वण श्राद्ध करना चाहिए।

अहन्वहनि नित्यं स्यात्काम्यं नैपितिकं पुनः।

एकोहिष्टादि विजेयं द्विया श्राद्धनु पार्वणम्॥ २५॥

एतत्पञ्चविधि श्राद्धं मनुना परिकीर्तिम्।

यात्रायां पष्ठमाख्यातं तत्रयत्रेन पालयेत्॥ २६॥

प्रतिदिन किए जाने वाले श्राद्ध, नित्य श्राद्ध, काम्य श्राद्ध, नैपितिक श्राद्ध और पार्वण श्राद्ध— इन पाँच प्रकार के श्राद्धों को मनु ने बताया है। यात्रा के निमित्त अर्थात् तीर्थयात्रा के निमित्त किया जाने वाला श्राद्ध उत्ता श्राद्ध कहलाता है, इस श्राद्ध को यत्रपूर्वक करना चाहिए।

शुद्धये सप्तमं श्राद्धं द्वाहणा परिभाषितम्।

दैविकञ्चाष्टमं श्राद्धं यत्कृत्या पुच्यते भयात्॥ २७॥

ब्रह्मा ने प्रायश्चित्त के समय किया जाने वाला श्राद्ध सप्तम कहा है तथा दैविक श्राद्ध को आठवाँ बताया है जिसको करने से भय से मुक्ति मिलती है।

सप्त्यां रात्रौ न कर्त्तव्यं राहोरन्यन्त्र दर्शनात्।

देशानानु विशेषेण भवेत्पुण्यमनन्तकम्॥ २८॥

सप्तम्या समय और रात को श्राद्ध नहीं करना चाहिए परन्तु राहु के दर्शन अर्थात् ग्रहण लग जाए तो श्राद्ध करना चाहिए। स्थान विशेषों में किए जाने वाले श्राद्ध अनन्त पुण्य फलदायक होते हैं।

गंगायामशयं श्राद्धं प्रयागेऽमरकण्टके।

गायनि पितरो गाथा नर्तयनि मनीषिणः॥ २९॥

गंगा किनारे प्रयाग तथा अमरकंटक क्षेत्र में जो श्राद्ध किया जाता है वह अक्षय फलदायी होता है। उस समय पितर गाथा का गान करते हैं और मनीषी उत्साहित होते हैं।

एष्टव्या बहवः पुत्राः शीलबनो गुणान्विताः।

तेषानु सप्तवेतानां यहोकोऽपि गया व्रजेत्॥ ३०॥

गया प्रायानुर्विगण यदि श्राद्धं सपाचरेत्।

तारिता: पितरस्तेन स याति परमाङ्गतिम्॥ ३१॥

मनुष्य को अनेक शीलबन, और गुणबन, पुत्रों की इच्छा करनी चाहिए, वर्योंकि उनमें से कोई एक भी गया तीर्थ में जाता है और वहां श्राद्ध करता है, तो वह अपने पितरों को तार देता है एवं स्वयं परम गति को प्राप्त करता है।

वाग्हपते चैव गयायां वे विशेषतः।

वागणस्यां विशेषेण यज्ञ देवः स्वयं हरः॥ ३२॥

गंगाद्वारे प्रभासे तु विल्वके नीलपर्वते।

कुरुक्षेत्रे च कुञ्जामे भृगुतुंगे महालये॥ ३३॥

केदारे फल्गुतीर्थे च नैमियारण्य एव च।

सरस्वत्या विशेषेण पुष्करे तु विशेषतः॥ ३४॥

नर्मदायां कुशावर्ते श्रीशैले भद्रकर्णक।

वेत्रवत्यां विशाखायां गोदावर्यां विशेषतः॥ ३५॥

एवमादिषु चान्येषु तीर्थेषु पुलिनेषु च।

नदीनाञ्चैव तीरेषु तुष्यनि पितरः सदा॥ ३६॥

यदि कोई वाराह पर्वत पर विशेषण से वाराणसी में जहां महादेव स्वयं विराजमान हैं, गंगाद्वार में, प्रभास क्षेत्र में, विल्वक तीर्थ में, नीलपर्वत पर, कुरुक्षेत्र में कुञ्जाम शेत्र में, भृगुतुंग में, उसी प्रकार महालय, केदार, फल्गुतीर्थ, नैमियारण्य, विशेषरूप से सरस्वती नदी या पुष्कर क्षेत्र, नर्मदा तट, कुशावर्त, श्रीशैल, भद्रकर्णक, वेत्रवती नदी पर, विषाशा के तट पर, तथा विशेषकर गोदावरी के तट पर और भी दूसरे तीरों में या नदियों के किनारे जो श्राद्ध करता है, तो पितृगण सर्वकाल प्रसन्न रहते हैं।

द्वीहिष्ठ्य चैवमार्पेणिर्मूलफलेन वा।

श्यामैष्ठ्य सर्वैः काशीनौवारैष्ठ्य प्रियकृष्णिः।

गोदृष्ठैष्ठ्य तिलैर्षुदीर्घार्षां प्रीणयते पितृन्॥ ३७॥

धान्य, दाव, उड्ड, जल, कन्दमूल, फल, श्यामाक, उत्तम शातधान्य, नीवार, प्रियंगु, गेहूं, तिल, मुद्र आदि पदार्थों से

श्राद्ध करने पर पितर तृप्त होते हैं।

आप्रान् पाने रत्ननिकून् शृद्वीकोष्ठ सदाडिमन्।

विद्वश्चांश्च कुरुण्डांश्च श्राद्धकाले प्रदापयेत्॥ ३८॥

लाजान्मधुयुतान् दधारस्तून् शर्करया सह।

दद्याच्छाद्वे प्रयत्नेन शृंगाटककशेरुकान्॥ ३९॥

श्राद्ध में आम, रक गत्रा, दाढिम सहित द्राक्षा, विदारीकंद, कुरुण्ड फल आर्पित करना चाहिए। मधुयुक्त लाजा, शर्करा निश्चित सकू, सिंचाडे तथा कसरुक आदि पदार्थ प्रयत्नपूर्वक आर्पित करने चाहिए।

द्वौ मासौ मल्यमांसेन श्रीन्मासान् हरिणेन तु।

औरेणाथ चतुरः शाकुनेनेह पञ्च तु।

पण्मासांश्चागमांसेन पार्षितेनेहं सप्त वै॥ ४०॥

अष्टावेणस्थपांसेन रौरवेण नवैव तु।

दशमासांस्तु तृप्तनिति वराहमहिषमिषै॥ ४१॥

शशकूर्मयोर्मासेन मासानेकादशैव तु।

संक्षत्यरनु गव्येन यद्यसा यायसेन तु।

वार्षीयासस्य मांसेन तुसिद्धादशवार्षिकी॥ ४२॥

कालशकं महाशत्कं: खङ्गलोहामिषं मधु।

आवन्याद्यैव कल्पने मुन्यज्ञानि च सर्वशः॥ ४३॥

क्रीत्वा लक्ष्मा स्वयं वाय मृतानाहत्य वै द्विजः।

दद्याच्छाद्वे प्रयत्नेन तदस्यक्षयमुच्यते॥ ४४॥

पिष्ठली रुदक्षैव तथा चैव मसूरकम्।

कृष्णपङ्कलायुवार्त्ताक्षूतृणं सरसं तथा॥ ४५॥

कुसुमपिण्डपूलं वै तनुलीयकमेव च।

राजमायांसक्षात् क्षीरं माहिषां विवर्जयेत्॥ ४६॥

आढकव्यः कोविदाराषु पालक्या परिचासत्या।

वर्जयेत्सप्तयत्नेन श्राद्धकाले द्विजोत्तमः॥ ४७॥

इति श्रीकूर्मपुराणे उत्तराद्वे व्यासगीतामु श्राद्धकल्पे

विशेषाद्यायः॥ २०॥

1. श्राद्धकर्म में मनु ने भी इसी प्रकार का विधान बताया है।

देखें- मनु० ३.२६७-७२

2. Convolvulus Paniculatus willd.

3. Scripus Kessoor.

4. उपर्युक्त इन फ्लोर्कों में श्राद्ध किया में विभिन्न मांसों को आर्पित करने का विधान बताया है, जो मांसाहारी आदिम जाति के लोगों को उद्देश्य करके लिखा गया है अतः यह सब के लिए अनुकरणीय नहीं है।

एकविशोऽध्यायः (श्राद्धकल्प)

व्याप्त उवाच

स्नात्वा यदोक्तं सन्तर्थं पिण्डान्तर्क्षये ह्रिजः।
पिण्डान्ताहार्वकं श्राद्धं कुर्यात्सौम्यमनाः शुचिः॥ १॥

द्विजवर्णं ब्राह्मणादि को चन्द्रक्षय (अमावास्या) के दिन यथोक्त प्रकार से स्नान करके, सौम्यमन और पवित्र होकर पितरों को तर्पण कर पिण्डदान सहित अन्वाहार्य श्राद्ध करना चाहिए।

पूर्वमेव समीक्षेत ब्राह्मणं वेदपारागम्।
तीर्थं तद्व्यक्तव्यानां प्रदानानांशु संस्तुः॥ २॥

उस समय पहले ही वेदपाराग ब्राह्मण की परीक्षा कर लेनी चाहिए वयों कि वही वेद-पारागत ब्राह्मण ही है और कव्य प्रदान करने का तीर्थ कहा जाता है।

ये सोमपा विरजसो धर्मज्ञाः शान्तचेतसः।
द्वितीयो नियमस्वाषु ऋतुकालाभिगमिनः॥ ३॥

पञ्चामिनरप्यधीयानो यजुर्वेदविदेव च।
बहुवच्छु त्रिसौर्णमिष्टपूर्वा च योऽभवत्॥ ४॥

वे ब्राह्मण सोमपान करने वाला, रजोगुण से रहित, धर्मज्ञ, शान्तचित्त, द्वितीय, नियमनिष्ठ, ऋतुकाल में ही पत्नी के साथ सहवास करने वाला, पंचामिन्युक्त, वेदाध्यायी, यजुर्वेद का ज्ञाता, ऋग्वेद की अनेक ऋचाओं को जानने वाला, सुपर्ण ऋषि द्वारा कथित व्रत करने वाला और मधु-शक्ति-दूध प्राशन करने वाला हो।

त्रिणाचिकेतच्छन्दोगो ज्येष्ठसामग एव च।
अथर्वशिरसोऽध्येता रुद्राध्यायी विशेषतः॥ ५॥

अग्निहोत्रपरो विद्वान्यायविद्व षड्हृवितः।
मन्त्रब्राह्मणविद्वैव यजु स्याद्भूर्पाठकः॥ ६॥

वह नचिकेता के तीन व्रत करने वाला, छन्दों का गान करने वाला, ज्येष्ठ साम का गायक, तथा अथर्वशिरस् का अध्येता और विशेषतः रुद्राध्यायी का अध्येता हो। वह अग्निहोत्रपरायण, विद्वान्, न्यायनिद्, छः वेदाङ्गों का ज्ञाता, मंत्रवेत्ता तथा ब्राह्मणग्रन्थों का ज्ञाता, धर्म का पठन-पाठन करने वाला हो।

ऋषिन्नती ऋचीक्षु शान्तचेता जितेन्द्रियः।
ब्रह्मदेयानुसन्नानो गर्भशुद्धः सहस्रदः॥ ७॥

ऋषियों का व्रत करने वाला, ऋषिपत्नी से उत्पन्न, शान्तचित्त, जितेन्द्रिय, ब्राह्मणों को देय मंत्रादि की परम्परा निभाने वाला, गर्भावस्था से ही शुद्ध, हजारों के दान देने वाला हो।

चान्द्राध्याणव्रतचरः सत्यवादी पुराणविद्।
गुरुस्टेवामिष्टपूजामु प्रसक्तो ज्ञानतप्तरः॥ ८॥

विमुक्तः सर्वतो धीरो ब्रह्मभूतो ह्रिजोत्तमः।
महादेवार्द्धनरतो वैष्णवः पंक्तिपावनः॥ ९॥

चान्द्राध्याण व्रत करने वाला, सत्यवादी, पुराणवेत्ता, गुरु-अग्नि-देवादि के पूजन में प्रसक्त, ज्ञानतप्तर, विमुक्त, सर्व प्रकार से धीर, ब्रह्मस्वरूप, उत्तम ब्राह्मण, महादेव की पूजा में आसक्त वैष्णव जो पूरी ब्राह्मण पंक्ति को पवित्र करने वाला हो।

अहिंसानिरतो नित्यमप्रतिग्रहणस्तथा।
सत्री च दाननिरतो विज्ञेयः पंक्तिपावनः॥ १०॥

अहिंसा व्रत में संलग्न, सदा किसी के प्रतिग्रह से रहित, किसी का दान न लेने वाला, यज्ञादि करने वाला पंक्तिपावन होता है।

मातापित्रोहिति चुक्तः प्रातः स्नायी तथा ह्रिजः।
अध्यात्मविन्युनिर्दानो विज्ञेयः पंक्तिपावनः॥ ११॥

माता-पिता के हित में संयुक्त, प्रातःकाल स्नान करने वाला, अध्यात्मशास्त्र का ज्ञाता, मुनि और दान-इन्द्रियों का दमन करने वाला पंक्तिपावन जाना जाता है।

ज्ञाननिष्ठो महायोगी वेदान्तार्थविचिन्तकः।
श्रद्धालुः श्राद्धनिरतो ब्राह्मणः पंक्तिपावनः॥ १२॥

ज्ञाननिष्ठो, महायोगी, वेदान्त के अर्थ का विशेष चिन्तक, श्रद्धालु, श्राद्धनिरतो ब्राह्मण ही पंक्तिपावन होता है।

वेदविद्यारतः स्नातो ब्रह्मचर्यपरः सदा।
अथर्वाणो मुपुष्कुष्ठ ब्राह्मणः पंक्तिपावनः॥ १३॥

वेदविद्या में निरत, स्नातक, सदा ब्रह्मचर्यपरायण, अथर्व वेद का अध्ययन करने वाला, मुपुष्कु ब्राह्मण ही पंक्तिपावन होता है।

असम्पन्नप्रवरको त्रुसगोत्रस्तथैव च।
सम्बन्धशून्यो विज्ञेयो ब्राह्मणः पंक्तिपावनः॥ १४॥

जिसका श्रेष्ठता अन्य के समान न हो, उसका गोत्र भी असमान हो, जिसका किसीसे विशेष सम्बन्ध न हो, वही ब्राह्मण पंक्तिपावन जानना चाहिए।

भोजयेद्योगिनं शानं तत्त्वज्ञानरं यतः।
अभावे नैषिकं दानपुण्ड्रकुर्बाणं तथा॥ १५॥

तदलाभे गृहस्थं तु मुमुक्षुं सहचर्जितम्।
सर्वालाभे साधकं वा गृहस्थपि भोजयेत्॥ १६॥

क्योंकि योगी, शांत, तत्त्वज्ञानपरायण योगी को भोजन करना चाहिए। यदि वह न मिले तो नैषिक, दान, उपकुर्बाण— वाल्यकाल से ही ब्रह्मचारी रहने की इच्छा वाला हो उसे कराये। वह भी यदि न मिले तो संगवर्जित मुमुक्षु गृहस्थ को और कोई भी न मिले तो किसी सुपात्र गृहस्थ साधक को भोजन करना चाहिए।

प्रकृतेर्गुणतत्त्वज्ञो यस्याङ्नाति यतिर्हाविः।
एतं वेदान्वितस्य सहस्रादितिरित्यते॥ १७॥

प्रकृति के गुणों का रहस्य जानने वाला कोई यति या संन्यासी गृहस्थ का हविर्यात्र भोजन करता है, तो हजार वेदान्विताओं को भोजन करने से भी अधिक फलदायी होता है।

तस्माद्यत्नेन योगीन्द्रियांश्चरज्ञानतत्परम्।
भोजयेद्विष्टकव्येषु अलाभादितरान्दिजान्॥ १८॥

इसलिए ईश्वर के ज्ञान में तत्पर रहने वाले उत्तम योगी को सबसे पहले हव्य-कल्य का भोजन करना चाहिए, उसके न मिलने पर ही अन्य द्विजों को करा सकते हैं।

एष वै प्रथमः कल्यः प्रदाने हव्यकव्ययोः।
अनुकल्पस्वयं ज्ञेयः सदा सदिरनुष्ठितः॥ १९॥

देवब्राति और पितृब्राति का दान करने के लिए, यही प्रथम कल्य-आचार है। इसके पीछे दूसरा भी अनुकल्प सज्जनों द्वारा निर्विष्ट है।

यातामहं पातुलञ्ज स्वस्त्रीयं क्षम्भुरं गुरुम्।
दोहित्रं विद्यर्थिं बश्युपृतिवायाज्ञौ च भोजयेत्॥ २०॥

न श्राद्धे भोजयेन्मित्रं धनैः कार्योऽस्य संप्रहः।
पैशाची दक्षिणाशा हि नेहामुत्र फलप्रदा॥ २१॥

मातामह, मामा, वहन का पुत्र, ससुर, गुरु, पुत्री का पुत्र, वैश्यों का स्वामी, वन्धु या ऋत्विज तथा याजिक ब्राह्मण को भी भोजन कराया जा सकता है।

कापं श्राद्धेऽर्चयेन्मित्रं नाभिरूपपि त्वरिम्।
द्वितीया हि हरिर्मुकं भवति प्रेत्य निष्फलम्॥ २२॥

अपने मित्र का श्राद्ध में इच्छानुसार आदर सत्कार करना चाहिए, परन्तु यदि कोई शत्रु अनुकूल भी क्यों न हो, उसे

आदर नहीं देना चाहिए। शत्रु को तो श्राद्ध में कराया हुआ भोजन भी परलोक में निष्फल जाता है।

ब्राह्मणो ह्यन्यीयानस्तुणामिविव ज्ञात्यति।

तस्मै हव्यं न दात्यत्वं न हि भस्यनि हृयते॥ २३॥

वेदशास्त्र के अध्ययन से रहित ब्राह्मण तृण की अग्नि के समान शांत होता है अर्थात् शीत्र निस्तेज हो जाता है। उसे हव्य प्रदान नहीं करना चाहिए क्यों कि रात्रि में होम नहीं किया जाता।

यदोषे वीजमुख्या न वसा लभते फलम्।

तद्वानुवेदे हविर्देत्त्वा न दानाल्लभते फलम्॥ २४॥

यावतो ग्रसते पिण्डान्हव्यकव्येष्वपन्त्रवित्।

तावतो ग्रसते प्रेत्य दीपान् स्वूलांस्वयोगुडान्॥ २५॥

जैसे उपर (क्षारयुक्त) भूमि में बीज बोने पर कोई फल नहीं प्राप्त होता, उसी तरह वेदाध्ययनरहित पुरुष को भोजन कराने से दाता को कोई फल नहीं मिलता। इतना ही नहीं, मंत्र को न जानने वाला देव-पितृ कार्यों में जितने ग्रास अत्र ग्रहण करता है, मृत्यु के पक्षात् दाता उतने ही लोहे के गोलों को ग्रसता है।

अपि विद्याकुलैर्युक्ता हीनवृत्ता नरात्मा।।

यत्रैते भुजते हव्यं तद्वेदामुरं द्विजाः॥ २६॥

जो अधम पुरुष हीन कर्म में प्रवृत्त हो, भले ही वे विद्यावान् और उच्च कुल के हों, वे जहाँ हव्य का भोजन करते हैं, वह सब आसुरी हो जाता है।

यस्य वेदश्च वेदी च विच्छिन्नते विपूर्वम्।

स वै दुर्गाङ्गणो नार्हः श्राद्धादिषु कदाचन॥ २७॥

अपने तीन कुलों से जो ब्राह्मण वेद और अग्निहोत्र से दूर रहा होता है, ऐसा दुष्ट ब्राह्मण श्राद्धादि में कभी योग्य नहीं होता।

शूद्रप्रेष्यो भूतो राजो वृपलानांश्च याजकः।।

वृद्धव्योपजीवी च पडेते द्रव्यवस्थवः॥ २८॥

जो ब्राह्मण शूद्र का दास हो, राजा का सेवक रहा हो, अन्यजों का याजक रहा हो, किसी का वध करके या अपहरण करके आजीविका चलाता हो— ये छः व्रद्यवन्यु अर्थात् नीच ब्राह्मण कहे गये हैं।

दत्त्वानुयोगो द्रव्यार्थं पतितान्मनुरद्वीतैः।

वेदविक्रयिणो होते श्राद्धादिषु विगर्हिताः॥ २९॥

और जिसने द्रव्य के लिए अपनी स्त्री को परपुरुष के साथ सहमति दी हो, उन्हें मनु ने पतित कहा है। धन लेकर वेदाध्यापन कराने वाले भी श्राद्धादि में निन्दित हैं।

सुतविक्षयिणो ये तु परपूर्वासमुद्धावाः।
असामान्यान् यज्ञने ये पतितास्ते प्रकीर्तिताः॥ ३०॥

जो पुत्र को बेचने वाले हों, जो पूर्व पुरुष को छोड़कर पुनः दूसरे से विवाहिता स्त्री से उत्पन्न हों, जो असमान व्यक्तियों का यजन करते हों, वे पतित कहे गये हैं।

असंस्कृताध्यापका ये भूत्यर्थोऽध्यापयनि ये।
अधीयते तथा वेदान् पतितास्ते प्रकीर्तिताः॥ ३१॥

जो अध्यापक संस्कारहीन हों, जो धन के लिए अध्यापन करते हों, या वेतन के लिए वेद पढ़ाते हों, वे पतित कहे गये हैं।

वृद्धश्रावककनिर्गच्छाः पछुरात्रविदो जनाः।
कापालिकाः पाशुपताः पाषण्डा ये च तद्विद्याः॥ ३२॥
यस्याशननि हवीयते दुरात्मानस्तु तामसाः।
न तस्य तद्वेच्छाद्व प्रेत्य चेह फलप्रदम्॥ ३३॥

अनपद् वृद्धश्रावक, पंचरात्र सिद्धान्त का ज्ञाता, कापालिक, पाशुपत मत वाले पाखंडी या उनके जैसे लोग जिनका हविद्यात्र खाते हैं, वे दुरात्मा तामसी होते हैं। उसका वह श्राद्ध इस लोक में तथा मरण पक्षात् परलोक में भी फलदायक नहीं होता।

अनाश्रमी ह्रिजो यः स्वादाश्रमी वा निर्यकः।
पित्याश्रमी च ते विग्रा विज्ञेयाः पंक्तिदूषकाः॥ ३४॥
दुष्पर्वा कुनखी कुठी चित्री च श्यावदनकः।
विकृद्यजननक्षीव स्तेनः कलीबोऽथ नास्तिकः॥ ३५॥
मद्यापो वृपलीसक्तो वीरहा दिविष्टुपतिः।
अगारदाही कुण्डाशी सोमविक्षयिणो द्विजाः॥ ३६॥
परिवेत्ता च हित्यश्च परिवित्तिराकृतिः।
पौनर्भवः कुसीद्वज्ञा तथा नक्षत्रदर्शकः॥ ३७॥
गीतवादित्रशीलक्षु व्याधितः क्षाण एव च।
हीनाहृश्चातिरिक्ताहृषे ह्रावकीर्णो तत्वैव च॥ ३८॥
अन्नदूषी कुण्डगोलौ अधिष्ठास्तोऽथ देवलः।
पित्रसूक्त पिशुनक्षीव नित्यं भार्यानुवर्त्तिः॥ ३९॥
पातापित्रोर्गुरोस्त्वागी दारत्यागी तत्वैव च।
गोत्रस्मृक् ग्रहशौचस्तु काण्डपृष्ठस्तत्वैव च॥ ४०॥
अनपत्यः कूटसाक्षी याचको रहजीवकः।

समुद्रयायी कृजहा तथा समयभेदकः॥ ४१॥

वेदनिन्दारतक्षीव देवनिन्दापरस्तथा।

द्विजनिन्दारतक्षीव वर्ज्याः श्राद्धादिकर्मणिः॥ ४२॥

जो कोई ब्राह्मण आश्रम धर्मरहित हो या उससे युक्त हो परन्तु निरर्थक-आचारशून्य हो, तथा जो मिथ्या आश्रमी हो, उनको पथभ्रष्ट जानना चाहिए। चर्मरोगी, कुनखी, कुषरोगी, काले-पीले दाँत वाला, प्रजननेन्द्रिय से विद्ध, चोर, नपुंसक, नास्तिक, मध्यापन करने वाला, शृदजाति की स्त्री में आसक, वीर पुरुष का हत्यारा, जो बड़ी बहन के अविवाहिता होने पर भी उसकी छोटी बहन का पति हो, किसी का घर जलाने वाला, कुण्ड नामक वर्णसंकर का अत्र खाने वाला, सोमविक्रय करने वाला, बड़े भाई के रहते विवाह कर लिया हो, हिंसक वृत्ति वाला, स्वयं विवाह करके अविवाहित बड़े भाई का अनादर करने वाला, सुनः विवाहिता स्त्री से उत्पन्न, न्याजखोर, नक्षत्रदर्शक, गीतवादित्रपरायण, रोगी, काना, अङ्गहीन या अधिक अङ्गयुक्त, अवकीर्ण, अन्नदूषी, कुण्ड और गोलक वर्णसंकर से धिक्कारित, वेतन लेकर देवपूजा करने वाला, पित्रदोही, चुगलखोर, सदा स्त्री का अनुगामी, माता-पिता और गुरु को त्यागने वाला, स्त्रीत्यागी, गोत्र का उच्चार करने वाला, पवित्रता से भ्रष्ट, शस्त्रविक्रेता, संतानहीन, खोटी साक्षी करने वाला, याचक, रंग-रोगन करके आजीविका जलाने वाला, समुद्र में यात्रा करने वाला, कृतघ्न, वचन तोड़ने वाला, वेदनिन्दारत, देवनिन्दापरायण तथा द्विजनिन्दा करने वाला सदा श्राद्धकर्म में त्याज्य हैं।

कृतञ्जः पिशुनः कूरो नास्तिको वेदनिन्दकः।

पित्रसूक्त कुहक्षीव विशेषात्पंक्तिदूषकः॥ ४३॥

सर्वे पुनरभोग्यात्रा न दानार्हाः स्वकर्मसु।

ब्रह्महा चाभिशस्ताष्टु वर्ज्यनीया ग्रयत्वतः॥ ४४॥

इसमें भी जो कृतघ्न, चुगलखोर, कूर, नास्तिक, वेदनिन्दक, पित्रदोही और कपटी हैं, वह तो विशेषरूप से पंक्ति को दूषित करने वाला है। इन सबका अत्र खाने योग्य नहीं होता और वे अपने कर्मों में दान देने भी योग्य नहीं माने जा सकते। इसी प्रकार ब्रह्महत्या करने वाले और समाज में धिक्कार के योग्य हों, उनको भी प्रयत्नपूर्वक त्याग देना चाहिए।

शुद्धाप्रारसपुष्टांगः सन्ध्योपासनवर्जितः।

महायज्ञविहीनक्षु ब्राह्मणः पंक्तिदूषकः॥ ४५॥

अधीतनाशनस्त्रैव स्नानदानविवर्जितः।

तामसो राजसश्चैव द्वाहणः पंक्तिदूषकः॥४६॥

जिस द्विज का शरीर शुद्ध का अन्न खाकर पुष्ट हुआ हो, जो सन्त्योपासनादि कर्म से रहित हो और जो पंच महायज्ञों को न करने वाला हो, वह पूरी पंक्ति को दूषित करने वाला होता है। जो अधीत विद्या का नाश करने वाला हो, जो स्नान तथा दान से रहित हो, जो तामस और राजस प्रकृति का हो, वह द्वाहण पूरी पंक्ति को जूषित करता है।

बहुनात्र किमुतेन विहितान् ये न कुर्वते।

निनिदितानाचरन्येते वर्ज्याः श्राद्धे प्रयत्नतः॥४७॥

इस विषय में बहुत क्या कहना? वस्तुतः जो शास्त्रविहित कर्म नहीं करता, और जो निनिदित कर्मों का आचरण करता है— इन सबको श्राद्ध कर्म में सावधानी से त्याग देना चाहिए।

इति श्रीकूर्मभुर्पुराणे उत्तरार्द्धे व्यासगीतामु श्राद्धकल्पे
एकविशोऽध्यायः॥२१॥

द्वाविशोऽध्यायः

(श्राद्धकल्प)

व्यास उत्थाय

गोमयेनोदकैर्भूमिं शोषयित्वा सपाहितः।

सत्रिपन्त्य द्विवान् सर्वान् साषुभिः सत्रिपन्त्येत्॥ १॥

व्यासजी बोले— गाय के गोबर और जल से भूमि को शुद्ध करने के अनन्तर सावधान और एकाग्र चित्त होकर सभी द्वाहणों को सङ्घाने द्वारा आमन्त्रित करना चाहिए।

श्रो भविष्यति मे श्राद्धं पूर्वेत्युरभिपूज्य च।

असम्भवे परेत्युर्वा यथोत्तैर्लक्षणैर्युतान्॥ २॥

तस्य ते पितरः श्रुत्वा श्राद्धकालमुपस्थितप्।

अन्योऽन्यं मनसा व्यात्वा संपत्तिं मनोजवाः॥ ३॥

“मेरे यहाँ कल श्राद्ध होगा” ऐसा कहकर श्राद्ध के पहले दिन द्वाहणों का अभिवादन करना चाहिए और यदि ऐसा सम्भव न हो तो पूर्वोक्त लक्षणों से युक्त द्वाहणों की दूसरे दिन पूजा करें। श्राद्ध करने वाले व्यक्ति के पितृगण श्राद्ध का समय आ गया है, ऐसा सोच कर, मन के समान तोत्र गति से परस्पर एक-दूसरे का मन से व्यान करके तत्काल ही श्राद्ध स्थल पर आ पहुँचते हैं।

तैर्द्वाहणौः सहाश्नन्ति पितरो हन्तरिक्षगाः।

वायुभूतासु तिष्ठन्ति भुक्त्वा यान्ति परां गतिम्॥४॥

इसके बाद अन्तरिक्ष में रहने वाले वे पितर वायुस्वरूप होकर वहाँ उपस्थित रहते हैं और उन आमन्त्रित द्वाहणों के साथ भोजन करते हैं और भोजनोपरान्त वे परमश्रेष्ठ गति को प्राप्त करते हैं।

आमन्त्रिताङ्गु ते विश्राः श्राद्धकाल उपस्थितो।

वसेषुर्निर्यताः सर्वे द्वाहाचर्यपरायणाः॥ ५॥

उसी प्रकार आमन्त्रित वे द्वाहण भी श्राद्ध का समय उपस्थित होने पर नियमपूर्वक तथा द्वाहाचर्यपरायण होकर वहाँ आ कर रहे।

अकोषनोऽत्यरोऽपतः सत्यवादी सपाहितः।

भारं मैथुनप्रवानं श्राद्धकृद्वर्जयेद्वृक्षम्॥ ६॥

उस समय श्राद्ध करने वाले को ऋधरहित, एकाग्राचित, और सत्यवादी होना चाहिए तथा भार उठाना, मैथुन करना और मार्ग में जाना (यात्रा करना) भी छोड़ देना चाहिए।

आमन्त्रितो द्वाहणो वै योऽन्यस्य कुरुते क्षणम्।

स याति नरकं धोरं सूकरत्वं प्रयाति च॥ ७॥

जो द्वाहण श्राद्ध में आमन्त्रित हो, वह यदि उस समय किसी अन्य को अपना समय देता है अथवा दूसरे के लिए कार्य करता है, तो वह धोर नरक में गिरता है और शूकर को योनि को प्राप्त होता है।

आमन्यवित्वा यो शोहादन्यं चामन्येद्विद्वाः।

स तस्मादधिकः पापी विष्णाकीटोऽभिजापते॥ ८॥

जो व्यक्ति एक द्वाहण को निमन्त्रित करने के पश्चात् योहवश किसी अन्य को आमन्त्रित करता है, उससे अधिक दूसरा कोई भी पापी नहीं होता। ऐसा व्यक्ति मरणोपरान्त विष्णा का कोङ्का होता है।

श्राद्धे नियन्त्रितो विश्रो मैथुनं योऽविगच्छति।

द्वाहात्यापवापोति तिर्यग्योनौ विदीयते॥ ९॥

जो द्वाहण श्राद्ध में आमन्त्रित होने के बाद मैथुन कार्य करता है वह द्वाहात्यापवापोति के पाप का भागी बनता है और पथों को जाति में जन्म लेता है।

नियन्त्रितस्तु यो विश्रो हृष्वानं याति दुर्मतिः।

भवति पितरस्तस्य तन्मासं पापधोजनाः॥ १०॥

नियन्त्रितस्तु यः श्राद्धे कुर्याद्वै कलहं द्विजः।

भवति पितरस्तस्य तन्मासं मलधोजनाः॥ ११॥

जो ब्राह्मण श्राद्ध में निर्मन्ति है, फिर भी दुर्बुद्धि के कारण यात्रा करने चला जाता है, तो उसके पितृगण एक मास तक भूल खाने वाले होते हैं। श्राद्ध में निर्मन्ति ब्राह्मण किसी से झगड़ा करता है उसके पितृ भल खाने वाले होते हैं।

तस्मान्निर्मन्तिः श्राद्धे निवातात्मा भवेदित्तजः।

अक्रोधनः शौचपरः कर्ता चैव जितेद्विषयः॥ १२॥

निर्मन्ति ब्राह्मण को सावधानचित्, क्रोधरहित और पवित्रता से युक्त होना चाहिए। उसे सदा जितेन्द्रिय रह कर सभी आवश्यकों का पालन करना चाहिए।

श्वेष्यते दक्षिणां गत्वा दिशं दर्पणन्ममाहितः।

समूलानाहरेहारि दक्षिणाग्रान् सुनिर्मलान्॥ १३॥

श्राद्ध करने के लिए दूसरा दिन आ जाने पर श्राद्धकर्ता को दक्षिण दिशा में जाना चाहिए और सावधानीपूर्वक वहाँ से मूलसहित दक्षिणाग्र भाग वाले अतिशय निर्मल कुश और जल लाना चाहिए।

दक्षिणाग्रवर्णं स्तिष्ठ विभक्तं शुभपलक्षणम्।

शुचि देशं विविक्तज्ञु गोपयेनोपलेपयेत्॥ १४॥

फिर घर आकर दक्षिण दिशा में तैयार किया हुआ स्तिष्ठ, ताजा, विभाजित, एवं शुभ लक्षणों से युक्त एक तरफ अलग पवित्र भूमि को गोबर से लीपना चाहिए।

नदीतीरेषु तीर्थेषु स्वभूमौ चैव नाम्युषु।

विविक्तेषु च तुष्ट्यन्ति दत्तेन पितृः सदा॥ १५॥

नदी तट, तीर्थ स्थान, अपनी भूमि, पर्वतों के पठार और निर्जन स्थान पर श्राद्ध करने से पितृगण सर्वकाल में प्रसन्न रहते हैं।

पारकये भूमिभागे तु पितृणां नैव निवेष्ट।

स्वापिपितृद्विहन्ते पोहाद्यत् क्रियते नरैः॥ १६॥

दूसरों के भूभाग में पितृों के लिए श्राद्ध अपर्ण नहीं करना चाहिए। परायी भूमि पर मोहनश कुछ भी श्राद्ध आदि पितृकर्म किया जाता है, तो कदाचित् उस भूमि का स्वामी उसे नह रख दे अथवा उसमें कोई विष्ण उपस्थित कर सकता है।

अट्ट्व्यः पर्वताः पुण्यास्तीर्थान्यायतनानि च।

सर्वाण्यस्वामिकान्याहुर्न ह्लेतेषु परिग्रहः॥ १७॥

किसी भी जंगल, पर्वत, पवित्र तीर्थ तथा देवमन्दिरों में जो किसी के स्वामित्व में नहीं होते, इसलिए श्राद्ध आदि करने के लिए ये स्थान स्वीकार करने योग्य होते हैं।

तिलान्नविकिरेतत्र सर्वतो बन्धयेदजप्।

असुरोपहते श्राद्धं तिलैः शुद्ध्यत्यजेन तु॥ १८॥

इस प्रकार जो श्राद्ध के उपयुक्त भूमि हो, वहाँ गाय के गोबर से शुद्धि करके चारों ओर तिलों को बिखेर देना चाहिए और बकरा बाँध देना चाहिए। क्योंकि जो प्रदेश असुरों द्वारा शुद्ध किये गये हों, वे तिल फैलाने और बकरा बाँधने से शुद्ध हो जाते हैं।

ततोऽन्नं वहुसंस्कारं नैकव्यञ्जनपद्धयगम्।

चोर्यं पेत्रं संसृतं च यथाशक्ति प्रकल्पयेत्॥ १९॥

इसके बाद अनेक प्रकार से शुद्ध किए हुए तथा अनेक प्रकार के आङ्गुलों से युक्त चूसने और पाने योग्य पदार्थों का अपनी सामर्थ्य के अनुसार संग्रह करना चाहिए।

ततो निवृते मष्याद्वे लुमरोमनखाद्विजान्।

अवगम्य यद्यामार्गं प्रयच्छेद्वत्यावनम्॥ २०॥

आसव्यपिति संजल्पनामीरने पृथक् पृथक्।

तैलपद्मज्ञनं स्नानं स्नानीयङ्गं पृथविद्यम्।

पात्रिरोदुष्वरै हृद्याद्वैषुदेवायपूर्वकम्॥ २१॥

मध्याह समय बीत जाने पर जिन ब्राह्मणों ने शौर-कर्म कर लिया हो तथा नख आदि काट लिए हों, उन्हें नियम-पूर्वक दातुन आदि देना चाहिए। फिर उन्हें ‘बैठिये’ ऐसा कहकर अन्त में सबसे अलग-अलग आशीर्वाद ले। इसके बाद तेल की मालिश, स्नान आदि के लिए विभिन्न प्रकार के सुगन्धित चूर्ण, वस्त्र और स्नानोय जल, गूलर के पात्र में रखकर वैश्वदेव मन्त्र का पाठ करके ब्राह्मणों को देना चाहिए।

ततः स्नानान्निवृत्तेभ्यः प्रत्युत्थाय कृताङ्गालिः।

पाण्डुखान्यासनान्देषां त्रिदर्भोपहतानि च॥ २२॥

इसके बाद स्नान से निवृत हो जाने पर उन ब्राह्मणों के सामने दोनों हाथ जोड़कर श्राद्धकर्ता क्रमशः पाद प्रक्षालन के लिए जल और आचमन के लिए भी जल आपूर्त करे।

ये चात्र विश्वदेवाना ह्रिजाः पूर्वं नियन्तिताः।

प्राद्युम्खान्यासनान्देषां त्रिदर्भोपहतानि च॥ २३॥

जो ब्राह्मण विश्वदेव के लिए प्रतिनिधिरूप में आमन्त्रित किये जाते हैं उनके आसन पूर्व दिशा की ओर मुख करके बिलाने चाहिए और उन पर तीन कुशाएँ रखनी चाहिए।

1. उदुष्वरो जनुफलो यजाङ्गो हेमदुष्वरः। (भा.प्र.नि.)

Fig tree.

दक्षिणामुखमुक्तानि पितृणामासनानि च।
दक्षिणाग्रेषु दर्भेषु प्रोक्षितानि तिलोदकैः॥ २४॥
तेषुपवेशयेदेतानासनं संस्मृशन्नपि।
आसन्विति समुल्पश्चासीरसे पृथक् पृथक्॥ २५॥

जो आसन दक्षिणाभिमुख करके पितरों के लिए स्थापित किये गये हों, उन दक्षिणाग्र दर्भों पर तिल युक्त जल से प्रोक्षण करना चाहिए, फिर उन पर ब्राह्मणों को बैठाना चाहिए। उन आसनों को उस समय अपने हाथों से स्वर्ण करते रहना चाहिए और 'इस पर बैठिए' ऐसा कहे जाने पर उन ब्राह्मणों को भी अलग-अलग आसनों पर बैठ जाना चाहिए।

द्वौ दैवे प्राइमुखौ पित्रे ब्रह्मोदाह्यमुखास्तथा।
एकेकं तत्र देवनु पितृमातामहेष्वपि॥ २६॥
सक्षियां देशकालौ च शौचं ब्राह्मणसम्पदम्।
पंचैतान्वित्सरो हन्ति तस्माप्रेहेत विस्तरम्॥ २७॥
अपि वा भोजयेदेकं ब्राह्मणं वेदपारगम्।
श्रुतशीलादिसम्प्राप्तमलक्षणविवर्जितम्॥ २८॥

उस समय देवकर्म में वहाँ दो ब्राह्मणों को पूर्व दिशा की ओर मुख करके और पितृकर्म में तीन ब्राह्मणों को उत्तर दिशा की ओर बैठाना चाहिए, क्योंकि वहाँ देवकर्म और पितृमह, मातामह के उद्देश्य से भी एक-एक ही कर्म करना होता है। उसमें भी यहो कारण होता है कि प्रत्येक श्राद्ध में सत्कार, देशकाल, ब्राह्मण्यन्तर पवित्रता और ब्राह्मणों की उपस्थिति— ये सब अधिक मात्रा में हो तो वह ऐसा विस्तार श्राद्धक्रिया के लिए नाश का कारण होता है। इसलिए विस्तार की इच्छा नहीं करनी चाहिए, अथवा श्राद्ध में वेदज्ञ एक ही ब्राह्मण को भोजन कराना चाहिए, जो शास्त्रज्ञानी शोल, उत्तम स्वभाव वाला, कुलक्षण से रहित और सदाचार से युक्त हो।

उद्दृत्य पात्रे चात्रं तत्सर्वस्माप्रकृतात्तः।
देवतायतने वासो निवैद्यान्यत्ववर्तयेत्॥ २९॥
प्राप्येदत्रं तदमौ तु दशादृ ब्रह्मचरिणे।
तस्यादेकपरिष श्रेष्ठं विश्वासे भोजयेदित्यम्॥ ३०॥
भिस्युको ब्रह्मचारी वा भोजनर्थमुपस्थितः।
उपविष्टु यः श्राद्धे कार्यं तपयि भोजयेत्॥ ३१॥

श्राद्ध के समय जितने प्रकार के व्यञ्जन तैयार हों, उनमें से थोड़ा-योड़ा अब एक पात्र में निकाल कर परोसकर उस नैवेद्य का थाल किसी देवमन्दिर में सर्वप्रथम भेजना चाहिए।

उसके बाद ही शेष अब का उपयोग दूसरे काम में करना चाहिए। (जैसा कि) उस शेष अब से थोड़ा अग्नि को, फिर किसी ब्रह्मचारी को, फिर उसमें से शेष अब में से किसी श्रेष्ठ विद्वान् ब्राह्मण को, भोजन कराना चाहिए। उस श्राद्ध के समय यदि कोई भिखारी अथवा संन्यासी या ब्रह्मचारी भोजन हेतु आ जाय और उस श्राद्ध में भोजन की इच्छा से वहाँ बैठ हो, तो उसे भी इच्छानुसार अवश्य ही भोजन कराना चाहिए।

अतिथिर्यस्य नाशनाति न तच्छ्राद्धं प्रशस्यते।
तस्मात् प्रयत्नाच्छ्राद्धेषु पूज्या हातिथ्यो द्विजैः॥ ३२॥
आकिष्यरहिते श्राद्धे भुजते ये द्विजात्मयः।
काकयोनिं द्वजन्त्येते दाता वैव न संशयः॥ ३३॥

जिस श्राद्ध में किसी अतिथि के आ जाने पर उसे भोजन नहीं कराया जाता है तो वह श्राद्ध प्रशंसा योग्य नहीं होता। इस कारण द्विजों को श्राद्ध में प्रयत्नपूर्वक अतिथियों को भोजन और सत्कार देना चाहिए। यदि अतिथिसत्कार से रहित जिस श्राद्धकर्म में ब्राह्मणादि लोग भोजन करते हैं, वे काक-योनि में जन्म लेते हैं और भोजन देने वाला भी उस योनि को प्राप्त करता है, इसमें संशय नहीं है।

हीनाङ्गः पतितः कुष्ठी ब्रणयुक्तस्तु नास्तिकः।
कुक्कुटः शूकरस्थानौ कर्ज्याः श्राद्धेषु दूरतः॥ ३४॥
बीभत्सुपशुशिं ननं यत्ते धूत्ते रजस्वलाम्।
नीलकाषाययसनपाण्डाङ्गु विवर्जयेत्॥ ३५॥

यदि कोई अतिथि अङ्गहीन, पतित, कुष्ठरोगी, शब्दयुक्त, चाण्डाल या नास्तिक हो अथवा वहाँ कुक्कुट, शूकर और कुत्ता आ जाए, तो उस श्राद्धकर्म में उसे दूर से ही भगा देना चाहिए। उसी प्रकार बीभत्स, अपवित्र, नग्न, पागल, धूत, रजस्वला धूती, नीला या काषाय ब्रह्मचारी कोई पाखण्डी आ पहुँचे, तो श्राद्ध के समय उसका त्याग कर देना चाहिए।

यत्त्र क्षियते कर्म पैतृकं ब्राह्मणान्वति।
तत्सर्वमेव कर्त्तव्यं वैश्वदेवत्यपूर्वकम्॥ ३६॥
यथोपविष्टान् सर्वासानलङ्घार्द्विष्पूषणः।
स्वग्रामपिः शिरोवैष्टीर्षपवासोऽनुलेपनैः॥ ३७॥
ततस्त्वावावाहयेदेवान् ब्राह्मणानामनुज्ञया।
उद्दिष्टु यथान्यायं विश्वदेवास इत्य॒चा॥ ३८॥

श्राद्ध में जो कोई कर्म ब्राह्मणों को लक्ष्य करके कराये जाते हैं वे सब वैश्वदेव की क्रिया के अनुसार ही होने चाहिए। श्राद्ध कर्म हेतु जो ब्राह्मण वहाँ आकर बैठे हों उन

सबको आभूषणों से अलंकृत करना चाहिए। माला, यज्ञोपवीत, सुग्रन्थित द्रव्य, पण्डी आदि अर्पित करके उन्हें बख्त और चन्दनादि से अलंकृत करना चाहिए। इसके पश्चात् ब्राह्मणों से अनुमति लेकर उत्तर दिशा की ओर मुख करके देवों का भी आह्वान करना चाहिए। उस समय 'विश्वेदेवास' इस ऋचा का उधारण करके यथायोग्य देवों का आह्वान करना चाहिए।

द्वे पवित्रे गृहीत्वास्य धाजने क्षालिते पुनः।
शशो देवी जलं क्षिप्त्वा यवोऽसीति यवांस्तथा॥ ३९॥
या दिव्या इति मन्त्रेण हस्ते त्वर्थं विनिष्पेत्।
प्रदद्यादग्न्यमाल्यानि बूपादीनि च शक्तिः॥ ४०॥

दो पवित्रों धारण कर 'शशो देवीः' इस मन्त्र का उधारण करके जल छिड़कना चाहिए और 'यवोऽसीति' यह मन्त्र पढ़कर पात्र में जौ डालने चाहिए। उसके बाद 'या दिव्या' इस मन्त्र से हाथ में अर्घ्य लेकर अपने सामर्थ्यानुसार चन्दन, पुष्प तथा धूप आदि को अर्पित करना चाहिए।

अपसर्व्यं ततः कूत्वा पितॄणां दक्षिणामुखः।
आवाहनं ततः कुर्यादुशनस्वेत्युच्चा दुष्टः॥ ४१॥
आवाहा तदनुज्ञातो जपेदायनुनस्ततः।
शशो देव्योदकं पात्रे तिलोऽसीति तिलांस्तथा॥ ४२॥

तदनन्तर आदृ करने वाला विद्वान् दक्षिणाभिमुख होकर यज्ञोपवीत को दाहिनी ओर धारण करके 'उशनतस्त्वा' इस ऋचा से पितरों का आह्वान करे। आवाहन के अनन्तर ब्राह्मणों की अनुमति से 'आयन्तु नः' मन्त्र का जप करना चाहिए तथा 'शशोदेवी' मन्त्र द्वारा जल और 'तिलोऽसीति' मन्त्र द्वारा तिलों को अर्घ्यपात्र में डालना चाहिए।

क्षिप्त्वा चार्थं यवापूर्वं दत्त्वा हस्तेषु वा पुनः।
संख्यांशु ततः सर्वान् पात्रे कुर्यात्सप्तमाहितः॥ ४३॥
पितॄव्यः स्थानपेतत्वं न्युञ्जपात्रं निधापयेत्।
अन्नौ करिव्यज्ञादाय पृच्छेदत्रै षट्प्लुतम्।
कुरुव्येत्यन्यनुज्ञातो जुहुयादुपवीतिवित्॥ ४४॥

पूर्वोक्त विधि के अनुसार अर्घ्य देकर फिर (पितॄस्वरूप ब्राह्मणों के) हाथ में उसे अर्पित करना चाहिए। तदनन्तर एकाग्रचित्त होकर पात्र में सभी संस्त्रियों को स्थापित करे। तत्पश्चात् 'पितॄभ्यः स्थानमसि' यह मन्त्र पढ़कर अर्घ्यपात्र को उलटा कर दे। फिर 'अन्नौ करिव्ये' ऐसा कहकर घी-मिश्रित अत्र को ग्रहण कर ब्राह्मणों से पूछे। तब ब्राह्मणों

द्वारा 'कुरुव्य' (होम करो) ऐसा कहने पर यज्ञोपवीत धारण करके होम प्रारम्भ करे।

यज्ञोपवीतिना होमः कर्तव्यः कुशपाणिना।
प्राचीनावीतिना पितॄं वैश्वदेवं तु होमवित्॥ ४५॥

सदैव यज्ञोपवीत धारण करके और हाथ में कुशा लेकर हो होम करना चाहिए। होम की विधि को जानने वाला पितरों और वैश्वदेवों के निमित्त होम करते समय पूर्व की तरह अपसर्व्य होकर ही हवन करे।

दक्षिणं पातयेत्तजानुं देवान् परिचरन्मदा।
पितॄणां परिचर्यामु पातयेदितरं तथा॥ ४६॥
सोमाय वै पितॄमते स्वधा नम इति बुवन्।
अग्नये कव्यवाहाय स्वदेति जुहुयात्ततः॥ ४७॥

देवताओं की परिचर्या करते हुए सदा दाहिने घुटने को भूमि पर गिरा ले और पितरों के प्रति सेवा अर्पित करते समय वायं घुटने को भूमि पर गिरा ले। तब होमक्रिया प्रारम्भ करते समय 'सोमाय पितॄमते स्वधा' और 'अग्नये कव्यवाहाय स्वधा' ऐसा उधारण करते हुए पितरों के निमित्त होम करना चाहिए।

अग्न्यपावे तु विप्रस्य पाणादेवोपपादयेत्।
महादेवान्तिके वायं गोष्ठे वा सुसमाहितः॥ ४८॥

यदि उस स्थान पर अग्नि का अभाव हो तो ब्राह्मण के हाथ में होमद्रव्य अर्पित करे अथवा सुसमाहित होकर शिवलिङ्ग के समीप या गोष्ठ (गायों के रहने के स्थान) में वह होमद्रव्य अर्पित करना चाहिए।

ततस्तैरप्यनुज्ञातो गत्वा वे दक्षिणां दिशप्।
गोपयेनोपलिष्याद्य स्थानं कुर्यात्सैकतप्॥ ४९॥
मण्डलं चतुरस्त्रं वा दक्षिणाप्रवणं शुभम्।
त्रिरूपलिखेतस्य मध्यं दर्भेणीकेन चैव हि॥ ५०॥

इसके पश्चात् पितॄस्वरूप ब्राह्मण से आज्ञा प्राप्त कर दक्षिण दिश की ओर जाकर किसी (पवित्र) स्थान को गोबर से लौप कर, उस पर नदी की रेत डालनी चाहिए। वहाँ दक्षिण को तरफ चार कोण वाले मण्डल का निर्माण करना चाहिए और उस मण्डल के मध्य एक कुशा लेकर तीन बार रेखा खिचनी चाहिए।

ततः संस्तीर्यं तस्थाने दर्पन्वै दक्षिणाप्रगान्।
त्रीन् पिण्डात्रिविषेत् तत्र हविः सेषात्समाहितः॥ ५१॥
उत्त्वं पिण्डांसु तद्दुस्तं निष्पृज्याल्लेपभोजनान्।

तेषु दर्शक्याच्य त्रिगच्य श्वनैरसून्।
तदन्नं तु नपस्कुर्यात्पितृनेव च पनवित्॥ ५२॥

उडके निनयेच्छेषं ज्ञैः पिण्डानिके पुणः।
अवजिष्ठेय तन् पिण्डान् यथा न्युच्या सपाहितः॥ ५३॥

उस स्थान पर दक्षिणाय (दाहिनी ओर अर्णीदार) कुशों को विछाकर उसके ऊपर अवशिष्ट हवि से तीन पिण्ड बनाकर समाहितचित होकर स्थापित करना चाहिए। पिण्डान के पश्चात् उस पिण्डयुक्त हाथ को लेपभोजी पितरों को उद्दिष्ट करके कुशाओं से पौँछकर, तीन बार आचमन करके धीरे-धीरे सास छोड़ते हुए नन्दवेता पुरुष को उस अन्न को तथा पितरों को नमस्कार करना चाहिए। इसके पश्चात् जो जल शेष रहा हो, उसे पिण्डों के समीप धीरे-धीरे गिराना चाहिए। फिर एकाग्राचित होकर स्थापित पिण्डों को ऊमशः सूंघना चाहिए।

अथ पिण्डाच शिष्टाच्च विविवद्योजयेदिहजान्।
मांसान् पूषांशु विविद्याच्छाद्यकल्पांसु शोभनान्॥ ५४॥

इसके अनन्तर पिण्डों से अवशिष्ट अन्न को तथा मांस, मालपुए, तथा विविध प्रकार के श्रादोपयोगी अच्छे व्यंजनों को विधिवत् ब्राह्मणों को खिलाना चाहिए।

ततोऽप्रमुत्सुजेन्द्रुकेष्वग्रतो विकिरन्मुवि।
पृष्ठा तदप्रमित्येव तृप्तानाचापयेत्ततः॥ ५५॥

तत्पश्चात् ब्राह्मणों के भोजन कर लेने पर उनके आगे भूमि पर उनसे पूछकर अवशिष्ट अन्न को बिखेर दें। फिर उस हुए उन ब्राह्मणों को आचमनादि करायें।

आचानाननुजानीयादभितो रम्यतापिति।
स्वयासित्वति च ते त्रयुर्द्वाहणास्तदनन्तरम्॥ ५६॥

आचमन करने के अनन्तर उनसे विश्राम करने के लिए कहें। उसके उत्तर में ब्राह्मणों को भी 'स्वधास्तु' ऐसा कहना चाहिए।

ततो भूत्तवता तेषापत्रशेषं निवेदयेत्।
यथा त्रयुस्तथा कुर्यादनुजातसु तैर्हिजैः॥ ५७॥

ब्राह्मणों द्वारा भोजन कर लेने पर जो अन्न शेष रह गया हो, उसे सम्पूर्णरूप से उसे निवेदित कर देना चाहिए। फिर वे ब्राह्मण जैसा कहें उनकी आज्ञानुसार वैसा ही करें।

पित्रे स्वदितपित्येव वाच्यं गोष्ठेषु सुश्रितम्।
सम्प्रपित्यप्युदये देवे सेवितपित्यपि॥ ५८॥

पितरों को उद्दिष्ट करके श्रादकर्ता 'स्वदितम्' बोले, सामूहिक श्राद के समय 'सुश्रितम्' कहे, मंगल-कर्म में 'सम्प्रपतम्' और देवकर्म में 'सेवितम्' कहे।

विष्णुज्य द्वाहणान् तात्वै पितृपूर्वन् वाच्यतः।

दक्षिणादिशमाकांश्चन्याचेतेमान्वान् पितृन्॥ ५९॥

पहले पितरों का विसर्जन करके पश्चात् ब्राह्मणों को विदा करे। फिर वाणी को संयमित करके दक्षिण दिशा की ओर पितरों की आकांक्षा करते हुए याचना करें।

दातारो नोऽभिवर्द्धनां वेदाः सन्ततिरेव च।

श्रद्धा च नो मा विगमद्वृद्येयञ्च नोऽस्तित्वति॥ ६०॥

हमारे दाताओं बेटों और सन्तान की अभिवृद्धि हो। हमारे भौतर से श्रद्धा न जाये। हमारे पास बहुत देय सामग्री हो।

पिण्डांसुगोऽजविप्रेष्यो ददादमौ जलेऽपि च।

मध्यमनु ततः पिण्डमदात्पत्नी सुतार्थिनी॥ ६१॥

दान किये हुए पिण्डों बो गाय, बकरी, ब्राह्मण को दे दें। अथवा अग्नि या जल में डाल दे। पुत्र चाहने वाली पत्नी को मध्यम पिण्ड स्वयं ग्रहण करना चाहिए।

प्रश्नाल्य हस्तावाच्य ज्ञाति शेषेण तोषयेत्।

सूपशाकफलानीक्षून् पयो दधि धृतं मधु॥ ६२॥

फिर दोनों हाथ धोकर आचमन करे और बचे हुए अन से चन्द्रुओं को तृप्त करे। सूप, साग, फल, ईख, दूध, धी और मधु ब्राह्मणों को खिलाये।

अग्रज्ञैव यक्षाकामं विविधं भोज्यपेयकम्।

यद्यदिष्टं हृजेन्नाणां तत्सर्वं विनिवेदयेत्॥ ६३॥

ब्राह्मणों को यथेष्ट अन्न और विविध प्रकार के भोज्य और पेय पदार्थ देने चाहिए। इसके अतिरिक्त उन्हें जो इष्ट हो, वह सब कुछ देना चाहिए।

धान्यांस्तिलांशु विकियान् शर्करा विविधसत्या।

उष्णापत्रं हृजातिष्यो दातव्यं श्रेय इच्छता।

अन्यत्र फलमूलेष्यो पानकेभ्यस्तवेव च॥ ६४॥

विविध प्रकार के धान्य, तिल और विविध मिष्ठान (शर्करा) देने चाहिए और कल्याण चाहते हुए ब्राह्मणों को गरम भोजन कराना चाहिए, परन्तु अन्य फल-मूल और पेय पदार्थ शीतल ही देने चाहिए।

न धूमी पातयेज्जानुं न कुप्यज्ञानुत वदेत्।

मा पादेन स्फुशेदन्नं न चैवपवद्यनयेत्॥ ६५॥

उस समय बुटनों को भूमि पर न टिकाये, क्रोध न करे और असत्य भी नहीं बोलना चाहिए, पैरों से अन्न को छूना नहीं चाहिए और पैरों को हिलाना नहीं चाहिए।

क्रोधेनैव च यद्युपुर्कं यद्युपुर्कं त्वयश्चाविष्णि।
यानुषानां विलुप्पन्ति जल्पता चोपयादितम्॥ ६६॥

क्रोधपूर्वक जो खाया जाता है, या अविधिपूर्वक-अत्यन्त व्यस्तता के साथ और बातें करते हुए जो खाया जाता है, उसे राक्षस हर लेते हैं।

स्विन्नगात्रो न तिष्ठेत सन्निधौ च द्विजोत्तमाः।
न च पश्यते काकादीन् पश्चिमः प्रतिलोमगान्।
तदूपाः पितरसत्र समायानि बुधुश्चवः॥ ६७॥

शरीर पसीने से युक्त हो, तो ब्राह्मणों के समीप खड़ा नहीं होना चाहिए और श्राद्ध के समय आने वाले कौए-बाज आदि पश्चिमों की ओर न तो देखना चाहिए और न ही उन्हें भगा देना चाहिए, क्योंकि भोजन की इच्छा से पितर उसी रूप में वहाँ आते हैं।

न दद्यात्तत्र हस्तेन प्रत्यक्षं लवणं तथा।
न चायसेन पात्रेण न चैव अद्युया पुनः॥ ६८॥

सीधे ही हाथ में लेकर नमक को नहीं देना चाहिए। उसे लोहे के पात्र में रखकर भी नहीं परोसना चाहिए और बिना श्रद्धा के भी किसी को नहीं देना चाहिए।

काञ्छनेन तु पात्रेण राजतोदुम्बरेण वा।
दत्तपक्षयतो याति खड्डेन च विशेषतः॥ ६९॥

यदि वह सोने-चाँदी और उदुम्बर (गूलर) से निर्मित पात्र में दिया जाय तो अक्षय फल देने वाला होता है और यदि उसे खड्ड के ऊपर रखकर दिया जाय, तो विशेषरूप से अक्षय फल देता है।

पात्रे तु मृणये यो वै श्राद्धे वै भोजयेद्विजान्।
स याति नरकं घोरं भोक्ता चैव पुरोषसः॥ ७०॥

श्राद्ध के समय जो कोई ब्राह्मणों को मिट्टी के पात्र में भोजन करता है, तो दाता, पुरोहित और भोजन करने वाला—ये तीनों ओर नरक में जाते हैं।

न पंक्त्यां विषमं दद्यात्र याचेत न दाष्येत्।
याचिता दापिता दाता नरकान्याति भीषणान्॥ ७१॥

एक पंक्ति में बैठकर भोजन करने वाले ब्राह्मणों को भोजन परोसने में भेदभाव नहीं करना चाहिए, किसी को

मांगना नहीं चाहिए तथा किसी को भोजन दिलाना भी नहीं चाहिए। क्यों कि मांगने वाला, देने वाला और दिलाने वाला—ये तीनों ओर नरक में जाते हैं।

भुजीरप्रतः श्रेष्ठं न ब्रुयः प्राकृतान् गुणान्।
तावद्वि पितरोऽप्ननि यावत्रोक्ता हविर्गुणाः॥ ७२॥

सभी शिष्टजनों को भोज्य पदार्थों के प्राकृत गुणों का गान किए बिना मौन होकर भोजन करना चाहिए, क्योंकि पितर तभी तक भोजन करते हैं, जब तक हवि का गुणगान नहीं किया जाता।

नाप्रासनोपविष्टु भुजीत प्रवर्णं द्विजः।
बहूनो पश्यतो सोऽन्यः पंक्त्या हरति किल्विषम्॥ ७३॥

जो कोई ब्राह्मण पहले से ही आसन पर उपविष्ट होकर सबसे पहले भोजन ग्राम्य कर लेता है, वह अकेला बहुत लोगों के देखते हुए उस पंक्ति के सभी लोगों के पापों को ग्रहण कर लेता है।

न किञ्चिद्बृजयेच्छाद्वे नियुक्तसु द्विजोत्तमः।
न मांसस्य निषेधे न चान्यस्याद्वपीक्षयेत्॥ ७४॥

श्राद्धकर्म में नियुक्त ब्राह्मण को कुछ भी छोड़ना नहीं चाहिए। मांस का निषेध करके दूसरे के अन्न को भी नहीं दिखाना चाहिए।

यो नाइनाति द्विजो मांसं नियुक्तः पितृकर्मणि।
स प्रेत्य पशुतां याति सम्बवानेकविशतिम्॥ ७५॥

जो ब्राह्मण (मांसाहारी हो, और) श्राद्धकर्म में नियुक्त होकर मांस भक्षण नहीं खाता, वह इक्षीस जन्मों तक पशुओं की योनि में जन्म लेता है।

स्वाध्यायाऽङ्गावयेदेषां धर्मशास्त्राणि चैव हि।
इतिहासपुराणानि श्राद्धकल्पांष्टु शोभनान्॥ ७६॥

(श्राद्धकर्म में नियुक्त बिहान्) ब्राह्मणों को धर्मशास्त्र, इतिहास, पुराण, और उत्तम श्राद्धकल्प ग्रन्थों को स्वाध्याय हेतु सुनाना चाहिए।

ततोऽप्नमुत्सृजेद्वेत्ता साक्षतो विकिरन्मृत्यि।
पृष्ठा स्वदितमित्येवं तसानाचापयेत्ततः॥ ७७॥

तत्पश्चात्—अन्न उत्सर्ग कर भोजन किए हुए ब्राह्मणों के सामने भूमि पर उस अन्न को फैलाने के बाद ‘स्वदित’ (क्या आपने भोजन अच्छी प्रकार किया?) यह बाक्य पूछकर तृतीय ब्राह्मणों को आच्चन कराना चाहिए।

आचानाननुजानीयादभितो रम्यतापिति।
स्वधास्त्विति च तं त्रृपुद्वाहाणास्तदननरम्॥७८॥

आचमन के पश्चात् शुद्ध हुए ब्राह्मणों को 'अभिरम्यताम् अर्थात् अब आप जा सकते हैं' ऐसा कहकर अनुमति मिलने पर ब्राह्मणण श्राद्धकर्ता यजमान को 'स्वधास्तु अर्थात् तुम्हारे पितर तृप्त हों' ऐसा कहें।

ततो भुक्तवां तेषामप्नशेषं निवेदयेत्।
यदा दृश्यस्था कुर्यादनुजातस्तु तैर्द्विजैः॥७९॥

इसके बाद भोजन कर लेने पर वहां शेष अन्न को ब्राह्मणों को निवेदित करें, फिर उनकी आज्ञा से वे जो कुछ करने के लिए कहें, वैसी व्यवस्था करनी चाहिए।

पित्रे स्वदित इत्येव याक्यं गोष्ठेषु सूक्ष्मितम्।
संपद्गमित्वाप्युदये दैवे रोचत इत्यपि॥८०॥

इस प्रकार यजमान को पितृश्राद्ध में 'स्वदितं' (ठीक से भोजन किया है?), गोष्ठ में जाकर 'सूक्ष्मितम्' (अच्छी व्यवस्था है?) आध्युदयिक कर्म में 'सम्पद्गम्' (अच्छी प्रकार प्रकार पूर्ण हुआ?) और देवश्राद्ध में 'रोचते' (अच्छी प्रकार पसंद आया?) ऐसा कहना चाहिए।

विशुद्ध ब्राह्मणान् सुत्वा पितृपूर्वं तु वास्थतः।
दक्षिणां दिशमाकांक्षन्याचेतेषान् वराण्यितन्॥८१॥

दातारो नेपिवद्वितो वेदाः संततिरेव च।
श्रद्धा च नो माव्यगमद्वुदेयं च नोस्त्विति॥८२॥

(भोजनानन्तर) मौन रहकर पितृपूर्वक ब्राह्मणों को सुनि करके उन्हें विदाई देने बाद दक्षिण दिश की आकांक्षा करते हुए पितरों को सम्बोधित कर यह वह माँगना चाहिए— हमारे सभी दाता, वेद और सन्तान की अभिवृद्धि हो, हमारी श्रद्धा चली न जाय, हमारे पास दान देने के लिए प्रभृत सम्पत्ति हो।

पिङांसु गोजिव्रेष्यो दण्डादग्नौ जलेऽपि वा।
प्रथमं तु ततः पिंडमण्डात्पली सुतार्थिनी॥८३॥

श्राद्ध से बचे हुए पिण्डों को गाय, बकरी तथा ब्राह्मण को देना चाहिए अथवा जल में या अग्नि में डालना चाहिए। परन्तु एक मध्यम पिण्ड पुत्र की कामना करने वाली पत्नी को ही सेवन करना चाहिए।

प्रश्नाल्प्य हस्तावाचम्य ज्ञातोन् शेषेण भोजयेत्।
ज्ञातिष्ठपि चतुर्थेषु स्वान् भृत्यान् भोजयेत्ततः॥८४॥

तत्पश्चात् दोनों हाथ धोकर, आचमन करके शेष भोजन-सामग्री से अपने सम्बन्धियों को खिलाकर संतुष्ट करना

चाहिए। सगे-संबन्धियों में भी चौथी पीढ़ि तक सब को संतुष्ट करे और अन्त में अपने सेवकों को भोजन कराना चाहिए।

एषात्स्वयं गुणात् शेषमन्त्रं समाचरेत्।

नोद्वासयेत् तदुच्छिष्टं यावत्रास्तङ्गतो रविः॥८५॥

इन सब के बाद वचा हुआ अन्न पत्नी के साथ बैठकर स्वयं खाना चाहिए और जब तक सूर्यास्त न हो जाय तब तक जूटे अन्न को उठासित नहीं करना चाहिए।

ब्रह्मचारी भवेतान्तु दम्पती रखनीन्तु ताम्।

दन्वा श्राद्धं तथा भुक्त्वा सेवते यस्तु मैथुनम्॥८६॥

महारौत्तरामासाद्य कीटोर्योनि द्रव्येत्युनः॥८७॥

श्राद्ध की रात्रि में पति-पत्नी को ब्रह्मचारी रहना चाहिए। क्योंकि श्राद्ध करके तथा श्राद्ध का अन्न खाकर जो व्यक्ति मैथुन सेवन करता है, वह महारौत्तर नरक भोगकर पुनः कीटोर्योनि को ग्रास करता है।

शुचिरक्षेपनः शान्तः सत्यवादी समाहितः।

स्वाध्यायात् तथाव्यानं कर्ता भोक्ता च वज्ज्येत्॥८८॥

उस श्राद्धकर्ता को और श्राद्ध में भोजन करने वाले को पवित्र, क्रोधरहित, शान्त और सत्यवादी होना चाहिए तथा एकाग्राचित्त होकर स्वाध्याय और यात्रा का भी त्याग करना चाहिए।

श्राद्धं भुक्त्वा परश्राद्धे भुक्तते ये द्विजात्यः।

महापात्राकिमिषुल्वा यान्ति ते नरकान् बहून्॥८९॥

जो ब्राह्मण एक श्राद्ध में भोजन करने के बाद दूसरे के श्राद्ध में जाकर भोजन करते हैं, वे ब्राह्मण महापापी के तुल्य अनेक नरकों को ग्रास करते हैं।

एष वो विहितः सम्यक् श्राद्धकल्पः समाप्तः।

अनेन वद्धयेत्त्रित्यं ब्राह्मणोऽव्यसनान्वितः॥९०॥

इस प्रकार यह समस्त श्राद्धकल्प मैत्रि संक्षेप में बता दिया। इसके द्वारा ब्राह्मण व्यसनरहित होकर नित्य वृद्धि ग्रास करता है।

आपश्राद्धं यदा कुर्याद्विष्यः श्रद्धयान्वितः।

तेनान्नोकरणं कुर्यात्पिण्डांस्तेनैव निवेष्टत्॥९१॥

विधि-विधान को जानने वाला श्रद्धायुक्त होकर जब "आपश्राद्ध" करता है, उसे उसी प्रकार के आमान (कर्य अन्न) से अग्निहोम और पिण्डदान भी करना चाहिए।

योऽनेन विधिना श्राद्धं कुर्यादौ शान्तमानसः।
व्यपेतकल्पयो नित्यं यतीनां वर्तयेत्पदम्॥ १२॥

जो व्यक्ति शान्तमन से इसी विधि के अनुसार श्राद्ध करता है, वह भी समस्त पापों से रहित होकर सन्दासियों द्वारा प्राप्त करने योग्य, नित्य पद को प्राप्त कर लेता है।

तस्मात्सर्वप्रथलेन श्राद्धं कुर्यादिद्वृजोत्तमः।
आराधितो भवेदीशस्तेन सम्बक्ष सनातनः॥ १३॥

इसलिए सभी प्रकार से यत्पूर्वक उत्तम ब्राह्मण को श्राद्ध करना चाहिए। ऐसा करने से सनातन ईश्वर की ही सम्बक्ष आराधना हो जाती है।

अपि भूलैः फलैर्वापि प्रकुर्याक्षिर्वनो हितः।
तिलोदकैतर्पित्यापि पितॄन् स्नात्वा समाहितः॥ १४॥

निर्धन ब्राह्मण को भी स्नान करके, एकाग्रचित्त होकर तिलोदक से पितरों का तर्पण करके फल-मूल से अवश्य श्राद्ध करना चाहिए।

न जीवत्यितृको दद्याद्योपानां या विदीयते।
येषां वापि पिता दद्यात्तेषाङ्कैके प्रचक्षते॥ १५॥

पिता के जीवित रहने पर व्यक्ति को उस प्रकार श्राद्ध, पिण्डदान या तर्पण नहीं करना चाहिए। अथवा, वह होमपूर्वक रूपकर्म कर सकता है। कुछ लोग ऐसा कहते हैं कि पिता जिनका श्राद्ध करता हो, पुत्र भी उनका श्राद्ध कर सकता है।

पिता पितापहृष्टव तथैव प्रपितामहः।
यो यस्य प्रीयते तस्यै देयं नान्यस्य तेन तु॥ १६॥

पिता, पितामह और प्रपितामह इनमें से जिनकी मृत्यु हो जाय, केवल उन्हीं के निमित्त श्राद्ध करना चाहिए, दूसरे किसी को उद्देश्य करके नहीं करना चाहिए।

भोजयेद्वापि जीवनं यथाकाष्ठनु भक्षितः।
न जीवनमतिकाम्य ददाति प्रयतः शुद्धिः॥ १७॥

यदि ये पिता आदि जीवित हों, तो इन्हें इच्छानुसार भक्षिपूर्वक पवित्र होकर भोजन कराना चाहिए। जीवित को छोड़कर केवल मृत व्यक्ति को उद्देश्य कर भोजन नहीं करना चाहिए।

द्व्यामुष्यावणिको दद्याद्विज्ञेत्रिक्योः सम्पूर्ण
अधिकारी भवेत्सोऽश नियोगोत्पादितो यदि॥ १८॥

द्व्यामुष्यावणिक (दूसरे भाई से दत्तकरूप में गृहीत दायभाग का अधिकारी) पुत्र भी अपने सगे पिता और

क्षेत्रिक में समानरूप से श्राद्धादि अपित कर सकता है। यदि वह नियोग विधि से उत्पत्र हुआ हो तो वह भी अधिकारी होता है।

अनियुक्तासुतो यथा शुक्रतो जायतेत्विह।
प्रदद्याद्विजिने पिण्डं क्षेत्रिणे तु ततोऽन्यथा॥ १९॥

द्वौ पिण्डौ निविषताप्यां क्षेत्रिणे वीजिने तदा।
कीर्तयेदयैवास्मिन् वीजिने क्षेत्रिणे ततः।
पृताहनि तु कर्तव्यपेक्षिष्ट विद्यानतः॥ २०॥

परन्तु जो पुत्र नियोगविधि से रहित (उसके जीवनकाल में अपनी रुती में व्याधिचार से) उत्पत्र हुआ हो, वह केवल बीजी (मुख्य पिता) को ही एक पिण्डदान कर सकता है और यदि नियोगोत्पादित पुत्र हो, तो वह बीजी को भी पिण्डदान कर सकता है। वह पहले बीजी और बाद में क्षेत्री का नामोदारण करके दो-दो पिण्डों का दान करेगा। मृत्यु की तिथि में तो विधि के अनुसार एकोद्दिष्ट श्राद्ध करना चाहिए।

अशौचे स्वे परिक्षीणे क्षाप्यं वै कापतः पुनः।
पूर्वाह्वै वैव कर्तव्यं श्राद्धमभ्युदयार्थिना॥ २१॥

अपना मरण-सूतक पूरा हो जाने के बाद अपनी इच्छानुसार पुनः काम्यश्राद्ध करना चाहिए। अपनी उन्नति चाहने वाले व्यक्ति को पूर्वाह्वै में ही श्राद्ध करना चाहिए।

देववत्सर्वमेव स्याद्वैक कार्यास्तिलैः क्रियाः।
दर्भाषु ऋजवः कार्या युग्मान्वै भोजयेद्विजिनान्॥ २२॥

देवश्राद्ध की तरह ही इस श्राद्ध में सब कार्य होते हैं। इसमें तिलों से क्रिया नहीं करनी चाहिए और दर्भ भी सीधे रखने चाहिए, तथा दो ब्राह्मणों को एक साथ भोजन कराना चाहिए।

नन्दीमुखासु पितरः प्रीयनापिति वाचयेत्।
पातुश्राद्धनु पूर्वं स्यात्पितॄणां तदनन्तरम्॥ २३॥

ततो मातापहानान्तु वृद्धौ श्राद्धवयं स्मृतम्।
देवपूर्वं प्रदद्यादौ न कृत्यादप्रदक्षिणम्॥ २४॥

‘नन्दोमुखा पितर प्रसन्न हों’ ऐसा ब्राह्मणों को कहना चाहिए। नन्दोमुख श्राद्ध में फहले मातृश्राद्ध और पितृश्राद्ध होता है। इसके अनन्तर मातामहों का श्राद्ध होता है। ये तीन प्रकार के श्राद्ध करने चाहिए। इन तीनों श्राद्धों से पहले देवश्राद्ध करना चाहिए और प्रदक्षिणा किए जिन श्राद्ध नहीं करना चाहिए।

प्राह्मुखो निवेदिद्वानुपवीतो सप्ताहितः।

पूर्वे तु मातारः पूज्या भक्तया वै सगणेष्वराः॥ १०५॥

विद्वान् पुरुष को एकाग्रनित होकर यजोपवीत धारण करके पूर्व दिशा की ओर मुख करके पिण्डदान करना चाहिए। सर्वप्रथम गणेशरों सहित घोडश मातृकाओं की भक्तिभाव से पूजा करना चाहिए।

स्थणिडलेषु विचित्रेषु प्रतिपासु द्विजातिषु।

पुर्णैर्घृण्यै नैवेद्यैर्घृण्यैरिपि पूजयेत्॥ १०६॥

पूजयित्वा मातृगणं कुर्याच्छ्राद्धतये द्विजः।

यह पूजन अनेक प्रकार के स्थणिडलों में, प्रतिमाओं में और द्विजातियों में करना चाहिए। उसमें पुष्प, धूप, नैवेद्य और आभूषणों से पूजा करनी चाहिए। इस प्रकार मातृकाओं की पूजा करके ब्राह्मण को तीनों श्राद्ध सम्पन्न करने चाहिए।

अकृत्वा मातृयोगनु यः श्राद्धनु निवेशयेत्।

तस्य क्रोधसमाविष्टा हिंसां गच्छन्ति मातारः॥ १०७॥

जो ब्राह्मण इन घोडश मातृकाओं की पूजा किए बिना श्राद्ध करता है, तो मातृकाएं उन पर क्रोधित होकर हिंसा करती हैं।

इति श्रीकूर्मपुराणे उत्तराद्वेष्ट व्यासगीतासु श्राद्धकल्पो नाम

द्वाविशोऽध्यायः॥ २२॥

त्रयोविंशोऽध्यायः:

(अशौचविधि कथन)

व्यास उवाच

दशाहं प्राहुराशीर्थं सप्तिष्ठेषु विधीयते।

पृथुं वापि जातेषु ब्राह्मणानां द्विजोत्पाः॥ १॥

ज्यास बोले— हे ब्राह्मणश्रेष्ठो! मुनियों का कहना है कि किसी संगोत्रीय का जन्म हो या मृत्यु हो, तो ब्राह्मणों को दस दिन तक का सूतक कहा है।

नित्यानि चैव कर्माणि काम्यानि च विशेषतः।

न कुर्याद्विहतं किञ्चित्स्वाध्यायं मनसापि च॥ २॥

इस सूतकावस्था में नित्यकर्म, काम्यकर्म और अन्य कोई शास्त्रोक्त कर्म भी नहीं करने चाहिए तथा स्वाध्याय तो मन से भी नहीं करना चाहिए।

शुचीनक्रोधनान् भूम्यान् शालान्मौ भावयेद्विजान्।

शुक्काश्रेन फलैर्वापि वैतानान् जुहुयात्तथा॥ ३॥

ऐसी अवस्था में शालान्मौ में (प्रतिदिन) हवन के लिए पवित्र, क्रोधहीन और शान्तस्वभाव वाले ब्राह्मणों को नियुक्त करना चाहिए। उन ब्राह्मणों को सूखे अत्र और फलों से वैतान अग्नि में होम करना चाहिए।

न स्पृशेदुरिपानन्ये न च तेष्यः सप्ताहेरेत्।

चतुर्थे पञ्चमे चाह्नि संस्पर्शः कवितो दुष्टैः॥ ४॥

अन्य लोग, सूतकी ब्राह्मणों का न तो स्पर्श करेंगे और नहीं उनके पास से कोई चौंज मंगवायेंगे। बिद्वानों का मत है कि चौंथे या पाँचवें दिन उनका स्पर्श किया जा सकता है।

सूतके तु सपिण्डानां संस्पर्शो नैव दुष्वति।

सूतकं सूतिकां चैव कर्जयित्वा नृणां पुनः॥ ५॥

अशौच काल में संगोत्रीय जिनों के स्पर्श से कोई दोष नहीं लगता है, केवल जिन्हें सूतक लगा हो, या जो सूतिका (जन्म देने वाली माता) हो, उन लोगों को स्पर्श करना वर्जित है।

अशीयानस्तथा वेदान् वेदविद्य पिता भवेत्।

संस्पृश्या: सर्व एवैते स्नानाभ्याता दशाहतः॥ ६॥

वेदाध्ययन करने वाले तथा देवों को जानने वाला पिता, ये सब लोग स्नान के बाद स्पर्श करने योग्य हो जाते हैं, परन्तु दसवाँ दिन बीत जाने पर माता स्नान के बाद ही स्पृश्य होती है।

दशाहं निर्गुणे प्रोक्तमाशीर्थं वातिनिर्गुणे।

एकाद्वित्रिगुणैर्युक्तजुहुर्वैकदिनैः शुचिः॥ ७॥

गुणहीन अथवा अतिनिर्गुण होने पर उस (पिता) के लिए दस दिन का ही सूतक कहा गया है। परन्तु यदि वह एक गुण, द्विगुण या त्रिगुण युक्त हो, तो ऋमशः चार दिन, तीन दिन और एक दिन बीत जाने पर शुद्धि मानी गयी है।

दशाहादपरं साम्यग्वीयीत जुहोति च।

चतुर्थे तस्य संस्पर्शं मनुः प्राह प्रजापतिः॥ ८॥

प्रजापति मनु ने कहा है— दसवें दिन के बाद वेदाध्ययन और हवनादि सम्पूर्ण रूप से कर सकता है तथा (ऐसा गुणयुक्त होने पर) उसका चौथे दिन स्पर्श किया जा सकता है।

कियाहीनस्य मूर्खस्य महारोगिण एव च।

यदेष्टुवरणस्येह मरणान्तमशौचकम्॥ ९॥

परन्तु जो कोई शास्त्रीय क्रियाओं से रहित, मूर्ख, महारोगी और अपनी इच्छानुसार आचरण करने वाले को जीवनभर सूतक रहता है।

त्रिग्राहं दशारात्रं वा द्वाहाणानामशीघ्रकम्।

प्राक्संस्कारात् त्रिग्राहं चै दशारात्रमतः परम्॥ १०॥

द्वाहाणों का सूतक तीन या दस रात का होता है। परन्तु द्विजातीय संस्कारों से पूर्व तीन रात का और बाद में तो दस रात का सूतक होता है।

उन्निवार्षिके ग्रेते मातापित्रोस्तदिष्ट्वते।

(त्रिग्राहेण शुचिस्त्वन्यो यदि हात्यननिर्गुणः।

अदन्तजातपरणे पित्रोरेकाहृषिष्वते।)

जातदन्ते त्रिग्राहं स्वाहादि स्वातान्तु निर्गुणी॥ ११॥

ये वर्ष से कम आयु के बालक की मृत्यु हो जाने पर उसके माता-पिता को वैसा ही सूतक लगता है। (उनसे अतिरिक्त दूसरे को अत्यन्त निर्गुण होने पर भी तीन रात्रि में शुद्धि हो जाती है और जो बालक के दौते न निकले हों और मृत्यु हो जाय, तो माता-पिता को एक दिन का सूतक होता है) दौते निकलने के बाद बालक की मृत्यु हो जाने पर अत्यन्त निर्गुण माता-पिता को तीन रात का सूतक होता है।

आदन्तजननात्सद्य आचूडादेकरात्रकम्।

त्रिग्राहपौष्णयनात्सपिण्डानामशीघ्रकम्॥ १२॥

दौते निकलने तक ही बालक की मृत्यु हो जाय तो संगोष्ठीय तत्काल स्नान करने से शुद्ध हो जाते हैं। चूडाकर्म संस्कार होने से पूर्व (मृत्यु हो जाने से) एक रात का और उत्पन्नयन से पूर्व मृत्यु हो जाने से तीन रात का सूतक संगोष्ठियों को लगता है।

जातपात्रस्य बालस्य यदि स्वाम्यरणं पितुः।

मातुष्टु सूतकं तत्स्वातिपात्स्यात्सूक्ष्य एव च॥ १३॥

सद्यः शौचं सपिण्डानां कर्तव्यं सोदरस्य तु।

ऊर्वं दशाहादेकाहं सोदरो यदि निर्गुणः॥ १४॥

जिस बालक की जन्म लेते ही मृत्यु हो जाती है, तो पिता-माता को सूतक लगता है। अथवा (स्नान के बाद) केवल पिता को स्पर्श काया जा सकता है। सपिण्डों और सहोदरों की सद्यः शुद्धि हो जाती है, परन्तु सहोदर यदि निर्गुण (उत्तम गुणों से रहित) हो तो दस दिन के बाद भी एक दिन का सूतक होता है।

ततोर्ष्व दन्तजननात्सपिण्डानामशीघ्रकम्।

एकरात्रं निर्गुणानां चौडादूर्ध्वंनिरात्रकम्॥ १५॥

जिस बालक की दौते निकलने के बाद मृत्यु हो जाती है, तो एक रात का और चूडाकर्म के बाद मृत्यु होने पर तीन रात का निर्गुण संगोष्ठियों को सूतक लगता है।

अदन्तजातपरणं सप्तवेष्टादि सत्त्वाः।

एकरात्रं सपिण्डानां यदि तेऽत्यननिर्गुणाः॥ १६॥

हे ब्रह्मणशेषो! जिस बालक की दौते निकलने से पूर्व ही मृत्यु हो जाय, तो अत्यन्त निर्गुण संगोष्ठियों के लिए एक रात का सूतक माना जाया है।

स्वातादेशात्सपिण्डानां गर्भस्वावात्स्वयात्तः।

(सर्वेषामेव शुणिनामूर्ध्यन्तु विषपः पुनः।

अर्वाकं एण्मासतः स्त्रीणां यदि स्वादगर्भसंस्वः।

तदा माससंस्वैस्तापामशीघ्रं दिवसैः स्मृतम्।

तत ऊर्वंतु पतने स्त्रीणां द्वादशरात्रिकम्।

सद्यः शौचं सपिण्डानां गर्भस्वावाच यातुतः।)

गर्भच्युतादहोरात्रं सपिण्डेऽत्यननिर्गुणोः।

यदेष्टावरणे ज्ञातौ त्रिग्राहप्रिति निष्ठुवः॥ १७॥

स्वयं गर्भपात हो जाने पर सभी संगोष्ठियों की ब्रतादि करने से शुद्धि हो जाती है। यदि छः मास से पूर्व खियों का गर्भस्वाव हो जाय, तो उन महीनों के बराबर के दिनों का सूतक लगेगा। यदि छः मास से अधिक समय के बाद पतन हो तो खियों को बारह रात तक सूतक लगता है। किसी धातु विशेष के कारण गर्भस्वाव होता है, तो सपिण्डों की सद्यः शुद्धि हो जाती है। गर्भस्वाव होने पर अत्यन्त निर्गुण सपिण्डों को एक दिन और एक रात का सूतक लगता है, परंतु कुलाचाररहित आचरण करने वाले जातिवन्धु को तो तीन रात का सूतक निवित हुआ है।

यदि स्वात्सूतके सूतिर्भवणे वा मृतिर्भवेत्।

शेषेणैव भवेष्वद्वुद्धिरहः शेषे त्रिग्राहकम्॥ १८॥

यदि एक मरणाशीघ्र (या जननाशीघ्र) आ जाय, तो पहले से चल रहे सूतक के जितने दिन शेष हों उतने ही दिनों में दोनों अशीघ्र पूरे हो जाते हैं। परन्तु पहले वाले सूतक का एक ही दिन शेष हो और फिर कोई नया अशीघ्र प्रारम्भ हो जाय, तो उसकी पुनः तीन रात्रि में शुद्धि होती है।

परणोत्पत्तियोगेन मरणेन समाप्तते।

आद्यं वृद्धिपदाशीघ्रं तदा पूर्वेण शुद्धति॥ १९॥

अरण्येऽनुदके रात्री चौरव्याग्राकुले पथि ।
कृत्वा मूत्रं पुरीषं वा द्रव्यहस्तो न दुष्यति ॥ ३३ ॥

निधाय दक्षिणे कर्णे छ्रहसूत्रमुदद्भुखः ।
अह्वि कुर्याच्छक्खम्बूँ रात्री चेद् दक्षिणामुखः ॥ ३४ ॥

अन्तर्धाय महीं काष्ठः पत्रैलौष्टुणेन वा ।
प्रावृत्य च शिरः कुर्याद् विष्णमूत्रस्य विसर्जनम् ॥ ३५ ॥
छायाकूपनदीगोष्ठचैत्याभ्यः पथि भस्मसु ।
अग्नी चैव श्मशाने च विष्णमूत्रे न समाच्चरेत् ॥ ३६ ॥

न गोपये न कृष्टे वा महावृक्षे न शाङ्कले ।
न तिष्ठन् न निर्वासा न च पर्वतमस्तके ॥ ३७ ॥

न जीर्णदेवायतने न वत्मीके कदाचन ।
न सप्तत्त्वेषु गर्तेषु न गच्छन् वा समाच्चरेत् ॥ ३८ ॥

तुपाङ्गारकपालेषु राजमार्गे तथैव च ।
न क्षेत्रे न विले वापि न तीर्थे न चतुर्थये ॥ ३९ ॥

नोद्यानोदसमीपे वा नोपरे न पराशुची ।
न सोपानत्पादुको वा छत्री वा नान्तरिक्षके ॥ ४० ॥

न चैवाभिमुखे स्त्रीणां गुरुद्वाह्यणयोर्गवाम् ।
न देवदेवालययोरपामपि कदाचन ॥ ४१ ॥

न ज्योतीषि निरीक्षन् वा न संध्याभिमुखोऽपि वा ।
प्रत्यादित्यं प्रत्यनलं प्रतिसोमं तथैव च ॥ ४२ ॥

उसका स्पर्शं होनेपर आचमन करना चाहिये । उच्छिष्ट दशामें वस्त्रका स्पर्शं होनेपर आचमन एवं वस्त्रका प्रोक्षण करना चाहिये । जंगलमें, जलहीन स्थानमें, रात्रिमें और चोर तथा व्याघ्र आदिसे आक्रान्त मार्गमें मल-मूत्र करनेपर भी व्यक्ति आचमन, प्रोक्षण आदि शुद्धिके अभावमें भी दूषित नहीं होता, साथ ही उसके हाथमें रखा हुआ द्रव्य भी अशुचि नहीं होता (पर शुद्धिका अवसर मिल जानेपर यथाशास्त्र शुद्धि आवश्यक है) ॥ ३३ ॥

दाहिने कानपर यज्ञोपवीत छढ़ाकर दिनमें उत्तरकी ओर मुख करके तथा रात्रिमें दक्षिणाभिमुख होकर मल-मूत्रका त्याग करना चाहिये । पृथ्वीको लकड़ी, पत्तों, ढेलों अथवा घाससे ढककर तथा शिरको वस्त्रसे आवृत्तकर मल-मूत्रका त्याग करना चाहिये ॥ ३४-३५ ॥

छायामें, कूपमें वा उसके अति समीप, नदीमें, गौशाला, चैत्य (गौवके सीमाका युक्तसमूह, ग्राम्य देवताका स्थान—टीला, डोह आदिपर), जल, मार्ग, भस्म, अग्नि तथा श्मशानमें मल-मूत्र नहीं करना चाहिये । गोबरमें, जूती हुई भूमिमें, महान् वृक्षके नीचे, हरी घाससे युक्त मैदानमें और पर्वतकी चोटीपर तथा खड़े होकर एवं नग्न होकर मल-मूत्रका त्याग नहीं करना चाहिये । न जीर्ण देवमन्दिरमें, न दीमककी छाँडीमें, न जीवोंसे युक्त ग्रन्थिमें और न चलते हुए मल-मूत्रका त्याग करना चाहिये । धान इत्यादिकी भूसी, जलते हुए अंगार, कपाल, राजमार्ग, खेत, गड़, तीर्थ, चौराहे, उद्धान, जलके समीप, ऊसर भूमि और अत्यधिक अपवित्र स्थानमें मल-मूत्रका त्याग न करे । जूता या खड़ाकै पहने, छाता लिये, अन्तरिक्षमें (भूमि-आकाशके मध्यमें), स्त्री, गुरु, आह्वान, गौके सामने, देवविग्रह तथा देवमन्दिर और जलके समीपमें तो कभी भी मल-मूत्रका विसर्जन न करे ॥ ३६-४१ ॥

नहं प्रोक्षोंको देखते हुए, संध्याकालका समय आनेपर, सूर्य, अग्नि तथा चन्द्रमाकी ओर मुख करके मल-मूत्रका त्याग नहीं करना चाहिये ॥ ४२ ॥

१-कलालके ये अर्थ हैं—सिरको अस्थि, छटके दोनों अर्थभाग, मिट्टीका भिक्षापात्र, यज्ञोप युरोडालको पकानेके लिये मिट्टीका अना हुआ पात्रविशेष ।

शुद्धेद्विष्टो दशाहेन द्वादशाहेन भूमिपः।

वैश्यः पक्षादशाहेन शूद्रो मासेन शुद्धचति॥ २९॥

(जन्म-मृत्यु के सूतक काल में) ब्राह्मण दस दिनों में शुद्ध हो जाता है। क्षत्रिय की बारह, वैश्य की पन्द्रह और शूद्र की एक मास में शुद्ध होती है।

क्षत्रिविद्युद्रदायदा वै स्युविप्रस्य वाच्यवाः।

तेषामशीचे विप्रस्य दशाहाच्छुद्धिरित्यते॥ ३०॥

जो क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र और विप्र के कुटुम्बोजन हों, उनके यहाँ सूतक हो जाने पर ब्राह्मण की शुद्धि दस दिन में ही अभीष्ट बताई गई है।

राजन्यवैश्यावयेवं हीनवर्णासु योनिषु।

तपेव शौचं कुर्यातां विशुद्धर्वप्तसंशयम्॥ ३१॥

यदि हीनवर्ण की जाति में क्षत्रिय और वैश्यों का सम्बन्ध हो, उनकी मृत्यु हो जाय, तो अपने वर्ण के नियमानुसार ही सूतक लगेगा, इसी में उनकी शुद्धि निश्चित है।

सर्वे तुत्तरवर्णानामशीचं कृपुरादत्ताः।

तद्वर्णविष्टिद्वैष्टेन स्वनुशीचं स्वयोनिषु॥ ३२॥

सभी वर्णों के लोगों को अपने अपने उत्तर वर्ण वालों से सम्बन्ध होने पर, उनके अशीच काल को आदरपूर्वक उनके नियमों के अनुसार ही पालन करना चाहिए और अपने वर्ण के संपिण्डों के अशीच में अपने वर्ण के अनुकूल ही पालन करना योग्य है।

पद्मावं तु त्रिग्रात्रं स्यादेकग्रात्रं क्रयेण तु।

वैश्यक्षत्रियविप्राणां शूद्रेवाशीचमेव च॥ ३३॥

शूद्र के यहाँ सूतक लगने पर वैश्यों को छः रात का क्षत्रियों को तीन रात का और ब्राह्मणों को एक रात का सूतक लगता है।

अर्द्धमासोऽश्व षड्वात्रं त्रिग्रात्रं द्विजपुण्डवाः।

शुद्धक्षत्रियविप्राणां वैश्यस्याशीचमेव च॥ ३४॥

हे ब्राह्मणश्रेष्ठो! वैश्य के यहाँ सूतक लगने से शूद्रों को आधे महीने (१५ दिन) का क्षत्रियों को छः रात और ब्राह्मणों को तीन रात का सूतक होता है।

षड्वात्रं वै दशाहाच्छु विप्राणां वैश्यशुद्रयोः।

अशीचं क्षत्रिये प्रोत्कं क्रमणे द्विजपुण्डवाः॥ ३५॥

क्षत्रिय के यहाँ सूतक लगने पर ब्राह्मणों को छः रात का तथा वैश्यों और शूद्रों को दस दिन का सूतक लगना कहा गया है।

शुद्धविष्टक्षत्रियाणानु ब्राह्मणस्य तथैव च।

दशात्रेण शुद्धिः स्यादित्याह कमलापतिः॥ ३६॥

वैसे ही यदि ब्राह्मण को किसी शूद्र, वैश्य अथवा क्षत्रिय का सूतक लगता है, तो दस ग्राहियों के बाद उसकी शुद्धि होती है, ऐसा स्वयं कमलापति ने कहा है।

असपिण्डं द्विजं प्रेतं विप्रो निर्हत्य बन्धुवत्।

अशित्वा च सहोपिला दशात्रेण शुद्धचति॥ ३७॥

यदि किसी असपिण्ड द्विज की मृत्यु हो जाय, और उसके शव को लेकर कोई ब्राह्मण, मित्रवत् अग्निसंस्कार करता है तथा उसके असपिण्डों के साथ भोजन ग्रहण करके उसी घर में निवास करता है, तो उस ब्राह्मण की शुद्धि दस ग्राहियों के बाद होती है।

यद्यप्रमति तेषानु विरावेण ततः शुचिः।

अन्नदस्त्वन्नप्त्वा तु न च लस्मिन् गृहे वसेत्॥ ३८॥

यदि वह ब्राह्मण, असपिण्ड द्विज के घर का केवल अप्ना ग्रहण करता है, तो तीन रात के बाद शुद्धि होती है। यदि न अप्ना ग्रहण करे और न उसके घर में निवास करे, तो उसी एक दिन में शुद्धि हो जाती है।

सोदकेऽथ तदेव स्यान्यातुराप्तेषु बन्धुम्।

दशाहेन शवस्यर्णीं सपिण्डक्षैव शुद्धचति॥ ३९॥

यदि समानोदकों और माता के आसबन्धुओं की मृत्यु होने पर जो अग्निसंस्कार करता है, तो उसकी तीन ग्राहियों के बाद शुद्धि होती है और शव का स्तर्ण करने वाले संपिण्डों की दस दिनों के बाद शुद्धि होती है।

यदि निर्हति प्रेतं लोभादाकानामानसः।

दशाहेन द्विजः शुद्ध्येद्वादशाहेन भूमिपः॥ ४०॥

अर्द्धासेन वैश्यस्तु शूद्रो मासेन शुद्धति।

पद्मावेणाववा सर्वे त्रिग्रात्रेणाववा पुनः॥ ४१॥

यदि कोई द्विजवर्ण यन में लोभ-लालच करके किसी का प्रेतकर्म करता है, तो ऐसा ब्राह्मण दस दिन के बाद शुद्ध होता है, क्षत्रिय बारह दिन, वैश्य आधे महीने और शूद्र एक महीने में शुद्ध होते हैं अथवा ये सभी द्विज प्रेतकर्म करने से छः या तीन ग्राहियों के बाद भी शुद्ध हो जाते हैं।

अनावश्यक्षैव निर्हत्य ब्राह्मणं वनवर्जितम्।

स्नात्वा सम्प्राप्त्य च धूतं शुद्ध्यनि ब्राह्मणादयः॥ ४२॥

किसी अनाथ और निर्धन ब्राह्मण का अग्निसंस्कार करने पर स्नान करके धी का सेवन कर लेने पर सभी द्विज शुद्ध हो जाते हैं।

अपग्रेत् परं वर्णमपरञ्जापरे चादि।
अशौचे संसृशेतनेहातदाशौचेन शुद्ध्यति॥४३॥

यदि निम्न वर्ण बाला अपने से उच्च वर्ण के शब्द का अग्निसंस्कार करता है, अथवा वह अपने से निम्न वर्ण के मरण में प्रेतकर्म में साथ देता है, या अशौच काल में उसका स्पर्श करता है, तो भी वह स्नेह के कारण (स्नान के बाद) शुद्ध हो जाता है।

प्रेतीभूतं द्विजं विप्रो हनुगच्छेत् कामतः।
स्नात्वा सचैलं स्मृत्वामि धृतं प्राप्य विशुद्ध्यति॥४४॥

किसी द्विजवर्ण की मृत्यु पर जो ब्राह्मण अपनी इच्छा से अग्निसंस्कार में उसके पीछे जाता है, वह बख्सहित स्नान के बाद अग्नि को स्पर्श करके और घी पीकर शुद्ध होता है।

एकाहाक्षत्रिये शुद्धिर्वैश्ये स्याद्गृहेन तु।
शुद्धे दिनत्रये प्रोक्तं प्राणायामशतं पुनः॥४५॥

(शब्द का अनुगमन करने पर) क्षत्रिय एक दिन, वैश्य दो दिन और शुद्ध तीन दिन के बाद शुद्ध होते हैं, और उन सब के लिए सौ बार प्राणायाम करना भी कहा गया है।

अनस्थियशुद्धिते शुद्धे रौति चेद्द्राहणः स्वकैः।
विरावं स्यात्तथा ज्ञौचयेकाहुं त्वन्वया स्मृतपृ॥४६॥

यदि ब्राह्मण, शुद्ध के यहीं अस्थिसंचय से पूर्व विलाप करता है, तो उसे तीन रात का सूतक होता है, अन्यथा (अस्थिसंचय के बाद) एक दिन का सूतक होता है।

अस्थिस्मृत्यनादवर्गिकाहः क्षत्रवैश्ययोः।
अन्यथा चैव सज्जेतिर्द्वाहणे स्नानपेत् तु॥४७॥

अस्थिसंचय से पूर्व कोई क्षत्रिय या वैश्य, शुद्ध के घर जाकर रुदन करें, तो एक दिन का और अस्थिसंचय के बाद सन्योग अशौच होता है। ब्राह्मण के अस्थिसंचय से पहले यदि वैश्य और शुद्ध इस प्रकार रोएं तो केवल स्नान कर लेने पर ही शुद्ध हो जाती है।

अनस्थिसशुद्धिते विप्रो ब्राह्मणो रौति चेत्तदा।
स्नानेनैव भवेच्छुद्धिः सचैलेनात्र संशयः॥४८॥

ब्राह्मण के अस्थिसंचय से पहले यदि कोई दूसरा ब्राह्मण उसके घर जाकर रोता है तो वर्ण पहनकर स्नान करने से ही उसको शुद्ध हो जाती है, इसमें तानिक भी संशय नहीं है।

यस्ते: सहाशनं कुर्याच्छयनादीनि चैव हि।
वाश्ववो वापरो वापि स दशाहेन शुद्ध्यति॥४९॥

जो मनुष्य अशौची व्यक्तियों के साथ बैठकर भोजन और

शयनादि कार्य करता है, वह चाहे सम्बन्धी हो या न हो, उसकी दस दिन के बाद ही शुद्ध होती है।

यस्तेषां समपश्नाति सकृदेवापि कामतः।
तदाशौचे निवृत्तेऽसौ स्नानं कृत्वा विशुद्ध्यति॥५०॥

जो व्यक्ति अपनी इच्छा से मृत व्यक्ति के सम्बन्धियों के साथ एक बार भी भोजन कर लेता है, वह अशौच की निवृत्ति होने के बाद स्नान करके ही शुद्ध होता है।

यावत्तद्रमस्नाति दुर्भिक्षाभिहतो नरः।
तावन्त्यहान्यशौचं स्यात्तायाश्चिन्तनं तत्त्वारेत्॥५१॥

यदि दुर्भिक्ष से पीड़ित कोई मनुष्य जितने दिनों तक किसी अशौची का अन्न खाता है, उसे उतने दिनों का अशौच होगा और उसके बाद उसे प्रायङ्गित भी करना पड़ेगा।

दाहाशौचं कर्तव्यं द्विजानामिनहोत्रिणाम्।
सपिण्डानाशु भरणे भरणादितरेषु च॥५२॥

अग्निहोत्री ब्राह्मणों की मृत्यु होने पर उनके अग्निसंस्कार होने तक ही सूतक रहता है। सपिण्डों के या अन्यों के जन्म और मृत्यु पर सूतक का पालन करता पड़ता है।

सपिण्डता च पुरुषे सप्तमे विनिवत्ती।
सपानोदक्षभावस्तु जन्मनाम्नोरवेदने॥५३॥

सातवीं पीड़ि के पुरुष के बाद सपिण्डता समाप्त हो जाती है तथा जब किसी पुरुष के जन्म या नाम की जानकारी न हो, तो सपानोदक्षता (जलतर्पणक्रिया) रुक जाती है।

पिता पितापहृत्वं तत्त्वैव प्रपिताप्यहः।
लेपभाजस्त्रयो ज्ञेयाः सापिण्डतं सासपौरुषम्॥५४॥

पिता, पितामह और प्रपितामह ये तीनों को लेप भोजी (पिण्ड ग्रहण करने वाले) जानना चाहिए और तीनों की सपिण्डता सात पीड़ि तक होती है।

अप्रताना तथा रूपीणां सापिण्डतं सासपौरुषम्।
तासानु भर्त्सापिण्डतं प्राह देवः पिताप्यहः॥५५॥

जो स्त्रियां अविवाहिता हों, उनकी सपिण्डता सात पीड़ियों तक की है और विवाहिता कन्या की सपिण्डता पति के कुल में होती है, ऐसा देव पितामह ने कहा है।

ये दैक्षजाता वह्यो भिन्नयोनय एव च।
भिन्नवर्णास्तु सापिण्डतं भवेत्सेवा त्रिपौरुषम्॥५६॥

जो एक ही व्यक्ति से अनेक भिन्न वर्ण की माताओं से उत्पन्न हैं, उन भिन्नवर्ण बाले युत्रों की सपिण्डता तीन पीड़ियों तक की होती है।

कारबः शिल्पनो वैद्या दासीदासास्तैव च।

दासारो नियमार्थैव ब्रह्मविद्वाहचारिणी।

सत्त्विणो द्युतिनसाक्षत्सद्यःशौचमुदाहतम्॥ ५७॥

राजा शैवाभिषितश्च अप्रसक्रिण एव च।

कारीगर, शिल्पी, वैद्य, दासी, दास, नियमपूर्वक दान करने वाले, ब्रह्मज, ब्रह्मचारी, यज्ञादि चलाने वाले और व्रतधारियों की, जो राजा हो, जिसका अभिषेक किया गया हो, जो अप्रसक्र चलाते हों, उनकी शुद्धि सद्यः कही गयी है।

यज्ञे विवाहकाले च दैवयागे तथैव च।

सद्यः शौचं सपाख्यातं दुर्भिष्ठे चायुषणवे॥ ५८॥

अथवा यज्ञ में, विवाहकाल में, और देवपूजादि निमित्त यज्ञ में, दुर्भिष्ठ के समय तथा किसी प्रकार के उपद्रव के समय सद्यःशौच कहा गया है।

डिष्ट्वाहवहानाङ्ग सर्पादिभरणोऽपि च।

सद्यः शौचं सपाख्यातं स्वज्ञातिपरणे तथा॥ ५९॥

भूणहत्या होने पर, युद्ध में अथवा सर्पादि के काटने से (विजली से, ब्राह्मण से, राजा से और पक्षी से मृत्यु हो जाने पर) अपने बन्धुजनों की मृत्यु होने पर सद्यः शौच कहा गया है।

अग्निप्रस्त्रापतने वीराख्यन्यथानाशके।

गोद्वाहणार्थं संन्यस्ते सद्यःशौचं विद्यीयते॥ ६०॥

अग्नि या बायु के कारण मृत्यु होने पर, दुर्गम मार्ग में जाते हुए या अनशन करते हुए, गाय और ब्राह्मण के लिए मृत्यु होने पर और संन्यास धारण करने के बाद मृत्यु हो जाने से सद्यःशौच होता है।

नैषिकानां बनस्थानां यतीनां ब्रह्मचारिणाम्।

नाशौचं कौत्यते सद्दिः पतिते च तदा मृते॥ ६१॥

जो जीवनपर्यन्त नैषिक ब्रह्मचारी रहे हों, वानप्रस्थी तथा संन्यासी हों अथवा जो ब्रह्मचर्य अवस्था में हों, उनकी और पतित की मृत्यु हो जाने पर अशौच के नियम को सख्तों ने नहीं बताया है।

पतितानां न दाहः स्यान्नात्येष्टिर्नास्तिवसङ्घयः।

नाशृपातो न पिण्डो वा कार्यं श्राद्धादिकं क्वचित्॥ ६२॥

पतितों की मृत्यु हो जाने पर दाहसंस्कार, अन्तर्याएँ और अस्थिसंचय आदि कार्य नहीं किए जाते। इसके अतिरिक्त उसकी मृत्यु पर रोना, पिण्डदान और श्राद्धादि भी नहीं करने चाहिए।

व्यापादयेत्वात्वानं स्वयं योऽनिविषादिभिः।

विहितं तस्य नाशौचं नामिनायुदकादिकम्॥ ६३॥

जो पुरुष स्वयं को अग्नि में जलाकर या विष खाकर अपने को नष्ट करता है, उसके लिए अशौच, अग्निसंस्कार या जलतर्पण आदि कार्यों का विधान नहीं है।

अथ फिङ्गित्रपादेन युतेऽनिविषादिभिः।

तस्याशौचं विद्यत्व्यं कार्यं शौचोदकादिकम्॥ ६४॥

यदि प्रमादवश, किसी की मृत्यु अग्नि या विष के द्वारा हो जाती है, तो उसके लिए श्राद्ध करना चाहिए तथा ऐसे मृतकों के लिए अशौच का विधान भी है।

जाते कुमारे तदहः कार्यं कुर्यात्प्रतिप्रहम्।

हिरण्यषान्यगोवाससितलाङ्गु गुडसर्पिणा॥ ६५॥

फलानि पुष्टं शाकञ्जु लवणं काष्ठमेव च।

तत्र दधि धूते तैलमौष्ण्यं क्षीरमेव च।

अशौचिनो गृहाद् प्राहां शुष्काङ्गशौचं नित्यशः॥ ६६॥

पुत्र उत्पन्न होने पर (सूतक काल में), उस दिन सोना, वस्त्र, गाय, धान्य, तिल, अज, गुड और धी, इन सभी वस्तुओं का दान इच्छानुसार ले सकता है। उसी प्रकार सूतकी व्यक्ति के घर से प्रतिदिन फल, फूल, साग, नमक, लकड़ी, जल, दही, ची, तेल, औषधि, दूध और सूखा अन्न लिया जा सकता है।

आहितामिर्यान्यायं दशव्यस्त्रिमिरमिभिः।

अनाहितामिर्याद्येण लौकिकेनेतरो जनः॥ ६७॥

अग्निहोत्री ब्राह्मण का दाहसंस्कार, शास्त्रों के अनुसार, तीन प्रकार की अग्नि से करना चाहिए और जो अग्निहोत्री नहीं हैं, उनका गृहासूत्रोक्त (अग्नि) नियमों से तथा दूसरों को लौकिक विधान से दाहसंस्कार करना चाहिए।

देहाभावात्पलाशीस्तु कृत्वा प्रतिकृतिं पुनः।

दाहः कार्यो यथान्यायं सपिण्डः श्रद्धयावितैः॥ ६८॥

यदि किसी मृत व्यक्ति का देह न मिले, तो पलाश से उसकी प्रतिमूर्ति बनाकर श्रद्धायुक्त आस्तिक जनों के द्वारा शास्त्रोक्तविधि से पिण्डदान सहित दाहसंस्कार होना चाहिए।

सकृद्रासिष्टेदुदकं नामगोत्रेण वाग्यतः।

दशाहं वाग्यवाः श्राद्धं सर्वे शैवार्द्वासासः॥ ६९॥

सभी सम्बन्धिजनों को निरन्तर दस दिनों तक, संयमित वाणी से (मृतक के) नाम और गोत्र का उचारण करते हुए गीले वस्त्र में, एक बार तर्पण करना चाहिए।

पिण्डं प्रतिदिनं दद्युः सावं प्रातर्याविधि।
प्रेताय च गुह्यारि चतुर्थे भोजयेद्दिव्यान्॥७०॥
द्वितीयेऽहनि कर्तव्यं क्षुरकर्म सवायवैः।
चतुर्थे वायवैः सर्वरस्यां सङ्कलयने भवेत्।
पूर्वान्त्रयुक्तयेद्विप्रान् युग्मान् सुश्रद्धया शुचीन्॥७१॥
पञ्चमे नवमे चैव तथैवकादशेऽहनि।
युग्मान्तः भोजयेद्विप्रान्त्रक्षादन्तु तदिह्जाः॥७२॥

प्रतिदिन प्रातः और सायंकाल घर के द्वार पर प्रेत के लिए पिण्डदान करना चाहिए। चौथे दिन ब्राह्मण को भोजन करना चाहिए। दूसरे दिन सगे-सम्बन्धियों के साथ क्षीरकर्म और चौथे दिन अस्थिसंचय करना चाहिए। दो पवित्र ब्राह्मणों को पूर्वाभिमुख बैठाकर श्रद्धापूर्वक भोजन करना चाहिए। मृत्यु के पाँचवें, नींवें और ग्यारहवें दिन उसी प्रकार दो ब्राह्मण को भोजन करना चाहिए। ब्राह्मण लोग इसी को नवश्राद्ध कहते हैं।

एकादशेऽहि कुर्वीत प्रेतमुद्दिश्य भावतः।
द्वादशे वाह्नि कर्तव्यं नवमेऽप्यथवाहनि।
एकं पवित्रमेकोऽर्थः पिण्डयात्रं तथैव च॥७३॥

प्रेत को उद्देश्य करके ग्यारहवें, बारहवें या नवें दिन श्राद्ध करना चाहिए। इस श्राद्ध में एक पवित्री, एक अर्घ्य और एक पिण्डपात्र होना चाहिए।

एवं पृथाहि कर्तव्यं प्रतिपासन्तु वत्सरम्।
सपिण्डीकरणं प्रोक्तं पूर्णे संवत्सरे पुनः॥७४॥

इस प्रकार प्रतिमास और प्रतिवर्ष, मृत्यु के दिन श्राद्ध करना चाहिए तथा इस प्रकार एक वर्ष पूर्ण हो जाने पर इसे सपिण्डीकरण कहा जाता है।

कुर्यादत्पारि पात्राणि प्रेतादीनां द्विजोत्पाः।
प्रेतार्थं पितृपात्रेषु पात्रमासेचयेत्ततः॥७५॥

ब्राह्मणों को प्रेतादि के (मृतक, पितामह, प्रपितामह और वृद्धपितामह) चार पात्रों को तैयार करना चाहिए। इसके बाद पितरों के पात्रों में प्रेतार्थ अन रखकर उस पात्र को जल से सिंचित करें।

ये समाना इति द्वाष्टां पिण्डान्वयेवपेव हि।
सपिण्डीकरणश्राद्धं देवपूर्वं विद्वीयते॥७६॥

'ये समानाः' इन दो मन्त्रों का उद्धारण कर पात्र में पिण्ड अर्पित किये जाते हैं। इस सपिण्डीकरण श्राद्ध से पूर्व देवश्राद्ध करना चाहिए।

पितृनावाहयेत्तत्र पुनः प्रेतं विनिर्दिशेत्।

ये सपिण्डीकृताः प्रेता न तेषां स्युः प्रतिक्रियाः।
वस्तु कुर्यात्पृष्ठक् पिण्डं पितृहा सोऽभिजायते॥७७॥

तत्प्रकाशत् पितरों का आङ्गान करना चाहिए। इसके बाद प्रेत का विशेष निर्देश करें। परन्तु जिन प्रेतों का सपिण्डीकरण श्राद्ध हो चुका हो, उनके निमित्त कोई भी अलग कार्य नहीं करना चाहिए और यदि कोई उनके लिए पृथक् पिण्डदान करता है, तो वह अपने पितरों को हत्या करने वाला होता है।

पृते पितरि वै पुत्रः पिण्डानन्दं समावसेत्।
द्वाष्टां प्रोद्धुर्मुखं प्रत्यहं प्रेतधर्मतः॥७८॥

पिता की मृत्यु हो जाने पर पुत्र को एक वर्ष तक पिण्डदान करना चाहिए और पूरे वर्ष प्रेतधर्म का अनुसरण करते हुए प्रतिदिन जल के घड़े के साथ अब देना चाहिए।

पार्वणेन विद्यानेन सांबत्सरिकमिष्यते।

प्रतिसंवत्सरं कुर्याद्विधिरेषं सनातनः॥७९॥

सांबत्सरिक श्राद्ध भी पार्वणश्राद्ध की विधि के अनुसार होता है और वह प्रतिवर्ष करना चाहिए, यही सनातन विधि है।

मातापित्रोः सुतैः कार्यमिण्डदानादिकं च यत्।

पत्नी कुर्यात्सुताभावे यत्प्यभावे तु सोदरः॥८०॥

मृत माता-पिता के पिण्डदानादि सारे कार्य पुत्र द्वागा होने चाहिए। यदि पुत्र न हों तो (पति के निमित्त) पत्नी को करना चाहिए और पत्नी के अभाव में सगे भाइ को ये कार्य करने चाहिए।

अनेनैव विद्यानेन जीवः श्राद्धं समाचरेत्।

कृत्वा दानादिकं सर्वं श्रद्धायुक्तः समाहितः॥८१॥

उपर्युक्त विधि के अनुसार जीवित मनुष्य भी एकाग्राचित होकर, श्रद्धापूर्वक दानादि करके श्राद्ध कर सकता है।

एष वः कवितः सम्बग्युहस्यानां क्रियाविधिः।

स्त्रीणां भर्तुपुं शश्रूषा वर्षो नाच्य इहोच्यते॥८२॥

इस प्रकार गृहस्थों की क्रियाविधि मैंने सम्यक् रूप से आप लोगों को कह दी है। परन्तु लियों के लिए तो प्रतिसेवा के अतिरिक्त दूसरा कोई धर्म नहीं कहा गया है।

स्वर्णर्मतपरा नित्यमीमुरार्पितमानसाः।

प्राप्नुवन्ति परं स्वानं यदुक्तं वेदवादिभिः॥८३॥

इस प्रकार जो अपने धर्म में तत्पर होकर सदैव ईश्वरापित
मन वाले होते हैं, वे वेदज्ञ विद्वानों द्वारा बताए गए श्रेष्ठ
स्थान को प्राप्त करते हैं।

इति श्रीकृष्णपुराणे उत्तरार्द्धं व्यासगीतामु श्राद्धकल्पे
त्रयोविंशोऽध्यायः॥ २३॥

चतुर्विंशोऽध्यायः (द्विजों के अग्निहोत्रादि कर्म)

व्यास उवाच

अग्निहोत्रन्तु युद्धयात्सायम्भातर्यथाविष्य।
दर्शं चैव हि तस्याने नवसम्ये तत्त्वैव च॥ १॥
इष्टा चैव यथान्यायमूल्यने च द्विजोऽध्यारः।
पशुना त्वयनस्याने सप्ताने सोऽग्निकर्मण्यः॥ २॥
व्यास बोले— प्रत्येक ब्राह्मण को सायंकाल और प्रातः काल विश्वूर्वक अग्निहोत्र करना चाहिए। कृष्णपक्ष के अन्त में (अमावस्या में) दर्शयाग और शुक्लपक्ष के अन्त में (पूर्णिमा में) पौर्णमास याग करना चाहिए। नूतन धान के पकने पर 'नवशस्या याग' के साथ ब्राह्मण को प्रत्येक छह तृतीयों के अन्त में अग्निहोत्र करना चाहिए। उत्तरायण या दक्षिणायन में होने वाले तथा संबत्सर के अन्त में सोमवरों के साथ अग्निहोत्र करना चाहिए।

नानिष्टा नवस्येषुषा पशुना वामिपान्दिजः।
न चाप्रपश्यत्यांसं वा दीर्घ्यायुर्जितविषुः॥ ३॥
दीर्घ्यु प्राप्त करने को इच्छा वाले अग्निहोत्री ब्राह्मण को नवशस्येष्टि और पशु याग किए बिना अत्र या मांस भक्षण नहीं करना चाहिए।

नवेनान्नेन चानिष्टा पशुहृष्णेन चाप्यवः।
प्राणानेवात्तुभित्तिं नवाप्राप्तिपृद्धिनः॥ ४॥
जो अग्निहोत्री ब्राह्मण नूतन धान्य द्वारा नवशस्येष्टि तथा पशुयाग न करके अत्र या मांस भक्षण करते हैं तो उस अग्निहोत्री की अग्नियाँ उस के प्राणों को ही खाने की इच्छा करती हैं।

सावित्रान्नानिहोत्रांषु कुर्यात्पर्वसु नित्यज्ञः।
पितॄश्चैवाष्टकाः सर्वे नित्यमन्वष्टकामु च॥ ५॥
वह अग्निहोत्री प्रत्येक पर्व पर सावित्र और शान्ति निमित्त होम करना चाहिए और सभी को 'अष्टका' आड़ में, पितरों को सदा तृत करना चाहिए।

एष धर्मः परो नित्यपश्यपर्वोऽन्य उच्यते।

त्रयाणामिह वर्णानां गृहस्याश्रमवासिनाम्॥ ६॥

यही उपर्युक्त धर्म सदा श्रेष्ठ है, इसके अतिरिक्त अन्य 'अपधर्म' कहा जाता है। यह ब्राह्मणादि तीनों वर्गों के गृहस्थों के लिए कहा है।

नास्तिक्यादश्यवालस्याद्वाऽग्नीश्रायातुभित्तिः।

यजेत वा न यजेन स याति नरकान् वहन्॥ ७॥

जो नास्तिकता अथवा आलस्य के कारण अग्निहोत्र करने की इच्छा नहीं करता या यज्ञ द्वारा उनके देवों का पूजन नहीं करता उसे अनेकों नरक भोगने पड़ते हैं।

(ताप्यस्यपश्यतामित्यं यहारौरवरौरवौ।

कुर्म्योपाकं वैतरणीप्रसिप्रवनं तथा।

अन्याश्च नरकान् घोरान् सप्तान्नोति सुदुर्धतिः।

अन्यजानां कुले विप्राः शूद्रयोनौ च जायते।)

तस्यात् सर्वप्रथलेन ब्राह्मणो हि विशेषतः।

आष्टायामिन् विशुद्धात्मा यजेत परमेश्वरम्॥ ८॥

हे विप्रो! वह दुष्पुर्द्धि व्यक्ति तामित्र, अन्धतामित्र, महारौरव, कुर्म्योपाक, वैतरणी, असिप्रवन तथा अन्य धोर नरकों को प्राप्त करता है और बाद में चाण्डालों के कुल में एवं शूद्रयोनि में उत्पन्न होता है।) इसीलिए ब्राह्मण को सब प्रकार से यत्वपूर्वक विशुद्धात्मा होकर आन्याधान करके, परमेश्वर की पूजा करनी चाहिए।

अग्निहोत्रात्मरो धर्मो द्विष्टानां नेह विष्टते।

तस्मादारायेष्वित्यग्निहोत्रेण शाश्वतम्॥ ९॥

इस लोक में ब्राह्मणों के लिए अग्निहोत्र से बढ़कर दूसरा कोई श्रेष्ठ धर्म नहीं है, अतः उन्हें निरन्तर अग्निहोत्र के द्वारा ईश्वर की आराधना करनी चाहिए।

यस्त्वायावामिनांशु स्यान्न यहु देवयित्तिः।

स संपूढो न सम्यावः किं पुनर्नास्तिको जनः॥ १०॥

जो पुरुष अग्निहोत्री होकर भी आलस्यवश देव का यज्ञ नहीं करना चाहता, वह अतिशय मूढ व्यक्ति वार्तालाप के योग्य नहीं होता। फिर जो नास्तिक हो उसके विषय में तो कहना ही क्या? अर्थात् वह तो सदा ही सम्भाषण के योग्य नहीं रहता।

यस्य त्रैवार्षिकं भक्तं पर्याप्तं भूत्यवृत्तये।

अघिकं वा भवेष्यस्य स सोमं पातुमर्हतिः॥ ११॥

द्विविधस्तु गृही ज्ञेयः साधकश्चाप्यसाधकः।

अध्यापनं याजनं च पूर्वस्याहुः प्रतिग्रहम्।

कुसीदकृषिकाणिज्यं प्रकृत्वात् स्वयं कृतम्॥ २॥

गृहस्थ साधक और असाधक दो प्रकार के होते हैं। इनमें से प्रथम साधक गृहस्थ के कर्म अध्यापन, यज्ञ और दान लेना कहा गया है। ये व्याजकर्म, कृषि और व्यापार भी कर सकते हैं अथवा दूसरों द्वारा करा सकते हैं।

कृपेष्ठावे वाणिज्यं तदभावे कुसीदकम्।

आपत्कल्पस्त्वयं ज्ञेयः पूर्वोक्तो मुख्य इष्ट्यते॥ ३॥

कृषि के अभाव में व्यापार और व्यापार के अभाव में व्याज लेने का कार्य किया जाना चाहिए। यह (व्याजकर्म) आपत्काल में ही मान्य हैं मूर्खोक्त (अध्यापन, याजन और दान) साधनों को ही प्रमुख्य जानना चाहिए।

स्वयं वा कर्णाणाकुर्याद्विगिज्यं वा कुसीदकम्।

कष्टा पापीयसी वृत्तिः कुसीदं तद्विवर्जयेत्॥ ४॥

अथवा स्वयं कृषि, व्यापार या सूदखोरी का काम स्वयं करना चाहिए। व्याजकर्म की जीविका अतिशय पापजनक होती है, इसलिए सदा ही अवश्य त्याग करना चाहिए।

क्षात्रवृत्तिं परां प्रातुर्न स्वयं कर्णणं ह्वैः।

तस्माद्विवेण वर्तेत वर्तेत्तनापदि द्विजः॥ ५॥

विद्वानों ने ब्राह्मणों के लिए स्वयं कृषि कर्म करने की अपेक्षा, क्षत्रिय वृत्ति अपनाने को श्रेष्ठ माना है। इसलिए आपत्काल में, ब्राह्मण यदि क्षत्रिय वृत्ति को अपनाता है तो वह पतित नहीं होता।

तेन चावाप्यजीवंस्तु वैश्यवृत्तिः कृषि वृजेत्।

न क्षयंचन कुर्यात् ब्राह्मणः कर्म कर्णणम्॥ ६॥

यदि ब्राह्मण क्षत्रिय वृत्ति नहीं ग्रहण कर पाता तो वैश्य ग्रहण कर लेना चाहिए, परन्तु स्वयं कृषि कार्य नहीं करना चाहिए।

लब्धलाभः पितॄदेवान् ब्राह्मणांश्चापि पूजयेत्।

ते तृप्तास्तस्य तं दोषं शमयन्ति न संशयः॥ ७॥

लाभ होने से पितरों, देवताओं और ब्राह्मणों की पूजा करना चाहिए। इसमें कोई संशय नहीं कि ये लोग तृप्त होकर (कृषि कर्म के कारण उत्पन्न) सारे दोष नष्ट कर देते हैं।

देवेभ्यः पितॄभ्यः दद्याद्यागनु विशकम्।

विशद्यागं ब्राह्मणानां कृषि कुर्वन्न दुष्प्रतिः॥ ८॥

उपर्जित बस्तु के बीसवें भाग से देवताओं और पितरों को एक भाग तथा बीसवें भाग से ब्राह्मणों को एक भाग देने से, कृषि कर्म में दोष नहीं लगता।

वाणिज्ये हिंगणं दद्यात् कुसीदी त्रिगुणं पुनः।

कृषिपालात्र दोषेण युज्यते नात्र संशयः॥ ९॥

कृषि की तुलना में, व्यापार से हुए लाभ में दुगुना और सूदखोरी में तिगुना देना चाहिए। इसमें सन्देह नहीं कि इस प्रकार भाग देने से इन कार्यों में दोष नहीं लगता।

शिलोच्छं याव्याददीत गृहस्थः साधकः पुनः।

विद्याशिल्पादयस्त्वये वहवो वृत्तिहेतवः॥ १०॥

साधक गृहस्थ शिलोच्छ वृत्ति भी ग्रहण कर सकता है। उसके लिए विद्या शिल्पादि अन्य और भी बहुत से जीविकोपार्जन के साधन हैं।

असाधकस्तु यः प्रोक्तो गृहस्थाश्रमसंस्थितः।

शिलोच्छे तस्य कविते ह्वे वृत्ती परमार्थिः॥ ११॥

असाधक गृहस्थों के लिए, कृषियों ने, शिल और उन्ड जीविकायें बताई हैं।

अमृतेनावधा जीवेन्मृतेनाप्यधवा यदि।

अद्याचितं स्यादप्तं पृतं भैक्षन्तु याचितपृ॥ १२॥

अधवा अमृत के द्वाग या आपत्काल में मृत के द्वाग जीविका निर्बाह कर सकते हैं। यिन माँगी हुई बस्तु अमृत और भिक्षा में प्राप्त बस्तु मृत होती है।

कुशलधान्यको या स्यात्कुर्मीधान्यक एव च।

ऋषिको वापि च भवेद्भूसनिक एव च॥ १३॥

कुशलधान्यक (संचित अन्न से तीन साल तक या उससे अधिक जीविका निर्बाह करने वाला) कुर्मीधान्यक (संचित अन्न से एक साल तक जीविका निर्बाह करने वाला) अथवा ऋषिक (संचित अन्न से तीन दिन तक सपरिवार पेट भरने वाला) अथवा अच्छानिक (आने वाले कल को पेट भरने के लिए जिसके पास अंशमात्र भी अन्न संचित न हो) होना चाहिए।

चतुर्णामपि वै तेषां हिंजानां गृहमेघिनाम्।

श्रेयान्वरः परो ज्ञेयो धर्मतो लोकजितपृ॥ १४॥

कुशलधान्यादि तीन प्रकार, संचित और असंचित एक प्रकार, ऐसे चार प्रकार के गृहस्थ ब्राह्मणों में, उत्तरोत्तर को श्रेष्ठ जानो। क्योंकि धर्मानुसार ये परलोक में श्रेष्ठ लोकजीव होते हैं।

**षट्कर्षको भवेतेषां विभिरन्यः प्रवत्तते।
द्वायामेकल्पतुर्वसु द्रहराव्रेण जीवति॥ १५॥**

(बड़े परिवार वाले) गृहस्थ ब्राह्मण, छ: जीविकाओं क्रृत, अयचित, भिक्षा, कृषि, व्यापार और सूदखोरी) के द्वारा, दूसरे (उससे छोटे परिवार वाले) ब्राह्मण तीन जीविकाओं (याजन, अध्यापन और दान) के द्वारा, तीसरे (उनसे भी छोटे परिवार वाले ब्राह्मण) प्रकार के ब्राह्मण दो कर्मों (अध्यापन और याजन) से तथा चौथे प्रकार के ब्राह्मण केवल एक (अध्यापन) जीविका के द्वारा अपने परिवार का पालन पोषण करेंगे।

**वर्तयंस्तु शिलोऽकाम्यापमिन्होत्रपरावणः।
इष्टिः पार्वायणान्ता या: केवला न निविष्टसदा॥ १६॥**

शिल और उज्जु वृत्ति के द्वारा जीविकोपार्जन करने वाले ब्राह्मण, यदि घर से सम्पत्ति होने वाले पुष्यकर्मों को करने में अक्षम हों, तो उसे केवल अग्निहोत्र परावण होना चाहिए और पर्व तथा अयन के अन्त से सम्पत्ति होने वाले यज्ञों को करना चाहिए।

**न लोकवृत्तं वर्तत वार्ताने वृत्तिहेतो।
अजिह्वामसठां शुद्धां जीवेद्वाहाणजीविकाम्॥ १७॥**

जीविकोपार्जन के लिए लोकवृत्ति का अनुसरण नहीं करना चाहिए। जीविका का जो साधन अहंकार और छल से शून्य हो, सर हों, जिसमें लेशमात्र भी कुटिलता न हो और जो अत्यन्त शुद्ध हो गृहस्थ ब्राह्मण को वही जीविका अपनानी चाहिए।

**याचित्वा चार्यसद्योऽन्नं पितृन्देवांस्तु तोषयेत्।
याचयेद्वा शुचीन्दनानाम् तेन तृष्णेत् स्वयं ततः॥ १८॥**

शिष्टजनों से अलग मांगर, पितरों को तृप्ति करना चाहिए, या पवित्र संन्यासियों को दान देना चाहिए, परन्तु उससे स्वयं अपना पेट नहीं भरना चाहिए।

**यस्तु द्रव्यार्जनं कृत्वा गृहस्थसोषयेत् तु।
देवान्यितंसु विविना शुनां योनि द्रुजत्वयः॥ १९॥**

जो व्यक्ति द्रव्य कमाकर परिवारजनों, देवताओं और पितरों को विधिपूर्वक सन्तुष्टि नहीं करता, वह कुकुरयोनि प्राप्त करता है।

**वर्मधुर्ष्यु काम्तु श्रेयो मोक्षस्तुष्यम्।
वर्माद्विरुद्धः कामः स्याद्वाहाणानानु नेतरः॥ २०॥**

धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष में चारों श्रेयस्कर हैं। धर्म के अविरोधी काम का आश्रय लिया जा सकता है परन्तु धर्म विरोधी काम कभी भी पालनयोगी नहीं होता।

**योऽर्थो वर्षाय नात्मार्थं सोऽर्थोनार्थस्तथेतरः।
तस्मादर्थं सपासात् दद्याद्व जुहुयादिहृजः॥ २ १॥**

केवल धर्म के लिए संचित अर्थ ही अर्थ है और जो अर्थ अपने लिए संग्रह किया जाता है, वह अर्थ नहीं होता। अतः ब्राह्मण को अर्थ संचित कर सुपात्र को दान देना चाहिए या यज्ञ करना चाहिए।

**इति श्रीकूर्मपुराणे उत्तरादेव व्यासगीताम् द्विजातीनां वृत्तिनिरूपणं
नाम पञ्चविंशोऽध्यायाः॥ २५॥**

षष्ठ्विंशोऽध्यायः (दानधर्म कथन)

व्यास उवाच

**अव्यातः सप्तव्यामि दानधर्ममनुजमप्।
द्रह्मणाभिहितं पूर्वमृषीणां द्रह्मवादिनाम्॥ १॥**

व्यास बोले— पहले स्वयं ब्रह्मा ने ब्रह्मवादी ऋषियों के विस अतिश्रेष्ठ दानधर्म को बताया था, अब मैं उसीको कहूँगा।

**अर्द्धानामुचिते पात्रे श्रद्धया प्रतिपादनप्।
दानधित्यभिनिर्दिष्टं भुक्तिमुक्तिफलप्रदम्॥ २॥**

सुपात्र में श्रद्धापूर्वक धन का प्रतिपादन ही ‘दान’ नाम से अभिहित है। यह भोग और मोक्ष— दोनों प्रकार का फल देने वाला है।

**यद्वदाति विशिष्टेभ्यः शिष्टेभ्यः श्रद्धया युतः।
तद्विचित्रमहं मन्ये शेषं कस्यापि रक्षति॥ ३॥**

जो कोई अपने धन का विशिष्ट सभ्यजनों को श्रद्धापूर्वक दान करता है, वही सच्चा धन मैं मानता हूँ। शेष धन को तो दूसरे किसी के लिए रक्षा करता है।

**नित्यं नैमित्तिकं काम्यं विविदं दानपुण्यते।
चतुर्थं विमलं प्रोक्तं सर्वदानोत्तमोत्तमम्॥ ४॥**

नित्य, नैमित्तिक और काम्य भेद से दान तीन प्रकार का कहा गया है। चौथे प्रकार का दान, निर्मल दान कहा जाता है, जो समस्त दानों की तुलना में श्रेष्ठ होता है।

अहन्यहनि यत्किञ्चिद्दीयते उनुपकारिणो।

अनुदिश्य फलं तस्माद्ब्राह्मणाय तु नित्यकम्॥५॥

फल की इच्छा न रखकर, प्रतिदिन किसी अनुपकारी (उपकार करने में असमर्थ) साधारण ब्राह्मण को दिया जाने वाला दान 'नित्य' दान कहलाता है।

यत्तु पापोपशास्त्र्य दीयते विदुषां करो।

नैपितिकन्तदुष्टिं दानं सद्विरनुष्ठितम्॥६॥

अपने पाप का शमन करने के लिए, जो दान पण्डितों के हाथों में दिया जाता है, वह नैपितिक दान कहा गया है और यह सज्जनों द्वारा अनुष्ठित भी है।

अपत्यविजयैर्भूर्यस्वर्गार्थं यत्प्रदीयते।

दानं तत्काम्यमारुण्यातपूर्विर्भूर्यमित्यन्तकैः॥७॥

सन्तान, विजय, ऐश्वर्य या स्वर्गादि की कामना से जो दान दिया जाता है, वह धर्मचिन्तक ऋषियों द्वारा 'काम्य' दान कहा गया है।

यदीश्वरप्रीणनार्थं द्वाहविलसु प्रदीयते।

चेतसा धर्मयुक्तेन दानं तद्विपलं शिवम्॥८॥

ईश्वर को प्रसन्न करने के लिए, धर्मपरायण होकर वेदज्ञ ब्राह्मणों को जो दान दिया जाता है, वह धर्मलकारी दान, विमल (निर्मल) दान के नाम से जाना जाता है।

दानवर्यं निषेदेत पात्रमासाद्य शक्तिः।

उत्पत्यते हि तत्पात्रो यत्तारयति सर्वतः॥९॥

सुपात्र मिलने पर ही सामर्थ्यानुसार दानरूप धर्म की सेवा करनी चाहिए, क्योंकि ऐसा पात्र कदाचित् ही उपस्थित होता है, जो दाता को सभी प्रकार के पापों से मुक्ति दिलाने में समर्थ होता है।

कुटुम्बभक्तवसनादेयं यदतिरिच्छते।

अन्यथा दीयते यद्द्व न तद्वनं फलप्रदम्॥१०॥

कुटुम्ब का पेट भरने के बाद, जो बचे, उसका दान करना चाहिए। अन्यथा जो दान दिया जाता है, वह फलदायक नहीं होता।

श्रोत्रियाय कुलीनाय विनीताय तपस्विने।

द्रुतस्थाय दरिद्राय यदेयं भक्तिपूर्वकम्॥११॥

ब्रह्मिनी, कुलीन, विनीत, तपस्वी, ब्रह्मचारी और दरिद्रों को भक्तिभाव से दान देना चाहिए।

यस्तु दद्यात्यहीम्भवत्या ब्राह्मणायाहितानये।

स याति परमं स्थानं यत्र गत्वा न शोचति॥१२॥

जो व्यक्ति भक्तिभाव से अग्निहोत्री ब्राह्मण को भूमि दान करता है, वह उस परम स्थान पर पहुँचता है, जहाँ जाकर व्यक्ति किसी प्रकार का दुःख नहीं भोगता।

द्व्युभिः सन्तां भूमिं यद्यगेष्वपशालिनीम्।

ददाति वेदविदुषे यः स भूयो न जायते॥१३॥

जो व्यक्ति गत्रे से आच्छादित, जौ और गेहूँ की फसलों से सुशोभित भूमि को वेदज्ञ ब्राह्मण के लिए दान करता है, वह सारे पापों से मुक्त हो जाता है।

गोवर्धनप्राप्तिं वा यो भूमिं सम्प्रवच्छति।

ब्राह्मणाय दरिद्राय सर्वपापैः प्रपुच्यते॥१४॥

भूमिदानात्परं दानं विद्यते नेह किञ्चन।

अन्नदानन्तेन तुल्यं विद्यादानं ततोऽविकम्॥१५॥

जो व्यक्ति गोवर्धन जिलानी भी भूमि, निर्धन ब्राह्मण को दान करता है, वह सारे पापों से मुक्त हो जाता है। क्योंकि इस भूमिदान से बढ़कर कोई श्रेष्ठ दान नहीं है। परन्तु अन दान भी भूमि दान के समान होता है, तथापि विद्यादान उससे भी अधिक फलदायक होता है।

यो ब्राह्मणाय शुचये धर्मशीलाय शीलिने।

ददाति विद्या विधिनां ब्रह्मलोके महीयते॥१६॥

जो व्यक्ति शान्त, पवित्र और धर्मशील ब्राह्मण को विधि पूर्वक विद्यादान करता है, वह ब्रह्मलोक में पूजित होता है।

दद्यादहस्तवत्रं श्रद्धया द्वाहवारिणो।

सर्वपापविनिर्मुक्तो ब्राह्मणं स्वानपानुयात्॥१७॥

जो व्यक्ति नित्य प्रतिदिन श्रद्धापूर्वक द्वाहवारी ब्राह्मण को अन दान करता है, वह सभी पापों से मुक्त होकर, ब्रह्मलोक में जाता है।

गृहस्थायाद्रदानेन फलं नामोति मानवः।

आगमे चाम्य दातव्यं दत्त्वामोति परां गतिम्॥१८॥

गृहस्थ को भी (कल्या) अन दान करने से मनुष्य को फल मिलता है। परन्तु उसके आने पर ही गृहस्थ को दान करना चाहिए। ऐसा दान देकर दाता श्रेष्ठ गति प्राप्त करता है।

वैशाख्यां पौर्णिमास्यानु ब्राह्मणास्य यज्ञ वा।

उपोष्य विधिना शान्ताङ्गुच्छायतपानसाः॥१९॥

पूजयित्वा तिलैः कुर्वीपूर्वुना च विशेषतः।

गवादिभिः सप्तम्यर्थं वाचयेद्वा स्वयं वदेत्॥२०॥

प्रीयतां धर्मराजेति यद्वा मनसि वत्तते।

यावज्जीवं कृतम्पापं तक्षणादेव नश्यति॥ २१॥

वैशाख मास की पूर्णिमा के दिन उपवास रखकर शान्त, पवित्र और एकाग्रचित से सात या पाँच ब्राह्मणों को काले तिल और मधु से भली-भाँति पूजकर, गन्धादि द्रव्यों से आरती उतारकर, “हे धर्मराज ! आप प्रसन्न हों,” यह वाक्य स्वयं कहें और जो कुछ भी मन में कामना हो, वह भी कहें या उन ब्राह्मणों से बोलने को कहें। ऐसा करने से जीवन भर किये हुए सभी पाप क्षण में नष्ट हो जाते हैं।

कृष्णजिने तिलान् दत्त्वा हिरण्यं मधुसर्पिषी।

ददाति यस्तु विश्राय सर्वं तरति दुष्कलम्॥ २२॥

जो व्यक्ति काले मृगचर्म में सोना, मधु और धी रखकर ब्राह्मण को दान देता है, वह सारे पापों से मुक्त हो जाता है।

कृत्तमुद्गुभञ्ज वैशाख्याङ्ग विशेषतः।

निर्दिष्य वर्षराजाय विश्रेष्ठो मुच्यते भयात्॥ २३॥

विशेषतः: वैशाख मास में, धर्मराज को पका हुआ अन्न और जल से भरा हुआ घड़ा, ब्राह्मणों को दान देने से भय से मुक्ति मिलती है।

मुर्वन्तिलयुक्तेस्तु ब्राह्मणान् सम पञ्च वा।

तर्पयेदुदपात्राणि ब्रह्महत्यां व्यपोहनि॥ २४॥

सात या पाँच सुपात्र ब्राह्मणों को सोना और तिल के साथ जल भरे पात्र का दान करने से ब्रह्महत्या के पाप से छुटकारा मिल जाता है।

(माघमासे तु विप्रस्तु द्वादश्यां समुपोषितः।)

शुक्लाम्बवरयरः कृष्णैस्तिलहृत्वा हुताशनम्।

प्रदद्याद्ब्राह्मणेभ्यस्तु विश्रेष्ठः सुसमाहितः।

जन्मप्रथृति यत्यापं सर्वं तरति वै द्विजः॥ २५॥

अपावास्यामनुप्राप्य ब्राह्मणाय तपस्विने।

यत्किञ्चिद्वेदेवेशं ददात्तोहिष्य शङ्करम्॥ २६॥

प्रीयतामीमुरः सोमो महादेवः सनातनः।

समजन्मकृतां पापं तक्षणादेव नश्यति॥ २७॥

माघ की कृष्ण द्वादशी में उपवास कर, सफेद बख्ल धारण करके आग में काले तिल से हवन करते हुए एकाग्रचित से ब्राह्मणों को तिल दान करने से, जीवन भर के सारे पापों से मुक्ति मिल जाती है। अपावस्या के दिन, ‘उमा सहित ईश्वर सनातन महादेव प्रसन्न हों’ यह कहकर देवदेवश भगवान् शंकर के नाम से तपस्वी ब्राह्मण को जो कुछ भी दान दिया जाता है, उसके द्वारा सात जन्मों में किए गए पाप उसी क्षण नष्ट हो जाते हैं।

यस्तु कृष्णचतुर्दश्यां स्नात्वा देवं पिनाकिनम्।

आराधयेद्विजमुखे न तस्याप्ति पुनर्भवः॥ २८॥

कृष्णाष्टृष्ट्या विशेषेण धार्मिकाय द्विजातये।

स्नात्वाभ्यर्थ्य यशान्वायं यादप्रक्षालनादिभिः॥ २९॥

प्रीयता मे प्राप्तेदेवो द्वादद्रव्यं स्वकीयकम्।

सर्वणपविनिर्मुकः प्राप्नोति परमां गतिम्॥ ३०॥

जो व्यक्ति कृष्णचतुर्दशी के दिन स्नान करके, भगवान् शंकर की आराधना कर, ब्राह्मण को भोजन कराता है, उसका पुनर्जन्म नहीं होता। जो व्यक्ति कृष्णाष्टृष्टी के दिन, स्नान करके, धार्मिक ब्राह्मणों को नियमानुसार पादशक्तलन आदि द्वारा विशेष रूप से उनकी पूजा करके, प्राप्तेव हमारे प्रति “प्रसन्न हों” यह कहकर अपनी बस्तु दान करता है, वह सभी पापों से मुक्त होकर, परम गति को प्राप्त करता है।

द्विजैः कृष्णचतुर्दश्यां कृष्णाष्टृष्ट्यां विशेषतः।

अपावास्यानु वै भक्तैः पूजनीयस्त्रिलोचनः॥ ३१॥

एकादश्यां निराहारो द्वादश्यां पुरुषोत्तमम्।

अर्चयेद्ब्राह्मणमुखे स गच्छेत्परमं षटम्॥ ३२॥

कृष्णाष्टृष्टी, कृष्णचतुर्दशी और अपावस्या के दिन, भक्त ब्राह्मणों को विशेष रूप से भगवान् शिव की पूजा करनी चाहिए। इसी प्रकार एकादशी को उपवास करके, द्वादशी में पुरुषोत्तम विष्णु की पूजा करके ब्राह्मणों को भोजन करवाना चाहिए। ऐसा करने वाला परमगति को प्राप्त होता है।

एषां तिर्थिर्विष्णवी स्याद्वादशीं शुक्लपक्षके।

तस्यामाराधयेऽत्रं प्रयत्नेन जनाईनम्॥ ३३॥

शुक्लपक्ष की द्वादशी तिथि ऐसे उपासकों की वैष्णवी तिथि होती है, इसीलिए इस तिथि में जनाईन विष्णु की यत्नपूर्वक पूजा करनी चाहिए।

यत्किञ्चिद्वेदेवपीमानपुरुष्य ब्राह्मणे शुचौ।

दीपते विष्णवे वापि तदननाफलप्रदम्॥ ३४॥

इस तरह जिस किसी रूप में देव ईशान शंकर को उद्दिष्ट करके अथवा भगवान् विष्णु के नाम पर पवित्र ब्राह्मण को जो कुछ भी दान दिया जाता है, वह अनन्त फल देने वाला होता है।

यो हि यां देवतामिच्छेत्समाप्तविष्णवः।

ब्राह्मणान् पूजयेद्विजान् स तस्यासोष्ठेतुतः॥ ३५॥

जो मनुष्य अपने जिस इष्टदेव की आराधना करना चाहता है, वह बुद्धिमान् उसे उस देवता को सनुष्टि हेतु ब्राह्मणों को पूजा करे।

द्विजावां वपुरास्थाय नित्यं तिष्ठन्ति देवताः।
पूज्यन्ते ब्राह्मणालाभे प्रतिमादिव्यपि कवचित्॥ ३६॥
तस्मात्पर्वत्प्रयत्नेन तत्तत्कलतपीपुषिः।
द्विजेषु देवता नित्यं पूजनीया विशेषतः॥ ३७॥

ब्राह्मणों के शरीर का आश्रय लेकर सभी देवता नित्य वास करते हैं। कभी-कभी ब्राह्मण उपलक्ष्य न होने पर प्रतिमा आदि में भी देवताओं की पूजा की जाती है। इसीलिए सब प्रकार से तत्त् फल के इच्छुक व्यक्तियों को, सदा ब्राह्मण में ही विशेष रूप से देवता की पूजा करनी चाहिए।

विष्णुतिकापः सततं पूजयेद्दृष्टुं पुरन्दरम्।
द्वाहवर्चसकापस्तु द्वाहाणं द्वाहकामुकः॥ ३८॥

ऐश्वर्य की कामना करने वाला सदा इन्द्र की पूजा करे और ब्रह्मवर्चस की कामना वाला या वेदज्ञान की कामना वाला द्वाहा की पूजा करे।

आरोग्यकापोऽथ रविं धेनुकापो हुताशनम्।
कर्मणां सिद्धिकामस्तु पूजयेद्दृष्टुं विनायकम्॥ ३९॥

उसी प्रकार आरोग्य चाहने वाला सूर्य को, धेनु की कामना करने वाला अग्नि की और सभी कार्यों की सिद्धि चाहने वाला विनायक की पूजा करे।

धोगकापस्तु शशिनं वलकापः समीरणम्।
मुपशुः सर्वसंसाराद्यत्यतेनानर्जियेद्दरिष्म॥ ४०॥

धोगों को इच्छा करने वाला चन्द्रमा की, वलकामी वायु की और सम्पूर्ण संसार से मुक्ति की इच्छा करने वाला प्रयत्नपूर्वक विष्णु की पूजा करे।

यस्तु योगं तथा मोक्षमित्तेतज्ज्ञानमैष्वरम्।
सोऽर्चयेद्दृष्टुं विरुपाक्षं प्रयत्नेन महेश्वरम्॥ ४१॥

परन्तु जो योग, मोक्ष तथा ईश्वरीय ज्ञान की इच्छा करते हैं, उन्हें यज्ञपूर्वक विरुपाक्ष महेश्वर की पूजा करना चाहिए।

ये वाङ्मनि प्रहोगान् ज्ञानानि च महेश्वरम्।
ते पूजयन्ति भूतेन्द्रं केशवञ्चापि भोगिनः॥ ४२॥

जो महाभोग समूह को तथा विविध ज्ञान प्राप्ति की इच्छा रखते हैं, वे भोगी पुरुष भूतेन्द्र महादेव और केशव (विष्णु) की पूजा करते हैं।

वारिदस्तुसिमानोति सुखमक्षमव्यमत्रदः।

तिलप्रदः प्रजामिष्टान्दीपदश्चमुलमप्म्॥ ४३॥

जिलदान करने से (प्याड लगाने से) तृष्णि, अन्नदान से अक्षय सुख, तिलदान से अधीष्ट प्रजा (सन्तान) और दोपदान से उत्तम चक्षु प्राप्त होते हैं।

भूमिदः सर्वपानोति दीर्घमायुहिरण्यदः।

गृहदोऽश्चाणि वेशमानि रूपयदो रूपमुत्तमप्॥ ४४॥

भूमिदान करने वाला सब पा लेता है। स्वर्णदान करने से दीर्घायु, गृहदान करने से उत्तम गृह और चाँदी का दान करने वाला उत्तम रूप की प्राप्ति होती है।

वासोदश्चन्द्रसालोक्यमस्तुसालोक्यमष्टुदः।

अनदुहः त्रियं पुष्टां गोदो द्वाहस्य विष्टप्म्॥ ४५॥

वस्त्र दान करने से चन्द्रलोक में वास होता है। अन्नदान से श्रेष्ठ यान, बैलदान अनुत्तम सम्पत्ति और गोदान करने वाला ब्रह्मलोक को प्राप्त करता है।

यानश्च्याप्रदो भार्यापैष्टुर्यमयप्रदः।

धान्यदः शास्त्रं सौख्यं द्वाहदो द्वाहसात्यताम्॥ ४६॥

वाहन या शश्यादान करने से सुन्दर स्त्री की प्राप्ति होती है। ऊरु व्यक्ति को अभ्यदान देने से प्रभूत ऐश्वर्य मिलता है, धान का दान करने से शास्त्र सुख तथा वेद का दान करने से द्वाहतादात्म्य की प्राप्ति होती है।

यान्यात्य्विषयां यथाशक्ति विषेषु प्रतिपादयेत्।

वेदवित्सु विशिष्टेषु प्रेत्य स्वर्णं समश्नुते॥ ४७॥

जो व्यक्ति अपनी शक्ति के अनुसार, वेदज्ञ विशिष्ट ब्राह्मणों को धान्य अर्पित करता है, वह मरणोपरान्त में स्वर्ण भोगता है।

गतो वा संप्रदानेन सर्वपापैः प्रमुच्यते।

इत्यनानो प्रदानेन दीप्तानिर्जायते नरः॥ ४८॥

गायों को दान करने से मनुष्य सभी पापों से मुक्त होता है। इन्धन का दान करने से दीपाणि उत्पत्ति होती है (पाचनशक्ति बढ़ती है)।

फलमूलानि शाकानि भोज्यानि विविशानि च।

प्रदद्याद्वाहणेभ्यस्तु मुदा युक्तः स्वयम्भवेत्॥ ४९॥

जो ब्राह्मणों को फल, मूल, शाक तथा विविध प्रकार के भोज्य पदार्थ देता है, वह स्वयं प्रसन्नयुक्त रहता है।

औषधं न्नेहमाहारं रोगिणे रोगशानाय।

ददानो रोगरहितः मुखी दीर्घायुरेव च॥ ५०॥

जो व्यक्ति रोगी को रोग की शांति के लिए औषध, धूतादि युक्त आहार प्रदान करता है, वह निरोगी, सुखी और दीर्घायु होता है।

असिष्पत्रवनं पार्गं क्षुरधारासमचितप्।

तीव्रापश्च तरति क्षेत्रोपानाददो नरः॥५१॥

जो व्यक्ति छाता और जूता दान करता है, वह उस्तरे के समान तेज धारवाले असिष्पत्रवन नामक नरक से और तीव्र ताप को पार कर लेता है।

यद्यादिष्टतये लोके यद्यापि दद्यिते गृहे।

ततद् गुणवते देयनन्देवाक्षयमिच्छता॥५२॥

इस लोक में जो कुछ भी अति प्रिय हो और जो अपने घर में प्रिय वस्तु हो, (उसे परलोक में) अक्षयरूप से चाहने वाला ये सब वस्तुएँ गुणवान् ब्राह्मण को दान करे।

अयने विषुवे चैव ग्रहणे चन्द्रसूर्ययोः।

संक्रान्त्यादिषु कालेषु दत्तम्भिति चाक्षयम्॥५३॥

अयनकाल और विषुवसंक्रान्ति काल (जिसमें दिन-रात समान होते हैं), सूर्य और चन्द्र के ग्रहण में तथा संक्रान्त्यादि समय में दान की गई वस्तुएँ अक्षय फल प्रदान करती हैं।

प्रयागादिषु तीर्थेषु पुण्येष्वायतनेषु च।

दत्ता चाक्षयमानोति नदीषु च वनेषु च॥५४॥

प्रयागादि तीर्थ, पवित्र मन्दिर, नदी या तालाब के किनारे सुपात्र को दिया गया दान अक्षय फलोत्पादक होता है।

दानधर्मात्परो धर्मो भूतानान्नेह विद्यते।

तस्माद्विषय दातव्यं श्रोत्रियाय द्विजातिभिः॥५५॥

इस लोक में प्राणियों के लिए दान धर्म से उत्तम दूसरा कोई धर्म नहीं है, इसोलिए द्विजातियों को वेदज्ञ ब्राह्मणों को दान देना चाहिए।

स्वर्गायुर्भूतिकायेन तत्वा पापोपशानयोः।

मुमुक्षुणा च दातव्यं ब्राह्मणेभ्यस्तत्वान्वहम्॥५६॥

स्वर्ग, आयु और ऐश्वर्य की कापना वाला और मुमुक्षु के पापों के उपशमन हेतु प्रतिदिन ब्राह्मणों को दान देना चाहिए।

दीयपाननु यो मोहाद्गोविग्रामिसुरेषु च।

निवारयति पापात्मा तिर्यग्योर्न द्वजेत् सः॥५७॥

गौ, ब्राह्मण, अग्नि आदि देवों को दान देते समय जो व्यक्ति मोहवश उसे (दान-कर्म को) रोकता है, वह

पापात्मा मृत्यु के बाद पक्षियों की योनि में जन्म लेता है।

यस्तु द्रव्याज्जनं कृत्वा नार्चयेद्ब्राह्मणम् सुरान्।

सर्वस्वपणहृत्यैवं राष्ट्राद्विप्रतिवासयेत्॥५८॥

जो व्यक्ति द्रव्य-संचय कर लेने पर उस से देवताओं और ब्राह्मणों का अर्चन नहीं करता, तो (राजा) उससे सर्वस्व छीनकर, राज्य से निर्वासित कर दे।

यस्तु दुर्भिक्षवेलायामश्चाद्य न प्रयच्छति।

चियमाणेषु सत्येषु ब्राह्मणः स तु गर्हितः॥५९॥

तस्मात् प्रतिगृह्णीयात्र वै देवस्तु तस्य हि।

अकृयित्वा स्वकाद्वाष्टतं राजा विप्रवासयेत्॥६०॥

जो व्यक्ति दुर्भिक्ष के समय (भूखमरी से) मृत्यु को प्राप्त हो रहे लोगों को अत्रादि दान नहीं करता, वह ब्राह्मण निनित होता है। ऐसे व्यक्ति से दान ग्रहण करना और उसे दान देना वर्जित है। ऐसे व्यक्तियों को (पापसूचक चिह्नों से) चिह्नित कर राजा अपने राज्य से निर्वासित कर दे।

यस्तु सद्यो ददातीह न द्रव्यं धर्मसाधनम्।

स पूर्वाभ्यधिकः पापी नरके पच्यते नरः॥६१॥

जो मनुष्य सञ्जनों को धर्म प्राप्ति के साधनरूप द्रव्य का दान नहीं करता, वह तो पूर्वोक्त पापियों से भी अधिक पापों मृत्यु के पश्चात् नरक में दुःख भोगता है।

स्वाध्यायवन्तो ये विप्रा विद्यावन्तो जितेन्द्रियाः।

सत्यसंयमसंयुक्तास्त्रेष्यो दद्याद्विजोत्तमाः॥६२॥

हे द्विजोत्तमो! जो ब्राह्मण वेदाध्यायी हों, विद्यावान् और जितेन्द्रिय हों, सत्य और संयम से युक्त हों, उन्हों को दान देना चाहिए।

सुभुक्तमपि विद्वांसं धार्मिकम्भोजयेद्द्विजम्।

न तु मूर्खंपृतस्वं दशरात्रमुपोषितम्॥६३॥

यदि कोई सुभुक्त (सुसम्पत्ति) ब्राह्मण विद्वान् और धार्मिक हो, तो उसे भी भोजन कराना चाहिए। परन्तु अधार्मिक और मूर्ख ब्राह्मण यदि दस रात तक उपवासी हों, तो भी उसे भोजन नहीं कराना चाहिए।

सप्तिकृष्टमतिकृष्टम् क्षोत्रियं यः प्रयच्छति।

स तेव कर्मणा पापी दहत्यासप्तमं कुलम्॥६४॥

जो व्यक्ति निकटस्व श्रोत्रिय ब्राह्मण को छोड़कर अन्य ब्राह्मण को दान करता है, वह पापी इस पापकर्म से अपनी सात पीढ़ियों को भस्म करता है।

यदि स्थादधिको विषः शीलविद्यादिभिः स्वयम्।
तस्मै चलेन दातव्यमतिक्रम्यापि सत्त्रिधिम्॥६५॥

यदि दूर-स्थित ब्राह्मण निकटस्थ ब्राह्मण से विद्या-शील-गुणों से उससे अधिक हो तो समीपस्थ ब्राह्मण को छोड़कर भी उसको यत्पूर्वक दान देना चाहिए।

योऽर्थितं प्रति गृह्णाति ददात्यर्थितमेव वा।

तादुभी गच्छतः स्वर्गं नरकतु विपर्यये॥६६॥

इसलिए जो पूजित से दान लेता है अथवा पूजित को दान देता है, वे दोनों ही स्वर्ग में जाते हैं, उसके विपरीत होने पर नरक की प्राप्ति होती है।

न वार्यापि प्रयच्छेन नास्तिके हेतुकेऽपि च।

पापण्डेषु च सर्वेषु नावेदविदि धर्मवित्॥६७॥

अतः धर्मवेत्ता को चाहिए कि वह नास्तिक, मिथ्या, तार्किक, पाखण्डी और वेदों के ज्ञान से रहित व्यक्ति को जल भी दान न करे।

अपृष्ठङ्गं हिरण्यं गाम्भीर्णे पृथिवीं तिलान्।

अविद्वान्विगृह्णनो भस्मीभवति काष्ठवत्॥६८॥

यदि कोई अविद्वान् व्यक्ति मालपूआ, सुवर्ण, गाय, घोड़ा, भूमि और तिल का दान लेता है, तो वह लकड़ी की भौति जलकर भस्म हो जाता है।

द्विजातिष्ठो धनं लिपेत्पश्चस्तेष्यो द्विजोत्तमः।

अपि वा जातिपात्रेष्यो न तु शुद्धात्क्षेत्राणाम्॥६९॥

ब्राह्मणश्रेष्ठ को योग्य द्विजातियों से ही धन को इच्छा करनी चाहिए। अथवा क्षत्रिय और वैश्य से भी दान माँग जा सकता है परन्तु शुद्ध से कभी भी दान नहीं लेना चाहिए।

वृत्तिसङ्कोचमनिच्छेत् नेत्रेत धनविस्तरम्।

धनलोभे प्रसक्तस्तु ब्राह्मण्यादेव हीयते॥७०॥

प्रत्येक ब्राह्मण को अपनी आजीविका संकुचित करने की इच्छा करनी चाहिए। धन संचय की इच्छा न करे। धन के लोभ में प्रसक्त होकर वह ब्राह्मणत्व से नष्ट हो जाता है।

वेदानन्दीत्य सकलान् यज्ञांश्चावाप्य सर्वज्ञः।

न तां गतिप्रवापोति सङ्कोचाद्यापवाप्युत्तम्॥७१॥

संपूर्ण वेदों का अध्ययन करके और समस्त यज्ञ सम्पन्न करके भी मनुष्य उस गति को प्राप्त नहीं करता जो संकोचवृत्ति रखने वाले को प्राप्त होती है।

प्रतिग्रहस्त्रिनं स्याद्यात्रार्थनु धनं हरेत्।

स्त्रियर्थादधिकं गृह्णन् ब्राह्मणो यात्यसोगतिष्य॥७२॥

दान ग्रहण करने में हचि नहीं होनी चाहिए, जीवन यात्रा के लिए ही धन संग्रह करना चाहिए। आवश्यकता से अधिक धन संग्रह करने वाला ब्राह्मण अधोगति को प्राप्त होता है।

यस्तु स्याद्यात्रको नित्यं न स स्वर्गस्य भावनम्।

उद्भजवति भूतादि यदा चौरसत्रैव सः॥७३॥

सदा याचना करने वाला स्वर्ग का पात्र (अधिकारी) नहीं होता। वह तो चोर की तरह दूसरे प्राणियों को ठंडिगन करता रहता है।

गुरुन् भृत्याष्टोऽस्त्रिहीर्वन् अर्विष्वन्देवतातिथीन्।

सर्वतः प्रतिगृहीयात्र तु दृप्येत्स्वयन्तः॥७४॥

गुरुजनों और सेवकों के जीवन यापन हेतु अथवा देवता और अतिथियों की पूजा अर्चना के हेतु सभी वर्णों से दान ग्रहण किया जाता है। किन्तु उससे स्वयं तृप्त नहीं होना चाहिए।

एवं गृहस्थो युक्तात्मा देवतातिथिपूजकः।

वर्तमानः संयतात्मा याति तत्परमप्यदम्॥७५॥

इस प्रकार देवता और अतिथि की पूजा करने वाले संयतात्मा गृहस्थ सावधानचित्त से जीवन निर्बाह करता है वह परम पद को प्राप्त करता है।

पुत्रे नियाय वा सर्वं गत्वारण्यनु तत्त्वविद्।

एकाकी विचरेत्रियमुदासीनः समाहितः॥७६॥

अथवा अपने पुत्र पर सब कुछ छोड़कर, तत्त्वज्ञ-व्यक्ति, वन में जाकर, उदासीन और एकाग्रचित्त होकर, एकाकी विचरण करे।

एष वः कवितो धर्मो गृहस्थानां द्विजोत्तमाः।

ज्ञात्वा तु तिष्ठेत्रियां तत्त्वानुष्ठापयेद्विजान्॥७७॥

हे द्विजोत्तमो! मैंने आप लोगों को सम्पूर्ण गृहस्थधर्म कहा है। इसे जानकर नियमनिष्ठ होकर इसका पालन करें और सभी ब्राह्मणों से ऐसा आचरण करने के लिए उपदेश करें।

इति देवमनादिमेकमीर्णः

गृहस्थेण समर्वयेद्वत्सम्।

तपतीत्य स सर्वभूतयोर्नि-

प्रकृतिं वै स परं न याति जन्म॥७८॥

इस प्रकार गृहस्थधर्म के अनुसार जो अनादि देव, एक ईशान की अभ्यर्चना करता है, वह समस्त भूतों की

योनिरूप पराप्रकृति-माया को पार करके पुनः जन्म ग्रहण नहीं करता।

इति श्रीकृष्णपुराणे उत्तरादेव व्यासगीताम्
घटविशोऽध्यायः॥ २६॥

सप्तविंशोऽध्यायः (वानप्रस्थ धर्म)

व्यास उवाच

एवं गृहस्त्रमे स्थित्वा द्वितीयं भागाभ्यायुषः।

वानप्रस्थाक्रमं गच्छेत्पदारः साम्निरेव वा॥ १॥

ज्यास ओले— इस प्रकार, आयु के द्वितीय भाग (२५ से ५० वर्ष) को गृहस्त्राक्रम में स्थित करके अग्नि और पत्नी को साथ रखकर (अग्निप) वानप्रस्थाक्रम में जाना चाहिए।

निक्षिप्य भार्या पुत्रेषु गच्छेद्वन्मध्यापि वा।

दृष्ट्वापत्वस्य चापत्यं जर्जरीकृतविष्ठः॥ २॥

(नृदावस्था से) शरीर जर्जर होने पर पुत्रों के समीप भार्या को छोड़कर और अपने पुत्रों की सन्तान (नाती-पोते) को देखकर बनगमन करना चाहिए।

शुक्लपक्षस्य पूर्वाह्ने प्रशस्ते चोत्तरायणोः।

गत्वारण्यं नियमवाँसतपः कुर्यात्सपाहितः॥ ३॥

उत्तरायण में शुक्लपक्ष में किसी शुभ दिन के पूर्वाह्न में वन जाकर नियमनिष्ट और समाहित चित्त होकर तप करना चाहिए।

फलमूलानि पूतानि नित्यमाहारमाहरेत्।

यथाहारो भवेत्सेन पूजयेत्पितृदेवताः॥ ४॥

प्रतिदिन आहाररूप में पवित्र फल-मूलों का संग्रह करें और पहले उन्हीं फल एवं कन्दमूलों से देवताओं और पितरों की भी पूजा करें।

पूजयित्वातिथीनित्यं स्नान्वा चापर्यथेत्पुरान्।

गृहादादाव चास्नीयादही ग्रासान् समाहितः॥ ५॥

प्रतिदिन स्नान करके अतिथियों की सेवा करके देवताओं की पूजा करे। तपत्वात् एकाग्राचित्त होकर घर से लाकर केवल आठ कौर खाये।

जटां वै विभूषयनित्यं नखोरोमाणि नोत्सुजेत्।

स्वाव्यायं सर्वदा कुर्यात्रियच्छ्राव्यमन्यतः॥ ६॥

(ऐसे वानप्रस्थ जीवन में) नित्य जटा धारण करे, दाढ़ी और नाथून न काटे, सदा बेदाध्ययन करे और अन्य विषय में मौन रहे।

अग्निहोत्रञ्च युहुयात्पञ्च यज्ञान् समाधरेत्।
मुन्यन्विर्विविष्टवैर्वैः शाकपूलफलेन च॥ ७॥

उसे दोनों समय अग्निहोत्र और पंचवृङ् का सम्पादन करना चाहिए। वे यज्ञादि मुनियों के अप्र और विविध वन्य— साग, मूल तथा फल से सम्पन्न करें।

चीरवासा भवेत्स्तिवं स्नाति त्रिवर्णं शुचिः।
सर्वभूतानुकृष्णं स्यात् प्रतिश्रहविवर्जितः॥ ८॥

सदा बल्कल धारण करे। तीनों संध्याओं में स्नान करके पवित्र रहे और दान या प्रतिश्रह स्वीकार न करते हुए, सभी प्राणियों के प्रति दयाभाव रखें।

स दर्शपौर्णमासेन यज्ञेत नियतं द्विजः।
ऋषेष्वाक्ययणे चैव चातुर्मास्यानि चाहरेत्॥ ९॥

वह द्विज नियमितरूप से दर्शयाग तथा पौर्णमास यज्ञ करे तथा नवशस्त्राणि (नूतन धान्य से होने वाला यज्ञ) और चातुर्मास्य याग भी सम्पादित करे।

उत्तरायणञ्च ऋग्नो दक्षस्यायनमेव च।
वासनैः शारदैर्मैर्यैर्मृत्यैः स्वयमाहतैः॥ १०॥

बसन्त और शरद ऋतु में उत्पत्त होने वाले अत्रों को स्वयं एकत्रित करके नियमानुसार उत्तरायण और दक्षिणायन यज्ञ सम्पन्न करे।

पुरोडाशांष्ट्राङ्गृहैव द्विविष्टं निवित्पृथक्।
देवताप्यक्षु तद्वत्वा वन्यं मेष्यतारं हविः॥ ११॥

पुरोडाश और चरु दोनों को पकाकर विधि अनुसार पृथक्-पृथक् तैयार करके, उस अतिशय पवित्र बनधान्य को देवताओं को समर्पित करने के पश्चात् स्वयं ग्रहण करे।

शेषं समुण्डुकीत लवणञ्च स्वयं कृतम्।
कर्जयेन्युपांसानि भौमानि कवचानि च॥ १२॥

भूस्तुणं शिशुकृहैव इत्यातकफलानि च।
न फालकृष्टमशीयादुत्सृष्टमपि केनवित्॥ १३॥

भोजन में स्वयं तैयार किया हुआ नमक प्रयोग करना चाहिए। वानप्रस्थी को शहद, मांस, भूमि से उगने वाले कुकुरमुसे, भूसूर्ण (नामक घास) और चकोतीरा नहीं खाना चाहिए। हल से जोती हुई भूमि में उत्पत्त अन्नादि और किसी की ल्पानी हुई वस्तु नहीं खानी चाहिए।

न ग्रामजातान्यातोऽपि पुष्पाणि च फलानि च।
श्रावणेनैव विधिना वाह्नि परिचरेत्सदा॥ १४॥

भूख से पीड़ित होने पर वह गाँव में उत्तम फूल या फल ग्रहण न करे और श्रावणी विधि के अनुसार सदैव अग्नि की परिचर्या करे।

न दुहोत्सर्वभूतानि निर्दुन्हो निर्भयो भवेत्।
न नक्तज्ञैवपश्नीयात् रात्रौ ध्यानपरो भवेत्॥ १५॥

सभी प्राणियों के साथ द्वोह नहीं रखना चाहिए। सदैव राग-देवादि दुन्हों से मुक्त और निर्भय रहना चाहिए। रात्रि को भोजन न करे और सदा ध्यान तत्पर रहना चाहिए।

जितेन्द्रियो जितक्रोधस्तत्त्वज्ञानविधिनकः।
ब्रह्मचारी भवेत्क्रित्यं न पलीपयि संश्रयेत्॥ १६॥

जितेन्द्रिय, जितक्रोध और तत्त्वज्ञान में चिन्तन करते हुए नित्य ब्रह्मचर्य व्रत का पालन करे तथा पली के साथ भी सहवास न करे।

यस्तु पल्ल्या वनं गत्वा भैयुनं कामत्क्षयेत्।
तद्वतं तस्य लुप्येत् प्रायश्चित्तीयते द्विजः॥ १७॥

जो व्यक्ति वन में जाकर कामासक्त होकर पली के साथ समागम करता है, उसका व्रत भंग हो जाता है। ऐसे द्विज प्रायश्चित्त के योग्य होता है।

तत्र यो जायते गर्भो न संसृष्ट्यो भवेद्दिवः।
न च वेदेऽशिकारोऽस्य तद्वशेऽप्येव मेव हि॥ १८॥

उस वानप्रस्थाश्रम में जो उत्पत्र सन्तान हो, तो द्विज को उसका स्पर्श नहीं करना चाहिए। उस वालक का तथा उसके वंशजों का वेदाध्ययन में अधिकार नहीं रहता।

अष्टःश्यायत नियतं सावित्रीजपतत्परः।
शरण्यः सर्वभूतानां संविधागरतः सदा॥ १९॥

नित्य भूमि पर सोना चाहिए। गायत्री का जप करने में सदा तत्पर रहना चाहिए। सभी प्राणियों को शरण देने का प्रयास करना चाहिए और सदैव (अतिथि आदि का) भाग देने में रत होना चाहिए।

परिवादं पृथावादं निद्रालस्यं विवर्जयेत्।
एकाग्निरनिकेतः स्यातोक्षितां भूषिपाश्रयेत्॥ २०॥

किसी की निनदा या बादविवाद, असंत्य भाषण, निद्रा और आलस्य का त्याग करना चाहिए। एकाग्नि होना, घर के बिना रहना और जलसंचित स्वच्छ भूमि पर आश्रय लेना चाहिए।

पृष्ठः सह चरेद्वा यस्तैः सहैव च संविशेत्।
शिलायां वा शर्करायां शयीत् सुसमाहितः॥ २१॥

वहां अरण्य में मृगों के साथ घूमना, उनके साथ सोना और पत्थर या रेती पर एकाग्नित होकर शयन करना चाहिए।

सद्यः प्रश्नालको वा स्यान्याससम्भूत्यकोऽपि वा।
पण्मासनिवद्यो वा स्यात् समानिवद्य एव च॥ २२॥

तत्काल वस्त्र धोकर पहनना चाहिए। एक मास तक खर्च करने योग्य फलादि संग्रह करे अथवा छः महीने या एक साल तक का नीवारादि अत्र संग्रह किया जा सकता है।

त्यजेदभूयुजे मासि संपन्नं पूर्वविनितम्।
जीर्णानि वैय वासांसि शाकपूत्सफलानि च॥ २३॥

आक्षिन मास में उत्पत्र तथा पूर्व संचित नीवारादि से वच हुए अंशों, जीर्ण वस्त्र और शाक-फल-मूलादि का त्याग करना चाहिए।

दनोलूखलिको वा स्यालकापोतीं वृत्तिपाश्रयेत्।
अशमकुद्धो भवेद्वापि कालपव्युगेव च॥ २४॥

दौतों को ही ओखली बनावे अर्थात् अत्रादि सब दौतों से ही चवाकर खाना चाहिए। कपोत की तरह चुगकर खाना नहीं चाहिए। अथवा पत्थर से चूर्ज बनाकर भोजन करना चाहिए। समय पर पको हुई वस्तु खाना चाहिए।

नक्तं चात्रं सप्तश्नीयहिवा चाहत्य शक्तिः।
चतुर्थकालिको वा स्यात्स्वाद्वा चाष्ट्रपक्षलिकः॥ २५॥

दिन में अपने सामर्थ्यनुसार अत्रादि जुटाकर रात्रि को भोजन करना चाहिए। अथवा चौथे काल में अर्थात् एक दिन उपवास रहकर दूसरे दिन रात को अथवा तीन दिन उपवास रहकर चौथे दिन रात को भोजन करना चाहिए।

चान्द्रायणविद्यानैर्वा शुक्ले कृष्णे च वर्तयेत्।
प्लवे प्लवे सप्तश्नीयद्विजाग्रन् कथितान् सकृद्॥ २६॥

शुक्ल और कृष्ण पक्ष में पृथक-पृथक् चान्द्रायण व्रत की विधि के अनुसार भोजन करना चाहिए। अथवा पूर्णिमा और अमावस्या के दिन उत्ताले हुए जी के पिण्ड को खाना चाहिए।

पुष्पपूलफलैर्वापि केवलैर्वर्तयेत्सदा।
स्वापाविकैः स्वयं शीर्णविखानसप्तते स्थितः॥ २७॥

अथवा वैखानस मुनियों के द्रवत को आश्रय करके स्वाभाविक रूप से पक कर भूमि पर गिर हुए फल, मूल पुष्पादि से ही केवल निर्वाह करना चाहिए।

भूमौ वा परिवर्तेत लिष्टेष्टा प्रपदैर्दिनम्।
स्थानासनाभ्यां विहरेन कवचिद्दैर्यमुत्सजेत्॥ २८॥

भूमि पर लेटते रहे अथवा पंजों पर खड़े रहकर दिवस ब्यतीत करे। थोड़ी देर खड़े रहे और थोड़ी देर बैठे। किसी भी समय धैर्य का त्याग न करें।

ग्रीष्मे पंचतपास्तद्वार्षीस्वधावकाशकः।
आर्द्रवासामु हेषते क्रमशो वर्द्धवैस्तपः॥ २९॥

ग्रीष्म ऋतु में पांच ग्रकार की अग्नियों का सेवन करते हुए, वर्षाकाल में खुले आकाश में रहते हुए और हेमन्त (शीतकाल) में गीला वस्त्र पहनकर क्रमशः तपस्या में वृद्धि करनी चाहिए।

उपस्मृश्य त्रिष्टवणं पिष्टेवाञ्छ तर्पयेत्।
एकपादेन तिष्ठेत मरीचीन्द्रा पिवेनदा॥ ३०॥

प्रतिदिन तीनों काल में रान करके पितरों और देवताओं को तर्पण करना चाहिए। एक पैर पर खड़ा रहे और सदा (मूर्य को) किरणों का मुख से सेवन करें।

पंचानिर्दूषणो वा स्यादुम्भपः सोमपणितवा।
पथः एवेच्छुक्लपक्षे कृष्णपक्षे च गोपयम्॥ ३१॥

पंचानि तस होकर गर्भ धुआँ पीना चाहिए। कृष्णपायी और सोमपायी होना चाहिए। शुक्लपक्ष में दूध और कृष्णपक्ष में गोबर का सेवन करना चाहिए।

शीर्षपर्णाशनो वा स्यात्कृच्छ्रीर्वा वर्तयेत्सदा।
योगाभ्यासरत्त्वैव रुद्राध्यायी भवेत्सदा॥ ३२॥

अवर्वदिशिरसोऽव्येता वेदानाभ्यासतत्परः।
यमान् सेवेत सततं नियमांशुप्ततन्त्रितः॥ ३३॥

पेड़ से गिरे सूखे पत्तों को खाकर रहना चाहिए अथवा सैद्धेव प्राजापत्यादि व्रत, योगाभ्यास, रुद्राध्याय का पाठ, अथर्ववेद के शिरोभाग का अध्ययन और वेदान्त के अभ्यास में लगा रहना चाहिए। सदा संयमी होकर यम-नियमों का सेवन करना चाहिए।

कृष्णाजिनः सोतरीयः शुक्लयज्ञोपवीतवान्।
अथ धाम्नोन् समारोप्य स्वात्मनि व्यानतत्परः॥ ३४॥

अनग्निरनिकेतः स्वान्मुनिर्णेष्टपरो भवेत्।

उत्तरीय, काला मृगचर्म और खेत यज्ञोपवीत धारण करना चाहिए। अन्त में आत्मा में अग्नि को आरोपित करके व्यानतत्पर रहना चाहिए। इस प्रकार अग्नि रहित तथा नियतस्थान रहित होकर योक्ष के प्रति तत्पर होना चाहिए।

तापसेष्वेव विश्रेषु यात्रिकं भैक्ष्यमाहरेत्॥ ३५॥

गृहमेष्विषु चान्येषु द्विजेषु वनवासिषु।
आपादाहत्य चाश्नीयादष्टौ श्रासान्वने वसन्॥ ३६॥

प्रतिशृङ्ख पुटेनैव पाणिना शकलेन वा।

अपनी जीवन यात्रा हेतु तपस्वी ब्राह्मणों के याहं से आवश्यक भिक्षा लानी चाहिए। अथवा यदि अन्य वनवासी गृहस्थ द्विजातियों से भी भिक्षा माँगी जा सकती है। यदि ऐसी भिक्षा भी न मिले तो किसी एक ग्राम से पते के दोने, मिट्टी के बर्तन या औजली में भिक्षा लाकर, वन में रहकर सिर्फ आठ कौर भोजन करना चाहिए।

विक्षिष्ठोपनिषद् आत्मसंसिद्धये जपेत्॥ ३७॥

विद्याविशेषान् सावित्री रुद्राध्यायं तत्त्वैव च।
महाप्रस्थानिकं वासी कुर्यादनशननु वा।
अग्निश्वेशमन्यद्वा ब्रह्मार्पणविद्वी स्थितः॥ ३८॥

आत्मशुद्धि के लिए विभिन्न उपनिषदों का पाठ करना चाहिए और विशेष विद्याएँ, सावित्री तथा रुद्राध्याय का पाठ भी करना चाहिए। तत्प्रातः अन्त में शरीर को ईश्वरार्पण करने की विधि में स्थित होकर अर्थात् ब्रह्मार्पण होकर अनशन या अग्नि प्रवेशरूप महाप्रस्थानिक कार्य (मृत्यु का उपाय) या अन्य उपाय करना चाहिए।

येन सम्यग्यपाश्रयं शिवं संश्रयन्त्यशिवपुञ्जनाशनम्।
ते विश्विति पदमैश्वरं पदं यानि यत्र गतमस्य संस्थिते॥ ३९॥

जो लोग इस (वानप्रस्थ) आश्रम में पापों के समूह का नाश करने वाले भगवान् शिव का आश्रम साम्यक् रूप से ग्रहण करते हैं वे उस ईश्वरीय पद को प्राप्त कर स्वर्ग में जाकर स्थित हो जाते हैं।

इति श्रीकूर्मपुराणे उपविशागे व्यासगीतामु वानप्रस्थाश्रमर्थम्
नाम सप्तविशेषाद्व्यायः॥ ३७॥

अष्टाविंशोऽव्यायः

(संन्यासर्थ कथन)

व्यास उत्थाव

एवं वनाश्रमे स्थित्वा तृतीयं भागमायुषः।
चतुर्दश्यायुषो भागं संन्यासेन नयेत् क्रमात्॥ १॥

१. कुछ पुस्तकों में यह स्तोक नहीं मिलता है।

व्यासजी ने कहा— वानप्रस्थाश्रम में इस प्रकार रहते हुए,
आयु का तीसरा भाग समाप्तकर आयु के बौद्धे भाग में
संन्यास धर्म का पालन करना चाहिए।

अग्नीनात्मनि संस्थाप्य द्विजः प्रवृजितो भवेत्।
योगाभ्यासरतः ज्ञानो द्वाहविद्वापरायणः॥ २॥

योगाभ्यास में संलग्न रहने वाले शान्तचित्त, ब्रह्मविद्या-
परायण ब्राह्मण को आत्मा में अग्नि की स्थापना कर प्रवृज्या
ग्रहण करनी चाहिए।

यदा मनसि सङ्कातं वैतृष्ण्यं सर्ववस्तुषु।
तदा संन्यासमिच्छन्ति पतितः स्वाहृष्ट्यये॥ ३॥

जब मन में सब वस्तुओं के प्रति तृष्णा समाप्त हो जाए,
तभी संन्यास लेना चाहिए। अन्यथा इसके विपरीत होने पर
पतित होना पड़ता है।

प्राजापत्याप्रिरूपेष्टुमनेचीमध्यवा पुनः।
दानः एकवक्षयायोऽसौ द्वाहाश्रममुपाश्रयेत्॥ ४॥

सर्वप्रथम इन्द्रियों को वश में करके, प्राजापत्य या आग्नेय
यज्ञ करना चाहिए। फिर कथाय— राग-द्वेषादि मल रहित
होकर संन्यासाश्रम में प्रवेश करना चाहिए।

ज्ञानसंन्यासिनः केचिद्देदसंन्यासिनः परे।
कर्मसंन्यासिनस्त्वन्ये विविधाः परिकीर्तिः॥ ५॥

ज्ञान संन्यासी, वेद संन्यासी और कर्म संन्यासी के भेद से
संन्यासी तीन प्रकार के कहे गये हैं।

यः सर्वसङ्गनिर्मुक्तो निर्दुन्दृतैव निर्भयः।
प्रोच्यते ज्ञानसंन्यासी स्वात्मन्येवं व्यवस्थितः॥ ६॥

जिनकी किसी विषय में आसक्ति न हो, दुन्दूं से मुक्त
भयरहित और आत्मा के प्रति चिन्तनशील हो, वे
ज्ञानसंन्यासी कहलाते हैं।

वेदपेताभ्यसेत्रित्य निर्दुन्दू निष्ठरिग्रहः।
प्रोच्यते वेदसंन्यासी मुपुर्क्षविजितेन्द्रियः॥ ७॥

जो दुन्दू और दान से मुक्त रहकर नित्य वेदाभ्यास करते
हैं, मोक्षाभिलाषी और इन्द्रियों को जीतने वाले वे लोग
वेदसंन्यासी कहलाते हैं।

यस्त्वग्नीनात्मसात्कृत्वा द्वाहार्णपरो द्विजः।
स ह्येयः कर्मसंन्यासी महायज्ञपरायणः॥ ८॥

जो ब्राह्मण सभी अग्नियों को आत्मसात् करके ब्रह्म को
सर्वस्व अर्पित कर देते हैं, महायज्ञ में परायण वे
कर्मसंन्यासी के नाम से जाने जाते हैं।

प्रयाणामपि द्युतेण ज्ञानी स्वप्नविको मतः।

न तस्य विद्यते कार्यं न लिङ्गं वा विषष्टिः॥ ९॥

इन तीन प्रकार के संन्यासियों में जो ज्ञानसंन्यासी कहे
जाते हैं वे ही ब्रेष्टतम होते हैं। ऐसे संन्यासियों का कोई
कर्म, चिह्न और परिचय नहीं होता।

निर्भयो निर्भयः ज्ञानो निर्दुन्दू निष्ठरिग्रहः।

जीर्णकौपीनवासाः स्यात्रग्नो वा व्यानतत्परः॥ १०॥

इन्हें मयता रहित, निर्भय, ज्ञान, दुन्दू और दान से मुक्त
रहकर, जीर्ण कौपीन या वस्त्र धारण करके अथवा नग
होकर ध्यान में लोन होना चाहिए।

द्वाहाचारी मितशासी शामत्त्वं समाहरेत्।

अध्यात्मपतिरासीत निरपेक्षो निरामिषः॥ ११॥

ब्रह्मचारी को सौमित्र भोजन ग्रहण करना चाहिए और
गाँव से अब संग्रह करके लाना चाहिए। सदैव ब्रह्मचिन्ता में
लोन रहना, निःस्मृह होकर मन में किसी विषय की इच्छा
नहीं रखनी चाहिए।

आत्मनैव सहायेन सुखार्दी विद्यरेदिह।

नाभिनन्देह भरणं नाभिनन्देत जीवितम्॥ १२॥

इस संसार में आत्मा की ही सहायता से (अर्थात्
एकाकी) भोक्त की इच्छा करते हुए विचरना चाहिए। न तो
मृत्यु से प्रसन्न होना चाहिए और न जन्म प्राप्त करने से।

कालघेव प्रतीक्षेय निदेशाभ्युक्तो यथा।

नाश्येतत्वं न वक्तव्यं श्रोतव्यं न कदाचन॥ १३॥

एवं ज्ञात्वा परो योगी द्वाहापूर्याय कल्पते।

जैसे सेवक स्वामी के आदेश की प्रतीक्षा करता रहता है,
उसी प्रकार केवल काल या मृत्यु की प्रतीक्षा करनी चाहिए।
वेदों का अध्ययन, उपदेश और श्रवण नहीं करना चाहिए—
ऐसा ज्ञान रखकर तत्पर रहने वाले संन्यासी, ब्रह्मत्व प्राप्त
करते हैं अर्थात् उन्हें मुक्ति मिल जाती है।

एकवासाभ्यवा विद्वान् कौपीनाच्छादनसाथा॥ १४॥

मुण्डी शिखी वात्र भवेत्विदण्डी निष्ठरिग्रहः।

काणायवासाः सततन्यानयोगपरायणः॥ १५॥

श्रावने दृक्षपूले वा वसेत्वालयेऽपि वा।

सपः शत्रौ च मित्रे च तथा मानापमानयोः॥ १६॥

विद्वान् संन्यासी एकाकी रहे या एकवस्त्री अथवा कौपीन
धारण करे। मस्तक में मुँडन कराकर एक शिखा रखे।
गृहत्यागी होकर त्रिदण्ड (वाक्, मन और कामरूपी दण्ड)

धारण करें। काषाय वस्त्र पहनकर, गाँव की सीमा पर किसी पेड़ के नीचे या मन्दिर में ढैठकर, ध्यान या योग की साधना करें। शत्रु और मित्र, मान और अपमान में सम्भाव रखें।

भैक्ष्येण वर्तयेत्रित्यप्रकाशादी भवेत्कथित्।

यस्तु मोहेन वान्यस्मादेकाशादी भवेत्वितः॥ १७॥

न तस्य निष्कृतिः क्वचिद्दुर्घशास्त्रेषु कथ्यते।

जो संन्यासी मोहवश या किसी अन्य कारण से प्रतिदिन एक ही व्यक्ति से अब्र माँगकर भोजन करता है, उसके इस पाप का प्रायक्षित धर्मशास्त्र में कहीं नहीं है।

रागद्वेषविमुक्तात्माः समलोष्टाश्पकाङ्गनः॥ १८॥

प्राणिहिंसानिवृत्तश्च यौनी स्वात्सर्वनिःस्युहः।

हृष्टपूर्वं न्यसेत्याद वस्त्रपूर्वं जले पिषेत्।

शास्त्रपूर्वां वदेहाणीं यनःपूर्वं समाचरेत्॥ १९॥

संन्यासी को रागद्वेष से विमुख होकर पत्थर के टुकड़े और स्वर्ण को एक समान समझना चाहिए। प्राणि-हिंसा से निवृत्त और निःस्युह होकर, मौन धारण कर लेना चाहिए। मार्ग को देख देखकर पैर रखना और कपड़े से छानकर, जल पीना चाहिए। शास्त्रों से पवित्र की गई वाणी बोलना और मन को पवित्र करने वाले कायीं को करना चाहिए।

नैकत्र निवसेदेषे वर्षाप्योऽन्यत्र भिक्षुकः।

सानशीघ्रतो नित्यं कमण्डलुकरः शुचिः॥ २०॥

बरसात को छोड़ अन्य झूतुओं में भिक्षुक को एक ही स्थान पर निवास नहीं करना चाहिए। मात्र कमण्डल धारण करके, पवित्र रहकर सदैव आन और शुद्धता में प्रवृत्त रहना चाहिए।

द्वात्मचर्यस्तो नित्यं बनवासतो भवेत्।

मोक्षशास्त्रेषु निरतो द्वाहाचारी जितेन्द्रियः॥ २१॥

द्वाष्टाहृष्टारनिर्मुको निन्दापैशुन्यविर्जितः।

आत्मज्ञानगुणोपेतो यदिर्मोक्षमपानुयात्॥ २२॥

सदा ब्रह्मचारी होकर बनवासी होना चाहिए। मोक्षशास्त्र में रत, ब्रह्मचारी इन्द्रियजित, दम्भ तथा अहंकार से मुक्त, निन्दा और कुटिलता से परे, आत्मज्ञान के गुणों से युक्त संन्यासी मोक्ष प्राप्त करते हैं।

अध्यसेत्सततं वेदं प्रणवारुद्यं सनातनम्।

स्नात्वाचम्य विद्यानेन शुचिर्देवालयादिषु॥ २३॥

विधिवत् आन और आचमन करके, पवित्र होकर, देवालयादि में निरन्तर ज्ञानरूपी सनातन प्रणव का जप

करना चाहिए।

यज्ञोपवीती शानात्मा कुशपाणिः समाहितः।

यौतकाशाचवसनो भस्मच्छ्रतनूसुहः॥ २४॥

अधियज्ञ द्वाह जपेदाष्टिदैविकमेव वा।

आध्यात्मिकं च सततं वेदान्ताभिहितं च यत्॥ २५॥

यज्ञोपवीत धारण करके, कुशा हाथ में लेकर, आत्मा को ज्ञान छान करके, धुला हुआ भगवा वस्त्र पहनकर और देह के सारे रोमों को भस्म से ढैककर एकाग्रचित्त से, यज्ञ सम्बन्धी और देवता विषयक तथा अध्यात्म-सम्बन्धित वेदान्तशास्त्र कथित श्रुति-समूहों का निरन्तर पाठ करना चाहिए।

पुत्रेषु चात्र निवसन् द्वाहाचारी यतिर्मुनिः।

वेदमेवाच्यसेत्रित्यं स याति परमाहृतिम्॥ २६॥

जो ब्रह्मचारी और मौनब्रतावलम्बी संन्यासी पर्णशास्त्र में रहकर प्रतिदिन वेदमन्त्रों का अध्यास करता है, वह उत्कृष्ट गति प्राप्त करता है।

अहिंसा सत्यस्तेयं द्वाहचर्यं तपः परम्।

क्षमा दद्या च सन्तोषो व्रतान्यस्य विशेषतः॥ २७॥

अहिंसा, सत्य, अस्तेय, द्वाहचर्य, क्षमा, दद्या और सन्तोषादि द्रितों का विशेषरूप से पालन करना संन्यासी का कर्तव्य है।

वेदान्तज्ञाननिष्ठो वा पञ्चयज्ञान् समाहितः।

ज्ञानध्यानसमायुक्तो भिक्षार्थं नैव तेन हि॥ २८॥

संन्यासी को वेदान्तशास्त्र का ज्ञाता होना चाहिए अथवा भिक्षा में प्राप्त अन्न के द्वारा, ज्ञान और ध्यान युक्त होकर एकाग्र मन से पंचमहायज्ञ सम्पन्न करना चाहिए।

होमपन्नाङ्गेत्रित्यं काले काले समाहितः।

स्वाध्यायज्ञान्वहं कुर्वात्साक्षिर्वी सत्ययोजिष्ठत्॥ २९॥

तीनों काल में एकाग्रचित्त से हवन के मन्त्रों का पाठ करना चाहिए और प्रतिदिन वेदों का अध्ययन तथा दोनों संध्या में गायत्री का जप करना चाहिए।

ततो ध्यायीत तं देवमेकान्ते परमेश्वरम्।

एकान्ते वर्जयेत्रित्यं कामं क्रोधं परिश्राहम्॥ ३०॥

तदनन्तर एकान्त में परमेश्वर का ध्यान करना चाहिए तथा काम, क्रोध और दान का पूर्णरूपेण त्याग करना चाहिए।

एकवासा द्विवासा वा शिखी यज्ञोपवीतवान्।

कमण्डलुकरो विद्वान् त्रिदण्डी याति तत्परम्॥ ३१॥

एक या दो वस्त्रधारी, शिखा और यज्ञोपवीतधारी, कमण्डलु और त्रिदण्ड धारण करने वाला विद्वान् संन्यासी ही परम पद प्राप्त करता है।

इति श्रीकृष्णपुराणे उत्तराद्वेषं व्यासगीताम्
यतिवर्मेऽशुभिशोऽध्यायः॥ २८॥

एकोनर्विशोऽध्यायः (यतिवर्ष कथन)

व्यास उवाच

एवं स्वाक्षरमनिष्टानां यतीनां नियतलभ्यनाम्।
भैश्येण वर्तनं प्रोक्तं फलमूलैरस्यापि वा॥ १॥

व्यासजी बोले— इस प्रकार अपने आश्रम के प्रति निष्ठावान् और एकाग्रचित्त यतियों का जीवन निर्वाह भिक्षा में प्राप्त अन्य या फल-फूल से कहा गया है।

पुनः संन्यासी धर्मं
एककालं चरेद्दैक्षं न प्रसन्नेत विस्तरे।
भैश्यप्रसन्नो हि चर्तिर्विषयेष्वपि सञ्जन्ति॥ २॥

भिक्षा के लिए भी संन्यासी को एक समय गृहस्थ के यहाँ जाना चाहिए और अधिक लोगों के पास न जाय, क्योंकि भिक्षा के प्रति अधिक आसक्ति होने से विषय वस्तुओं के प्रति भी आसक्ति हो जाती है।

सप्तागाराद्विष्टेऽक्षमलाभे तु पुन्द्विष्टे।
प्रश्नाल्यं पात्रे भुजीत अद्विः प्रश्नालयेत्पुनः॥ ३॥
अव्याद्यन्वदुपादाय पात्रे भुजीत नित्यशः।
भुक्त्वा तत्संपूजेत्पात्रं यात्रापात्रमलोल्युपः॥ ४॥

केवल सात घण्टों से ही भिक्षा माँगनी चाहिए। ऐसा करने पर भी यदि पूरी भिक्षा न मिले तो पुनः एक बार भिक्षा माँगी जा सकती है। पात्र को धोकर, उसमें भोजन करना चाहिए और भोजन के बाद पुनः धो लेना चाहिए। अथवा नया पात्र लेकर उसमें भोजन करना चाहिए। परन्तु पात्र को धोकर काम चलाना हो तो लोभ किए बिना भोजन करना चाहिए।

विष्टूमे सत्रपुसले व्यद्विष्टे भुक्तवज्जने।
वृत्ते ल्लावसम्पाते भिक्षां नित्यं विष्टिरेत्॥ ५॥

गृहस्थ की रसोई से भुआँ बन्द हो जाए, ओखली और

मूसल का काम समाप्त हो जाए, अग्नि शांत हो जाए, घर के सारे लोग भोजन कर चुके हों, तब संन्यासी गोल शराब में भिक्षा लेने चूमना चाहिए।

गोदोहपात्रं तिष्ठेत कालमिष्टुर्खोमुखः।
भिष्टेत्युक्त्वा सकृत्यामस्तीयाद्वाग्यतः शुचिः॥ ६॥

'भिक्षा दो' इतना कहकर भिक्षुक गाय दुहने में लगाने वाले समय तक, सिर ढुका कर खड़ा रहे और मौन रहकर पवित्र भाव से एक बार भोजन करके सन्तुष्ट हो।

प्रक्षाल्यं पाणीं पादौ च समाधाय यथाविधि।
आदित्ये दर्शयित्वात्रं भुजीत प्राहसुखः शुचिः॥ ७॥

हाथ पैर धोकर, नियमानुसार आचमन करके सूर्य को अत्र दिखाकर, पूर्वाभिमुख और पवित्र होकर भोजन करना चाहिए।

हुत्वा प्राणाहुतीः पष्ठं ग्रासानष्टौ समाहितः।
आचाय्य देवं द्रव्याणां व्यातीतं परमेष्वरम्॥ ८॥

पहले 'प्राणाय स्वाहा' मन्त्र का उच्चारण करके, पैंच प्राणाहुतीयाँ देकर, एकाग्रचित से आठ ग्रास भोजन करें और बाद में आचमन करके, सर्वब्लाष्टक देव परमेष्वर का ध्यान करना चाहिए।

अलाङ्कु दारुपात्रं च मृण्यवं वैष्णवं ततः।
चत्वार्येतानि पात्राणि मनुराह प्रजापतिः॥ ९॥

प्रजापति मनु ने, संन्यासियों के लिए लौकी, लकड़ी, मिट्टी और बाँस से बने चार प्रकार के पात्र बतलाए हैं।

प्राप्तात्रे पराप्राते च मध्यरात्रे तथैव च।
सम्यास्यनिविशेषेण चिन्तयेत्तित्यपीश्वरम्॥ १०॥

रात्रि के प्रथम, मध्यम और अन्तिम प्रहर तथा संध्या समय अग्नि विशेष के द्वारा ईश्वर का चिन्तन करना चाहिए।

कृत्वा हृत्पद्मनिलये विश्वाख्यं विश्वसम्बवम्।
आत्मानं सर्वभूतानां परस्तात्मपातः स्थितपृ॥ ११॥

सर्वस्यादरवृत्तानामापानं ज्योतिरव्ययम्।
प्रथानपुरुषातीतमाकाशकुहरं शिवपृ॥ १२॥

विश्वरूप फिर भी विश्व के कारण स्वरूप सर्वभूतात्मा, तमोगुण में विद्यमान फिर भी तमोगुणातीत, सभी प्राणियों के आधार, अव्यक्त, आनन्दमय, अनश्वर, प्रकृति पुरुष से परे, आकाशरूप, मंगलमय ज्योति का पहले हृदयकमल में ध्यान करना चाहिए।

तदनः सर्वभावानामीक्षरं ब्रह्मस्तिर्णम्।
व्यायेदनादिमध्यानतपानन्दादिगुणालयम्॥ १३॥
महानं पुरुषं ब्रह्म ब्रह्मणं सत्यमव्ययम्।
तस्मादित्यसंकाशं महेशं विश्वरूपिणम्॥ १४॥
तत्पश्चात् उस ज्योति के बीज सर्वलोकेश्वर ब्रह्मस्वरूप आदि, मध्य, अन्त रहित, आनन्दादि गुणों के आलयरूप, महापुरुष अनश्वर, सत्यस्वरूप, सर्वव्यापी, परम ब्रह्म, वालसूर्य के समान विश्वरूपी भगवान् महेश का ध्यान करना चाहिए।

ओऽनुरोद्धाय चात्मानं संस्थाप्य परमात्मनि।
आकाशे देवपदीशानं व्यायीताकाशमात्यगम्॥ १५॥
आकाशरूप परमात्मा में ओंकार के द्वारा आत्मा को स्थापित करके आकाश के मध्य स्थित देव ईशान (अर्थात् शंकर भगवान्) का ध्यान करना चाहिए।
कारणं सर्वभावानामानन्दैकसमाश्रयम्।
पुराणं पुरुषं शुभं व्यायमनुच्छेत व्यवनात्॥ १६॥

सभी भावपदार्थों के कारण, आनन्दकरूप, शुभ, पुराण पुरुष का ध्यान करने से, सांसारिक बन्धनों से मुक्त हो जाता है।

यद्वा गुहायां प्रकृतं जगत्संमोहनातये।
विचिन्त्य परमं व्योमं सर्वभूतैककारणम्॥ १७॥
जीवनं सर्वभूतानां यत्र लोकः प्रलीयते।
आनन्दं ब्रह्मणः सूक्ष्मं यत्पश्यति मुमुक्षवः॥ १८॥
तन्मध्ये निहितं ब्रह्म केवलं ज्ञानलक्षणम्।
अनन्तं सत्यमीशानं विचिन्त्यासीत संवतः॥ १९॥

अथवा संसार सम्प्रोहन के आलयरूपी मूलप्रकृतिरूप गुहा के मध्य स्थित, सभी ग्राणियों के एकमात्र कारण, उनका जीवन, उनका लयस्थान— ब्रह्मानन्दस्वरूप और जिसे मोक्ष की कामना करने वाले लोग सूक्ष्मरूप से देख सकते हैं, ऐसे परम ऋग्मात्रार का चिन्तन करके, उसके (व्योमाकार के) बीच स्थित केवल ज्ञानरूप, अनन्त, सत्य और सर्वेषां परब्रह्म का चिन्तन करते हुए एकाग्रचित्त होकर स्थित रहना चाहिए।

गुहाद्युहातमं ज्ञानं यतीनामेतदीरितम्।
योऽनुतिष्ठेन्महेशेन सोऽश्नुते योगमैष्टरम्॥ २०॥
मैने, संन्यासियों के लिए, अत्यन्त गुहतम ज्ञान की बातें बताईं। जो व्यक्ति सदा इसका पालन करेगा वह ऐश्वर्य योग

प्राप्त करेगा।

तस्माद्ब्रह्मनरतो नित्यमात्पविद्यापरायणः।
ज्ञानं समाश्रयेद्ब्रह्मं येन मुच्येत व्यवनात्॥ २१॥
इसलिए ध्यानमान और सदा आत्मविद्या परायण होकर ब्रह्मसम्बन्धी ज्ञान का आश्रय करना चाहिए। ऐसा करने से मनुष्य बन्धनमुक्त हो जाता है।

गत्वा पृथक् स्वप्रसाद्यानं सर्वस्मादेव केवलम्।
आनन्दमजरं ज्ञानं व्यायीत च पुनः परम्॥ २२॥
अपनी आत्मा को सब पदार्थों से भिन्न जानकर उसे अद्वितीय, आनन्दस्वरूप, जरारहित और श्रेष्ठब्रह्मरूप में ध्यान करना चाहिए।

यस्माद्वत्ति भूतानि यद्गत्वा नेह जायते।
स तस्माद्दीप्तुरो देवः परस्माद्योऽपितिष्ठुतिः॥ २३॥
जिससे ये भूत उत्पन्न होते हैं, जिसे पाकर लोक पुनः जन्म नहीं लेते, उनसे परे जो विद्यमान है, वही देवताओं के देवता ईश्वर हैं।

यदनारे तद्गमनं ज्ञान्तं शिवमुच्यते।
यदाहुस्तत्परो यः स्यात्स देवस्तु महेश्वरः॥ २४॥
जिसके अन्तःकरण में वह प्रसिद्ध आकाश स्थित है, वह ज्ञानत शिव कल्याणकारी कहे गये हैं और जो उससे परे कहा गया है, वही देव महेश्वर हैं।

द्रवतानि यानि चिक्षुणा तथैवोपद्रवतानि च।
एकैकातिक्रमे तेषां प्रायश्चित्तं विद्यीयते॥ २५॥
भिक्षुओं के लिए जो भी व्रत या उपव्रत करणीय है, उनमें से किसका पालन न करने से कौन सा प्रायश्चित्त करना है, इस विषय में बताया जा रहा है।

उपेत्य तु लिंयं कामात्कृत्यसंयतपानसः।
प्राणायामसामायुक्तः कुर्यात्सानातपनं शुचिः॥ २६॥
तत्प्रत्येत नियमात् कृच्छ्रं संयतपानसः।
पुनराश्रमपागम्य चोद्यमिष्टुरतन्त्रितः॥ २७॥
संन्यासी होने पर भी काम के वशीभूत होकर जो रुदी समागम करता है, तो एकाग्राचित्तता से शुद्ध होकर (पुनः पाप न हो, इसलिए) 'सान्तपन' नामक व्रत प्रायश्चित्तरूप में करना चाहिए। तत्पश्चात् एकाग्र मन से नियमानुसार कृच्छ्र व्रत भी करना चाहिए और पुनः आश्रम में प्रवेश कर भिक्षुक को सावधानी से विचरण करना चाहिए।

न नर्युक्तमनृतं हिनसीति मनीषिणः।
तथापि च न कर्तव्यं प्रसंगो होष दारणः॥ २८॥

परिहास में कहा गया असत्य मनुष्य का पुण्य नष्ट नहीं करता, ऐसा मनीषियों ने कहा है। किन्तु संन्यासी के लिए ऐसा असत्य भी वर्जित है, क्योंकि ऐसा मिथ्या प्रसंग परिणाम में दारण कर देता है।

एकरात्रोपवासम्भु प्राणायामशतं तथा।
कर्तव्यं यतिना धर्मलिप्मुना वरमव्ययम्॥ २९॥

धर्मलोभी संन्यासियों को असत्य बोलने पर प्रायङ्कितरूप में एक रात का उपवास और सौ बार प्राणायाम करना चाहिए।

गतेनापि न कार्यने न कार्यं स्तेयमन्यतः।
स्तेयादभ्यधिकः कष्ठिक्रास्त्वर्थं इति सृतिः॥ ३०॥

अत्यन्त आपत्काल आ जाने पर संन्यासी दूसरे की वस्तु नहीं चुरायें। शास्त्रों में चोरी से बढ़कर अधर्म दूसरा और कोई नहीं है॥ ३०॥

हिंसा चैषा परा दिष्टा या चात्पज्जाननाशिका।
यदेतद्विणं नाम प्राणा होते बहिरुरा॥ ३१॥

चोरी उल्कट हिंसा है, जो आत्पज्जान की नाशक भी है। जो वस्तु धन के नाम से प्रख्यात है, वह मनुष्यों का बाहु प्राण है।

स तस्य हरति प्राणान्यो यस्य हरते धनम्।
एवं कृत्वा सुदुष्टत्मा भित्रवृत्तो ब्रताहतः।
भूयो निर्वेदमाप्तक्षुरेवान्द्रायणद्वत्तम्॥ ३२॥

विद्यिना शास्त्रदृष्टेन संबत्सरमिति श्रुतिः।
भूयो निर्वेदमाप्तक्षुराद्विरेष्वरतन्त्रितः॥ ३३॥

जो निसका धन चुराता है, वह मानों उसका प्राण हरण करता है। ऐसा करके वह दुष्टत्मा विहित आचार और ब्रत से पतित हो जाता है। ऐसा कार्य करने के बाद पक्षात्ताप होने से संन्यासी शास्त्रों में बताए गए नियमों के अनुसार वर्षपर्यान्त चान्द्रायण ब्रत करे। पक्षात्ताप होने के बाद भिक्षुक को सावधानी पूर्वक विचरण करना चाहिए।

अकस्मादेव हिमानु यदि भिक्षुः समावरेत्।
कुर्यात्कृच्छ्रातिकृच्छ्रनु चांद्रायणमयापि वा॥ ३४॥

यदि संन्यासी अकस्मात् (अज्ञानतावश) हिंसा कर वैठे तो उसे कृच्छ्रातिकृच्छ्र या चान्द्रायण ब्रत करना चाहिए।

स्कन्दमिद्रियदीर्बल्यात् क्लियं दृष्टा यतिर्यदि।
तेन धारयितव्या वै प्राणायामानु षोडशः॥ ३५॥

दिवा स्कन्दे प्रिरात्रे स्याद्याणायपश्चतं तथा।
इन्द्रिय की दुर्बलता के कारण खीं को देखकर यदि संन्यासी का वीर्यपात हो जाए तो उसे सोलह बार प्राणायाम करना होगा। यदि वीर्यपात दिन में हो, तो तीन रात तक उपवास और सौ बार प्राणायाम करना चाहिए।

एकोते पश्युमांसे च नवश्राद्धे तर्वैव च।
प्रत्यक्षलवणे प्रोक्तं प्राजापत्यं विशेषनम्॥ ३६॥

एकान्त में शूपकर मधु (शराब) और माँस खाने से तथा नवश्राद्ध में प्रत्यक्ष रूप से नमक खाने से शुद्धि के लिए प्राजापत्य ब्रत करना चाहिए।

ध्याननिष्ठस्य सततं नश्यते सर्वपतकम्।
तस्मान्यहेष्वरं ज्ञात्वा तद्व्यानपरमो भवेत्॥ ३७॥

निरन्तर ध्याननिष्ठ संन्यासी के सारे पाप नष्ट हो जाते हैं, इसलिए महेश्वर को जानकर उनके ध्यान में मान रहना चाहिए।

यदद्वात् परमं ज्योतिः प्रतिष्ठाप्तमव्ययम्।
योऽनन्ता परमं द्रव्यं स विज्ञेयो महेश्वरः॥ ३८॥

जो ब्रह्म परम ज्योति के मध्य स्थित, अक्षर और अव्यय है, जो परम ब्रह्म के मध्य विद्यमान है उन्हें महेश्वर जानो।

एष देवो महादेवः केवलः परमः शिवः।
तदेवाक्षरमद्वैतं तदादिव्यातरं परम्॥ ३९॥

ये देव महादेव केवल (अर्थात् अद्वितीय) श्रेष्ठ और कल्याणकारी हैं। प्रकाशमय परम ब्रह्म भी अक्षर, अद्वितीय और श्रेष्ठ है, इसलिए महादेव और परब्रह्म में कोई अन्तर नहीं है।

यस्मान्यहीयसो देवः स्वधामि ज्ञानसंस्कितो।
आत्मयोगाह्वये तत्त्वे महादेवस्ततः स्मृतः॥ ४०॥

ज्ञान में स्थित होकर अपने धार्म में आत्मयोगार्थ तत्त्व से पूर्जे जाने के कारण वह भगवान् महादेव कहे जाते हैं।

नार्यं देवं महादेवाद्यतिरिक्तं प्रपश्यति।
तमेवात्पानपात्मेति य स याति परमं पदम्॥ ४१॥

जो महादेव से अतिरिक्त किसी अन्य देव को नहीं देखता है, वही स्वयं आत्मरूप है, ऐसा जानकर परम पद को प्राप्त कर लेता है।

पन्थते ये स्वप्नात्पानं विभिन्नं परमेष्ठरात्।

न ते पश्यन्ति तं देवं कृता तेषां परिश्रमः॥ ४२॥

जो व्यक्ति अपनी आत्मा को परमेष्ठर से पृथक् समझता है, वह उस परम देवता को नहीं देख पाता। ऐसे व्यक्तियों का सारा परिश्रम व्यर्थ हो जाता है।

एक ब्रह्म परं ब्रह्म ज्ञेयं तत्त्वमव्ययम्।

स देवसु महादेवो नैतद्विज्ञाय बास्यते॥ ४३॥

अविनाशी, तत्त्वस्वरूप, परम ब्रह्म ही एकमात्र जानने योग्य है और वही देव (ब्रह्म) महादेव है। जो यह जान सेता है, उसे पुनः संसार के बन्धन में नहीं बँधता।

तस्माद्यजेत नियतं यतिः संयतमानसः।

ज्ञानयोगरतः ज्ञानो महादेवपरायणः॥ ४४॥

अतः संन्यासी को निरन्तर एकाग्रचित्त होकर ज्ञानयोग का अभ्यास करते हुए ज्ञान और महादेव परायण होकर यश करना चाहिए।

एथ वः कथितो विश्रा यतीनामाश्रमः शुभः।

पितामहेन विभुना मुनीनां पूर्वयोरितप्॥ ४५॥

हे ब्राह्मणो! संन्यासियों का शुभ आश्रमधर्म, आप लोगों को बताया गया। भगवान् पितामह ब्रह्मा ने पहले यह मुनियों को बताया था।

नात्र शिष्यस्य योगिभ्यो दद्यादिदप्तनुत्पम्।

ज्ञानं स्वयंभुना प्रोक्तं यतिक्षमाश्रयं शिवप्॥ ४६॥

ब्रह्मा द्वारा बताए गए संन्यासी का शुभ आश्रमधर्म स्वरूप इस कल्याणकारी ज्ञान का उपदेश पुत्र शिष्य और योगियों को छोड़कर किसी और को नहीं देना चाहिए।

इति यतिनियमानामेतदुक्तं वस्तिनं,

पशुपतिपरितोषे यद्भवेदक्षेतुः।

न भवति पुनरेषामुद्भवो वा विनाशः,

प्रणिहितपनसाये नित्यमेवाचरन्ति॥ ४७॥

संन्यासियों का नियम विधान कहा गया। इन नियमों का पालन करने वाले पर पशुपति महादेव बहुत प्रसन्न होते हैं। जो लोग एकाग्रचित्त से प्रतिदिन इन नियमों का पालन करते हैं, उनका पुनर्जन्म और मृत्यु नहीं होता।

इति श्रीकूर्मपुराणे उत्तरार्द्धे व्यामर्गीतामु यतिर्थम्

नार्थकोनत्रिशोऽध्यायः॥ २९॥

त्रिशोऽध्यायः

(प्रायश्चित्तविधि)

व्यास उवाच

अतः परं प्रवक्ष्यामि प्रायश्चित्तविधिं शुभम्।

हिताय सर्वविश्राणां दोषाणामपनुत्ये॥ १॥

ज्ञानसज्जी बोले— अब मैं शुभ प्रायश्चित्त विधि को कहूँगा, जो ब्राह्मणों के हितवारी और पाप नाश का हेतु है।

अकृत्वा विहितं कर्म कृत्वा निनितमेव च।

दोषमानोति पुरुषः प्रायश्चित्तं विशेषनम्॥ २॥

शास्त्रों के बताए गए धर्मों का पालन न करने और शास्त्र निषिद्ध धर्मों का पालन करने से मनुष्यों को पाप लगता है। प्रायश्चित्त करने से उसकी शुद्धि हो जाती है।

प्रायश्चित्तप्रकृत्वा तु न तिष्ठेद्वाहणः क्वचित्।

यददृष्टुर्द्वाहणाः ज्ञाना विद्वांसत्समाचरेत्॥ ३॥

प्रायश्चित्त करने वाले ब्राह्मण को प्रायश्चित्त किए बिना क्षणमात्र भी नहीं बैठना चाहिए। ज्ञान और विद्वान् ब्राह्मण जैसा कहे वैसा ही करना चाहिए।

वेदार्थविक्षिप्तम् ज्ञानो धर्मकामोऽनिमानिद्विजः।

स एव स्यात्परो धर्मो यदे कोऽपि व्यवस्थति॥ ४॥

त्रेषु, वेदार्थविद्, ज्ञान, धर्म-कर्मनुरागी और अनिहोत्री एक ब्राह्मण भी जिस कर्म का विधान कर दें, वही कर्म, त्रेषु धर्म होता है।

अनाहिताम्यो विप्रास्त्रयो वेदार्थपारगाः।

यददृष्टुर्द्वाहणास्ते तज्ज्ञेयं धर्मसाधनम्॥ ५॥

यदि ब्राह्मण वेदार्थ का ज्ञान किन्तु निरग्नि (अर्थात् जिसने अग्नि चयन न किया हो) हो तो तीन ब्राह्मण धर्मार्थ होकर जिस कर्म को धर्म कहें, उसी कर्म को धर्म का साधन जानो।

अनेकधर्मशास्त्रज्ञा ऊहापोहविशारदाः।

वेदाध्ययनसप्तत्राः सप्तैते परिकीर्तिताः॥ ६॥

अनेकों धर्मशास्त्रों का ज्ञान, ऊहापोहविशारद (अर्थात् तर्क सिद्धान्त में पारंगत) वेदाध्ययन करने वाले सात ब्राह्मणों का चाक्य भी धर्म कार्यों में माना जाता है।

पीभांसज्जानतत्त्वज्ञा वेदानकुशला द्विजाः।

एकर्विश्वितिविद्युताः प्रायश्चित्तं वदनि वै॥ ७॥

मीमांसा और न्याय दर्शन के ज्ञाता और वेदान्त में पारंगत
इकोंस ब्राह्मण प्रायश्चित्त के विषय में उपदेश देंगे।

ब्रह्महा मष्टपः स्तेनो गुरुस्तत्पयग एव च।

महापातकिनस्त्वेते यज्ञैतैः सह संविशेत्॥८॥

ब्रह्महत्या करने वाले, महापातक करने वाले, ब्राह्मण का
सोना चुराने वाले और गुरुपत्री के साथ समागम करने वाले
महापापी होते हैं और उनसे सम्बन्ध रखने वाले भी
महापापी होते हैं।

संवत्सरनु पतितैः संसर्गं कुरुते तु यः।

यानशश्चासनैर्नित्यं जानवै पतितो भवेत्॥९॥

ऐसे पतितों के साथ जो लोग वर्ष भर रहते हैं, वे भी
महापापी होते हैं तथा जो लोग जानबूझकर सदैव ऐसे
पापियों के साथ एक बाहन पर चढ़ते हैं, एक शश्या पर
सोते और एक ही आसन पर बैठते हैं, वे भी पतित होते हैं।

याजनं योनिसम्बव्यं तद्यौवाच्यापनं द्विजः।

सद्यः कृत्वा पतत्येव सह भोजनमेव च॥१०॥

जानबूझकर पतित कन्या से विवाह करना, पतित व्यक्ति
का पौरोहित्य करना, पतित को पढ़ाना और उसके साथ एक
ही पात्र में भोजन करने से ब्राह्मण तत्काल पतित हो जाता
है।

अविज्ञायाथ यो मोहात्कुर्याद्व्यापनं द्विजः।

संवत्सरेण पतति सहाद्यापनमेव च॥११॥

अनजाने में अथवा मोहवश जो पतित व्यक्ति को पढ़ाता
है अथवा उसके साथ पड़ता है, वह एक वर्ष में पतित हो
जाता है।

ब्रह्महा द्वादशाद्वानि कुटि कृत्वा वने वसेत्।

भैश्मात्पविशुद्धर्यं कृत्वा शवशिरोर्ध्वजम्॥१२॥

ब्रह्महत्या करने वाला आत्मशुद्धि के लिए वन में कुटिया
बनाकर बारह वर्ष तक निवास करे और हाथ में चिह्न
स्वरूप मृत ब्राह्मण या किसी दूसरे मृतक की खोपड़ी लेकर
भिक्षा माँगें।

ब्रह्मणावस्थान् सर्वान् देवागाराणि वर्जन्येत्।

विनिदन् स्वयमात्मानं द्वाह्मणं तत्त्वं संस्मरन्॥१३॥

असङ्कृतियोग्यानि सप्तागाराणि संविशेत्।

मन्दिर या ब्राह्मण का घर त्याग कर मृत ब्राह्मण को
स्मरण करते हुए और मन ही मन आत्मगत्तानि करते हुए

पहले से असंकल्पित सात योग्य घरों में भिक्षा माँगने के
लिए प्रवेश करना चाहिए।

विष्णुमे शनैकैर्नित्यं ब्रह्महरे भूत्तद्वज्जने॥१४॥

एककालं चरेद्दैक्षं दोषं विल्यापयव्वृणाम्।

दन्यमूलफलैर्वापि वर्तयेद्दृ समाप्तिः॥१५॥

जब गृहस्थ की रसोई से धूंआ निकलना बन्द हो जाए
रसोई की अग्नि बुझ जाए और जूठन गोल देने के बाद लोगों
को अपना दोष बतलाकर एक समय भिक्षा माँगनी चाहिए
अथवा धैर्य धारण कर जंगली फल-मूल से जीविका निर्वाह
करना चाहिए।

कपालपाणिः खट्वाही ब्रह्मवर्यपरायणः।

पूर्णे तु द्वादशे वर्षे ब्रह्महत्यां व्यपोहति॥१६॥

(वह महापापी भिक्षा के समय) हाथ में 'कपाल' नामक
भिक्षापात्र और खट्वाही (महाब्रतियों के कन्धों पर रखा
छवज) धारण कर ब्रह्मचर्य का पालन करने में तत्पर रहे।
इस प्रकार बारह वर्ष पूरा हो जाने के बाद ब्रह्महत्या के पाप
से मुक्ति मिलती है।

अकायतः कृते पापे प्रायश्चित्तमिदं शुभम्।

कामतो मरणाच्छुद्धिर्यो नान्येन केनचित्॥१७॥

अनजाने में ब्रह्महत्यालय पाप हो जाने पर यह प्रायश्चित्त
शुभ होता है। परन्तु जानबूझ कर ब्रह्महत्या करने से प्राण
त्यागने के अतिरिक्त कोई दूसरा प्रायश्चित्त नहीं है।

कुर्वादनशनं वाय भूगोः पतनमेव वा।

ज्वलनं वा विशेषार्द्धं जलं वा प्रविशोत्सवम्॥१८॥

जानबूझकर ब्रह्महत्या करने वाला व्यक्ति अनशन करे या
पर्वतादि ऊंचे स्थान से गिरे अथवा जलते हुए अग्नि या जल
में प्रवेश करे।

ब्राह्मणर्थं गवार्थं वा सम्यक् प्राणान् परित्यजेत्।

ब्रह्महत्यापनोदार्थमनरा वा मृतस्य तु॥१९॥

दीर्घामयाविनं विष्णे कृत्वानामयमेव वा।

दत्या चात्रं सुविदुये ब्रह्महत्यां व्यपोहति॥२०॥

यदि ब्रह्महत्या इस पाप से मुक्ति के लिए ब्राह्मण या
गाय को बनाने के लिए प्राण त्याग करे, अत्यन्त रोगाकृत
ब्राह्मण को रोग से मुक्ति दिलाए अथवा विद्वान् ब्राह्मण को
अन्नदान करे तो ब्रह्महत्या के पाप से मुक्ति मिलती है।

अस्मिन्देवावधृते स्नात्वा वै शुद्ध्यते द्विजः।

सर्वस्वं वा वेदविदे ब्राह्मणाय प्रदाय च॥२१॥

अक्षमेघ यज्ञ में अवभूथ स्नान (यज्ञ की समाप्ति पर किया जाने वाला स्नान) करने या वेदज्ञ ब्रह्मण को सब कुछ दान कर देने से ब्रह्माधारी ब्राह्मण पाप से मुक्त होता है।

**सरस्वत्यास्त्वरुणया सङ्ग्रहे लोकविशुद्धे।
शुद्धेतिवणस्नानत्रिग्रापोषेषितो द्विजः॥ २२॥**

हरकोई महायापी तीन रात तक उपवास करके सरस्वती और अरुणा नदी के लोकविशुद्धात संगम में तीनों काल स्नान करता है, तो वह ब्रह्महत्या के पाप से मुक्त हो सकता है।

**गत्वा रामेश्वरं पुण्यं स्नात्वा चैव महोदयी।
द्रव्याधर्यादिभिर्युक्तो दृश्वा स्तूपे विपोचयेत्॥ २३॥**

अथवा पवित्र रामेश्वर तीर्थ में जाकर वहां महासमुद्र में स्नान करके ब्रह्महत्या आदि ब्रह्मों का पालन करते हुए महेश्वर का दर्शन करता है, तो पाप से मुक्त हो जाता है।

**कपालमोचनं नाम तीर्थं देवस्य शूलिनः।
स्नात्वाभ्यर्थ्य पितॄन् देवान् ब्रह्महत्यां व्यपोहति॥ २४॥**

भगवान् महादेव के कपाल मोचन नामक तीर्थ में जाकर, स्नान करके देवताओं और पितरों की पूजा करने पर ब्रह्महत्या का पाप दूर होता है।

**यत्र देवाधिदेवेन भैरवेणामितीजसा।
कपालं स्थापितं पूर्वं द्रव्याणः परपेष्ठिनः॥ २५॥**

**समधर्थ्य महादेवं तत्र भैरवरूपिणम्।
तर्पयित्वा पितॄन् स्नात्वा मुच्यते द्रव्याधर्याय॥ २६॥**

प्राचीन काल में अमित तेजस्वी देवाधिदेव भैरव के द्वारा जिस स्थान पर परमेश्वर ब्रह्मा का कपाल स्थापित किया गया है, उस स्थान में स्नानकर, भैरवरूपी महादेव की पूजा करके तथा पितरों का तर्पण करने से ब्रह्महत्या के पाप से भुक्ति मिलती है।

**इति श्रीकूर्मपुराणे उत्तरार्द्धे द्रव्याधर्यायुक्तवर्णनं नाम
शिशोऽध्यायः॥ ३०॥**

एकत्रिशोऽध्यायः

(कपालमोचन तीर्थ का माहात्म्य)

ऋग्य ऊचुः

**क्षयं देवेन रुद्रेण शङ्खेणातितेजसा।
कपालं द्रव्याणः पूर्वं स्थापितं देहजं भुवि॥ १॥**

ऋषियों ने कहा— हे भगवन्! अतितेजस्वी रुद्रदेव शंकर ने सर्वप्रथम इस भूमण्डल में ब्रह्मा जी के शरीर से उत्पन्न कपाल को कैसे स्थापित किया था?

व्यास उवाच

शुणुव्यमृथः पुण्यां कथां पापप्रणाशिनीम्।

माहात्म्यं देवदेवस्य प्रहादेवस्य धीमतः॥ २॥

पुरा पितामहं देवं पेरुश्च हे महर्षयः।

प्रोचुः प्रणाप्य लोकादिं किमेकं तत्त्वमव्यव्यम्॥ ३॥

व्यासजी बोले— हे ऋषिगण! पापों को नष्ट करने वाली इस परम पुण्यमयी कथा को आप श्रवण करें। इस कथा में देवों के भी देव परम बुद्धिमान् महादेव का माहात्म्य वर्णित है। प्राचीन काल में महर्षियों ने सुमेरु पर्वत के शिखर पर प्राणियों के आदि पितामह ब्रह्मा को नमस्कार करके पूछा था कि यह अनिनाशी तत्त्व क्या है।

स मायदा भद्रेशस्य मोहितो लोकसम्पदः।

अविज्ञाय परम्भावं स्वात्मानं प्राह धर्मिणम्॥ ४॥

अहं धाता जगद्योनिः स्वद्यम्भूरेक ईश्वरः।

अवादि भूत्परं द्रव्यं मामधर्थ्य विमुच्यते॥ ५॥

वे लोकों के उत्पादक ब्रह्मा, महेश्वर की माया से मोहित हो गये थे और परम भाव को न जानते हुए ऋषियों से अपने ही स्वरूप को अव्यय तत्त्व बताकर कहने लगे कि— मैं ही विधाता हूं, जगद्योनि, स्वद्यम्भूरेक ईश्वर हूं, मैं ही अनादि, अदित्य, परमद्रव्य हूं। मेरी अर्द्धना करके सभी मुक्त हो जाते हैं।

अहं हि सर्वदेवानां प्रवर्तकनिवर्तकः।

न विद्यते चाप्यविद्यो मतो लोकेषु कङ्गन॥ ६॥

मैं ही समस्त देवों का प्रवर्तक और निवर्तक हूं। इस लोक में कोई भी मुझसे अधिक (श्रेष्ठ) नहीं है।

तस्यैवं मन्त्रामानस्य जडे नारायणांशङ्कः।

प्रोदाच प्रहसन्द्वाक्यं रोषितोऽव्यं श्रिलोचनः॥ ७॥

किं कारणमिदं द्रव्यान्यती तत्र साप्रतम्।

अज्ञानयोगयुक्तस्य न त्वेतत्त्वयि विद्यते॥ ८॥

ब्रह्मा जी के द्वारा अपने को ऐसा मानने पर नारायण के अंश से उत्पन्न त्रिनेत्रधारी शंकर कुछ होकर हँसते हुए बोले— हे ब्रह्मन्! इस समय क्या बात है कि आपके अन्दर ऐसी भावना उत्पन्न हो गयी है। सम्भवतः आप अज्ञान से आवृत हैं। आपका ऐसा कहना ठीक नहीं है।

अहं कर्त्तादिलोकानां जडे नारायणाद्रभोः।
न याष्टेऽस्य जगतो जीवनं सर्वदा कवचित्॥ १॥

मैं इन लोकों का कर्ता हूँ और नारायण प्रभु से मेरा जन्म हुआ है। मेरे बिना इस संसार का जीवन कहाँ भी नहीं है।

अहमेव परं ज्योतिरहमेव परा गतिः।
पत्रेरितेन भवता सृष्टं भुवनयप्पलम्॥ २॥

एवं विवदतोर्मोहात्परस्परजयैविणोः।
आजग्मुख्यत्र तौ देवौ वेदाङ्गत्वार एव हि॥ ३॥

मैं ही परज्योति हूँ और परागति हूँ। मेरे द्वारा प्रेरित होकर ही आपने इस समस्त भूमंडल को रचना की है। इस प्रकार मोहवश दोनों परस्पर विवाद कर रहे थे, और एक-दूसरे पर विजय पाने की इच्छा कर रहे थे। वे दोनों उस स्थान पर पहुँच गये जहाँ चारों देव उपस्थित थे।

अन्वीक्ष्य देवं ब्रह्माणं यजात्पानङ्गं सम्प्रितम्।
प्रोचुः संविग्नहृदया याश्वत्यं परमेष्ठिनः॥ ४॥

उस समय ब्रह्मदेव और यज्ञस्वरूप विष्णु को वहाँ उपस्थित देखकर वे चारों देव उल्कण्ठित हृदय होकर परमेश्वर के यथार्थ स्वरूप के विषय में बोले।

ऋग्वेद उवाच

यस्यानःस्वानि भूतानि यस्मात्सर्वं प्रवर्तते।
यदाहुस्तप्तरनत्त्वं स देवः स्यान्महेष्वरः॥ ५॥

ऋग्वेद ने कहा— जिसके अन्दर समस्त प्राणी समूह विद्यमान हैं तथा जिससे यह सब उत्पन्न हुआ है और जिसे मुनिगण श्रेष्ठ तत्त्व कहते हैं, वे यही देव महेश्वर हैं।

यजुर्वेद उवाच

यो यज्ञेरखिलैरोशो योगेन च समच्छिति।
यमाहुरीष्वरं देवं स देवः स्यात्पिनाकव्यक्॥ ६॥

यजुर्वेद ने कहा— जो सभी यज्ञों द्वारा और योग द्वारा पूजित हैं और जिन्हें मुनिगण ईश्वर कहते हैं वे ही पिनाकपाणि देव हैं।

सामवेद उवाच

येनेदप्यते विश्वं यदाकाशान्तरं शिवम्।
योगिभिर्वैद्यते तत्त्वं प्रहादेवः स शङ्कुरः॥ ७॥

सामवेद ने कहा— जो इस संसार में भ्रमण करते हैं, आकाश के मध्य स्थित हैं, जो शिवस्वरूप है, जिसे योगी तत्त्वरूप में जानते हैं वे ही प्रहादेव शङ्कर हैं।

अथर्ववेद उवाच

यम्प्रपश्यन्ति देवेशं यजने यत्यः परम्।
पहेशं पुरुषं रुद्रं स देवो भगवान् भवः॥ १६॥

अथर्ववेद ने कहा— यतिगण जिस रुद्रलघी परमपुरुष महेश का प्रयास करके दर्शन प्राप्त करते हैं, वे ही देव भगवान् शिव हैं।

एवं स भगवान् ब्रह्मा वेदानार्थीरिते शुभम्।
शूल्वा विहस्य विश्वात्मा तत्त्वाह विषेहितः॥ १७॥

इस प्रकार वेदों के शुभ-वचन सुनकर भगवान् ब्रह्मा हैं पठे और उससे मोहित होकर विश्वात्मा ने कहा—

क्वां तत्परं द्वाहा सर्वसङ्घविवर्जितम्।
रपते भार्या सादृशं प्रपथैश्चातिगार्वितैः॥ १८॥

इतीर्लेऽथ भगवान् प्रणवात्मा सनातनः।
अपूर्तो शूर्तिमान् शूल्वा वचः प्राह पितामहम्॥ १९॥

वे परब्रह्म कैसे हो सकते हैं जो सर्वसंगविवर्जित हैं और अपनी भार्या के साथ ही रमण किया करते हैं और जिनके साथ गणयुक्त प्रमथगण भी रहते हैं। इस प्रकार ब्रह्मा के कहने पर औंकारस्वरूप सनातन भगवान् शूर्तरूप होने पर भी अमूर्तरूप अप्रत्यक्ष रहकर पितामह ब्रह्मा से इस प्रकार बोले।

प्रणव उवाच

न होष भगवानीशः स्वात्मनो व्यतिरिक्त्या।
कदाचिद्रप्ते रुद्रगस्तादृशो हि महेष्वरः।
अयं स भगवानीशः स्वयंज्योतिः सनातनः॥ २०॥

स्वानन्दभूता कथिता देवी आगनुका शिवा॥ २१॥

प्रणव औंकार ने कहा— वह भगवान् इंश किसी भी समय अपनी आत्मा से भिन्न किसी के साथ रमण नहीं किया करते। वे प्रभु महेश्वर स्वर्यं भगवान् इंश ज्योतिस्वरूप और सनातन हैं। शिवा पार्वती कोई लौकिक स्त्री नहीं है, वे तो उनकी स्वर्यं की आनन्दभूता देवी कही गयी है।

इत्येवमुक्तेऽपि तदा यज्ञामूर्तेजस्य च।
नाज्ञानमगमपत्राशपीष्वरस्यैव मादव्या॥ २२॥

तदन्तरे महाज्योतिर्विरिज्ञो विश्वभावनः।
प्रादर्शदद्युतं दिव्यं पूरवन् गणनान्तरम्॥ २३॥

तन्मध्यसंस्थितज्योतिर्मण्डुलं तेजसोऽञ्जलम्।
व्योपषष्यगतं दिव्यं प्रादुरासीदिहजोतपाः॥ २४॥

स दृष्टा वदनं दिव्यपूर्णि लोकपितामहः।
तैजसं मण्डलं घोरमलोकं यदनिन्दितम्॥ २५॥

इस प्रकार कहने पर भी यज्ञमूर्ति अजन्मा ईश्वर की भावा के कारण ब्रह्मा का अज्ञान दूर नहीं हुआ था। इसी समय विश्वस्त्रष्टा ब्रह्मा ने एक महान् ज्योति को देखा जो अद्भुत, दिव्य और आकाश के मध्य में सुशोभित थी। हे ब्राह्मणो! उस ज्योति का तेज अत्यन्त उज्ज्वल और व्योम के मध्य में रहने वाला अति दिव्य था। जो पहले वाले ज्योति-रुई के बीच रहकर भी आकाश के मध्य विद्यमान थी। लोक पितामह ने अपने मुख्य को ढाकर उस दिव्य तेजस्वी मण्डल को देखा जो घोर भयानक होने पर भी अनिन्दित था।

प्रजज्वालातिकोपेन ब्रह्मणः पञ्चमं शिरः।
क्षणादपश्यत्य महान् पुरुषा नीललोहितः॥ २६॥
त्रिशूलपिङ्गलो देवो नागयज्ञोपवीतवान्।
तं प्राह भगवान् ब्रह्मा शङ्खां नीललोहितम्॥ २७॥
ज्ञानाय पूर्वं भवतो ललाटादद्य शंकरम्।
प्रादुर्भूतं महेशानं भासतः शशणं द्रुज॥ २८॥

तब ब्रह्माजी का पाँचवा शिर अत्यन्त क्रोध से प्रज्ज्वलित हो उठा था। उस महान् पुरुष नीललोहित ने क्षणभर में उसे देखा। वे त्रिशूलधारी थे, पिङ्गल नारों का यज्ञोपवीत धारण किया हुआ था। भगवान् ब्रह्मा ने नीललोहित महेशान शंकर को कहा— तुम प्रथम ज्ञान के लिये मेरे ललाट से उत्पन्न हुए हो आप मेरो शरण में आ जाओ।

श्रुत्वा सगर्वद्यनं पश्योनेश्वरेष्वरः।
प्राहिणोत्पुरुषं कालं भैरवं लोकदाहकम्॥ २९॥
म कृत्वा सुपहयुद्धं ब्रह्मणा कालभैरवः।
प्रवक्तर्तास्य वदनं विरिच्छस्याद पञ्चमप्॥ ३०॥
निकृतवदनो देवो ब्रह्मा देवेन शम्भुना।
पमार चेष्टो योगेन जीवितं प्राप्य विष्णुक्॥ ३१॥

इसके अनन्तर गर्वयुक्त ब्रह्मा के इस वचन को सुनकर ईश्वर ने लोकदाहक कालभैरव पुरुष को भेजा था। उस काल भैरव पुरुष ने ब्रह्मा के साथ महान् युद्ध किया और उसने ब्रह्मा के पाँचवें शिर को काट डाला था। परन्तु ईश्वर देव शम्भु ने उनको योग द्वारा पुनः जीवित किया था, जिससे विश्व को धारण करने वाले ब्रह्मा जीवन प्राप्त किया था।

अद्यान्वपश्यदीशानं मण्डलान्तरसंस्थितम्।
सप्तासीनं महादेव्य यहादेवं सनातनम्॥ ३२॥

भुजङ्गराजवलयं चन्द्रावयवभूषणम्।
कोटिसूर्यप्रतीकाशङ्कुटाङ्गूदविराजितम्॥ ३३॥

शार्दूलवर्षवसनं दिव्यपालासपविन्तम्।
त्रिशूलपाणिं दुष्प्रेक्षयं योगिनं भूतिभूषणम्॥ ३४॥
यमनतरा योगनिष्ठा: प्रपश्यन्ति हृदीश्वरम्।
तपादिमेकं ब्रह्माणं पहादेवं दर्दर्श ह॥ ३५॥

इसके अनन्तर ब्रह्मा ने मण्डल के भीतर संस्थित, सप्तासीन महादेवी के साथ सनातन ईशान महादेव को देखा। वह देव भुजङ्गराज का वलय धारण करने वाले और चन्द्रकला के अवयव के आभृताणों से विभूषित थे। वे करोड़ों सूर्यों के सदृश तेज से युक्त तथा जटाओं से विराजमान परम सुन्दर स्वरूप वाले थे। वे महादेव व्याघ्रचर्म का बस्त्र धारण किये हुए तथा दिव्य मालाओं से समन्वित थे। वे भस्म से विभूषित, परम दुष्प्रेक्ष्य योगीराज और त्रिशूलपाणि थे, जिस हृदीश्वर को योगसंग्रिष्ठ पुरुष अपने भीतर देखते हैं, ऐसे उन सबके आदि एकब्रह्म महादेव का दर्शन उस समय ब्रह्माजी ने किया था।

यस्य मा परमा देवी शक्तिराकाशसंज्ञिता।
सोऽननैश्वर्ययोगात्मा महेशो दृश्यते किल॥ ३६॥
यस्याशेषजगद्वीजं विलयं याति मोहनम्।
सकलप्रणायमात्रेण स रुदः खलु दृश्यते॥ ३७॥

आकाश नाम वाली परमा देवी उनको शक्ति भी चहाँ थीं। ऐसे अनन्त, ऐश्वर्य-सम्पन्न, योगात्मा महेश उन्हें दिखाई देने लगे थे। जिन्हें एक बार प्रणाम करके सम्पूर्ण जगत् का बीज— मोहस्वरूप मायाकर्म लय को प्राप्त हो जाता है, वही रुद सचमुच दिखाई देने लगे थे।

येऽक्ष नाचारनिरासाङ्गत्काष्ठेव केवलम्।
विषेशयति सोकात्मा नायको दृश्यते किल॥ ३८॥

आचारनिष्ठ केवल भक्तिपरायण लोग ही जिनका दर्शन प्राप्त करते हैं, वही जगदात्मा लोकनायक महादेव, ब्रह्मा को दिखाई देने लगे।

यस्य ब्रह्मादयो देवा कृष्णो ब्रह्मावादिनः।
अर्चयन्ति सदा लिङ्गं स शिवः खलु दृश्यते॥ ३९॥
यस्याशेषजगत्सूतिर्विज्ञानतनुरीश्वरः।
न मुहूर्ति सदा पश्च शंकरोऽसौ च दृश्यते॥ ४०॥

ब्रह्मादि देवता और ब्रह्मादी मुनिगण सदैव जिसके लिंग की पूजा करते हैं, वही शिव वहाँ (तेजोमण्डल में) दिखाई

देने लगे थे। सारे संसार की जन्मदात्री प्रकृति ने कदमपि जिनका साथ नहीं छोड़ा ऐसे विज्ञानरूप शरीरधारी इश्वर, वे शंकर ब्रह्मा को दिखाई देने लगे।

**विद्या सहायो भगवान्यस्यासौ मण्डलान्तरम्।
हिरण्यगर्भपुरोऽसौ ईश्वरो दृश्यते परः॥४१॥**
पुण्यं वा यदि वा पत्रं यत्यादयुग्मे जलम्।
दत्त्वा तरति संसारं रुद्रोऽसौ दृश्यते किल॥४२॥

जिसके मण्डल के बीच विद्यारूप सहाय बाले भगवान् हिरण्यगर्भ पुत्र रुद्र विद्यमान हैं, वे ही परमेश्वर दिखाई देने लगे। जिनके चरण कमलों में पुष्प, पत्र या जल दान करने से मनुष्य संसार से तर जाता है, वही रुद्र वस्तुतः दिखाई देने लगे थे।

**तत्सक्षिणे सकलं निवच्छति सनातनः।
कालं किल नियोगात्मा कालः कालो हि दृश्यते॥४३॥**
उसके सान्निध्य में ही वह सनातन सब कुछ प्रदान करता है। वही नियोगात्मा काल है। वही काल कालरूप में दिखाई देता है।

**जीवनं सर्वलोकानां त्रिलोकस्वैर्य भूषणम्।
सोमः स दृश्यते देवः सोमो यस्य विष्णुणम्॥४४॥**

ये समस्त लोकों के जीवनरूप और त्रैलोक्य का आभूषण हैं। जिसका आभूषण स्वयं सोम है, वह सोमदेव दिखाई दे रहे हैं।

**देव्या सह सदा साक्षात्तद्य योगस्वभावतः।
गीथते एरमा मुक्तिर्पहादेवः स दृश्यते॥४५॥**

सदा देवी के साथ साक्षात् योग के स्वभाव के कारण एरमा मुक्ति का गान होता है। वे महादेव दिखाई दे रहे हैं।

**योगिनो योगतत्त्वज्ञा वियोगाभिमुखोऽनिश्चम्।
योगं व्यायानि देव्यासौ स योगी दृश्यते किल॥४६॥**

योग के तत्त्व के ज्ञाता योगीजन निरन्तर वियोग से अभिमुख हैं और योग का ध्यान करते हैं। देवी के साथ वे योगी दिखाई दे रहे हैं।

**सोऽनुवीक्ष्य महादेवं महादेव्या सनातनम्।
वरासने समारसीनपद्याय एरमा स्मृतिम्॥४७॥**

**लक्ष्या पाहेश्वरीं दिव्यां संसृति भगवानजः।
तोषयामास वरदं सोमं सोमार्दुभूषणम्॥४८॥**

महादेवी के साथ सनातन महादेव को देखकर श्रेष्ठ आसन पर विराजमान परम स्मृति को प्राप्त कर भगवान् अज

ने परम दिव्य माहेश्वरी स्मृति को प्राप्त करके सोम के अर्धभाग के आभूषण बाले वरदाता सोम को प्रसन्न किया था।

ब्रह्मोवाच

नमो देवाय पहते पहादेव्ये नमो नमः।

नमः शिवाय शान्ताय शिवायै सततं नमः॥४९॥

ओं नमो ब्रह्मणे तुम्हं विद्यायै ते नमो नमः।

महेशाय नमस्तुम्यं भूलप्रकृतये नमः॥५०॥

ब्रह्माजी ने कहा- महान् देव के लिये नमस्कार है। महादेवी के लिये बारम्बार नमस्कार है। परम शान्त शिव को नमस्कार तथा शिवा को भी सतत मेरा नमस्कार है। ओंकारस्वरूप ब्रह्म आपके लिये प्रणाम है। विद्यास्वरूपिणी आपको बारम्बार नमस्कार है। महान् इश्वर को नमस्कार, तथा भूलप्रकृति के लिये नमस्कार है।

नमो विज्ञानदेहाय चिनायै ते नमो नमः।

नमोऽस्तु कालकालाय ईश्वरायै नमो नमः॥५१॥

नमो नमोऽस्तु स्त्राय स्त्राण्यै ते नमो नमः।

नमो नमस्ते कालाय यायै ते नमो नमः॥५२॥

विज्ञानरूप शरीर बाले के लिये नमन है। चिन्तारूपिणी देवी को बारम्बार नमस्कार है। काल के भी काल के लिये प्रणाम है तथा ईश्वरी देवी के लिये नमस्कार है। रुद्र और रुद्राणी को बारम्बार नमस्कार। कालस्वरूप आपको नमस्कार तथा मायारूपिणी देवी को बार-बार नमस्कार है।

नित्यने सर्वकार्याणां क्षोभिकायै नमो नमः।

नमोऽस्तु ते प्रकृतये नमो नारायणाय च॥५३॥

योगदाय नपस्तुम्यं योगिनां गुरवे नमः।

नमः संसारवासाय संसारोत्पत्तये नमः॥५४॥

समल कार्यों के नियना, प्रभु तथा क्षोभ देने वाली देवी को नमस्कार है। प्रकृतिरूप आपको नमस्कार तथा नारायण प्रभु को मेरा नमस्कार हो। योगप्रदाता आपको प्रणाम है। योगियों के गुरु के लिये प्रणाम है। संसार में वास करने वाले तथा इस संसार को समुत्पन्न करने वाले को नमस्कार है।

नित्यानन्दाय विभवे नमोऽस्त्वानन्दमूर्तये।

नमः कार्यविहीनाय विश्वप्रकृतये नमः॥५५॥

ओंकारमूर्तये तुम्हं तदनःसंस्थिताय च।

नमस्ते व्योमसंस्थाय व्योमशक्तयै नमो नमः॥५६॥

सिंहव्याघ्रं च मार्जरं श्वानं शूकरमेव च।
 शृगालं मर्कटं चैव गर्दभं च न भक्षयेत्॥ ३३॥
 न भक्षयेत् सर्वपृगान् पश्चिमोऽन्यान् वनेचरान्।
 जलेचरान् स्थलचरान् प्राणिनश्चेति धारणा॥ ३४॥
 गोधा कूर्मः शशः श्वाविच्छल्यकश्चेति सत्तमाः।
 भक्ष्याः पञ्चनखा नित्यं मनुराह प्रजापतिः॥ ३५॥
 मत्स्यान् सशल्कान् भुज्जीयान्मांसं रीरमेव च।
 निवेद्य देवताभ्यस्तु ब्राह्मणेभ्यस्तु नान्यथा॥ ३६॥
 मयूरं तितिरं चैव कपोतं च कपिङ्गलम्।
 वाढीणसं वकं भक्ष्यं मीनहंसपराजिताः॥ ३७॥
 शफरं सिंहतुण्डं च तथा पाठीनरोहिती।
 मत्स्याश्चैते समुद्दिष्टा भक्षणाय द्विजोत्तमाः॥ ३८॥
 प्रोक्षितं भक्षयेदेयां मांसं च द्विजकाम्यया।
 यथाविधि नियुक्तं च प्राणानामपि चात्यये॥ ३९॥
 भक्षयेनैव मांसानि शेषभोजी न लिप्यते।
 औषधार्थमशक्तौ वा नियोगाद् यज्ञकारणात्॥ ४०॥
 आमन्त्रितस्तु यः श्राद्धे दैवे वा मांसमुत्सृजेत्।
 यावन्ति पशुरोमाणि तावतो नरकान् द्रजेत्॥ ४१॥
 अदेयं चाप्यपेयं च तथैवास्पृश्यमेव च।
 द्विजातीनामनालोक्यं नित्यं मद्यमिति स्थितिः॥ ४२॥
 तस्मात् सर्वप्रकारेण मद्यं नित्यं विवर्जयेत्।
 पीत्वा पतति कर्मभ्यस्त्वसम्भाष्यो भवेद् द्विजः॥ ४३॥
 भक्षयित्वा ह्याभक्ष्याणि पीत्वा उपेयान्वयि द्विजः।
 नाधिकारी भवेत् तावद् यावद् तत्र जहात्यधः॥ ४४॥
 तस्मात् परिहरेत्रित्यमभक्ष्याणि प्रयत्नतः।
 अपेयानि च विप्रो वै तथा चेद् याति रीरवम्॥ ४५॥

द्विजोंके लिये मद्य न दान देने योग्य है, न पीने योग्य है, न स्पर्श करने योग्य है और न ही देखने सब प्रकारसे मद्यका नित्य ही परित्याग करना चाहिये। मद्य पीनेसे द्विज कर्मोंसे पतित और बातचीत करनेके अयोग्य हो जाता है। अभक्ष्यका भक्षण करने और अपेय पदार्थोंका पान करनेसे द्विज तथतक अपने कर्मका अधिकारी नहीं होता, जबतक उसका पाप दूर नहीं हो जाता। इसलिये प्रयत्नपूर्वक नित्य ही विप्र (द्विज)-को अभक्ष्य एवं अपेय पदार्थोंका परित्याग करना चाहिये। यदि द्विज ऐसा करता है अर्थात् इन्हें ग्रहण करता है तो उसे रीरव नरकमें जाना पड़ता है॥ ४२—४५॥

इति श्रीकूर्मपुराणे षट्साहस्राणां संहितायामुपरिविभागे सप्तदशोऽव्यायः॥ १७॥

इस प्रकार छ: हनार श्लोकोंवाली श्रीकूर्मपुराणसंहिताके उपरिविभागमें सप्तहव्यायों अध्याय समाप्त हुआ॥ १७॥



देवाधिपति भगवान् शंकर के वचन सुनकर विष्णुत्या कालभैरव कपाल हाथ में लेकर तीनों लोकों में भ्रमण करने लगे। विकृतवेष को धारण करने पर भी वे अपने तेज से प्रकाशित थे। वे अत्यन्त सुन्दर तीन नेत्रों से युक्त और पवित्र थे।

सहस्रसूर्यप्रतिमं सिद्धंः प्रमथपुङ्खचैः।

भाति कालाम्निनयनो महादेवः समावृतः॥७३॥

पीत्वा तदपृतं दिव्यमानन्दपरमेष्ठिनः।

लीलाविलासवहुलो लोकानाशब्दतीष्वरः॥७४॥

कालाम्नि के समान नेत्र वाले महादेव सिद्ध प्रमथगणों से समावृत होकर हजारों सूर्यों के समान प्रतीत हो रहे थे। परमेष्ठो के अमृतमय इस दिव्य आनन्द का पान करके क्रीड़ा में निरत रहने वाले भगवान् संसार के समक्ष उपरित्थित हुए।

तान्दृष्टा कालवदने शङ्खरं कालभैरवम्।

रूपलावण्यमाप्तं नारीकुलभगादनु॥७५॥

गार्वन्ति गीतैविविधैर्नृत्यन्ति पुरतः प्रभोः।

संस्मितं प्रेष्य वदनञ्चकृष्णभङ्गमेव च॥७६॥

कालमुख, कालभैरव शंकर को रूपलावण्य से सम्पन्न देखकर नारियों के समूह उनके पीछे-पीछे अनुगमन करने लगा। वे सभी प्रभु के समक्ष अनेक प्रकार के गीत गाकर नाचने लगीं और भगवान् के मन्दहास्य युक्त मुख-मण्डल को देखकर भौंहे सिकुड़ने लगीं।

स देवदानवदीनो देशानध्येत्य शूलशूक्।

जगाम विष्णोर्भुवनं यज्ञास्ते पुरुषोत्तमः॥७७॥

वे त्रिशूलधारी महादेव देवताओं और राक्षसों के देश में भ्रमण करते हुए अन्त में विष्णु के भुवन को गये जहाँ पुरुषोत्तम विराजमान थे।

समाव्य दिव्यभवनं शङ्खरो लोकशंकरः।

सहैव भूतप्रवरैः प्रवेष्टुमुपवक्ष्ये॥७८॥

अविज्ञाय परं भावं दिव्यं तत्यापेष्वरम्।

न्यसारथत्रिशूलांकं द्वारपालो महाबलः॥७९॥

शङ्खचक्रगदापाणिं पीतवासा पहापुजः।

विष्वकर्मेन इति ख्यातो विष्णोरेशसमुद्दवः॥८०॥

उस दिव्य भवन में जाकर लोक का कल्याण करने वाले भगवान् शंकर अपने भूतगणों के साथ ही प्रवेश करने लगे। उस परमेश्वर के दिव्य परम भाव को जानकर महाबली द्वारपाल ने त्रिशूलधारी शिव को प्रवेश करने से रोक दिया

था। वह द्वारपाल अपने हाथों में शंख-चक्र-गदा धारण की थी, वह पीताम्बरधारी और बड़ी-बड़ी भुजाओं से युक्त था, विष्णु के अंश से उत्पन्न वह विष्वकर्मेन नाम से विख्यात था।

(अब तं शंकरगणं युयुधे विष्णुसंभवः।

भीषणो भैरवादेशात्कालवेग इति स्मृतः।)

उसके अनन्तर विष्णुसंभव उस विष्वकर्मेन ने भीषण कालवेग नामक शंकर के गण से युद्ध किया था। वह कालभैरव की आज्ञा से आया था।

विजित्य तं कालवेगं क्रोधसंरक्तलोचनः।

दुद्राक्षाभिमुखं रुद्रं चिक्षेप च सुदर्शनम्॥८१॥

क्रोध से एकदम लाल नेत्रों वाले द्वारपाल ने उस कालवेग को भी जीत लिया था। फिर रुद्रस्वरूप कालभैरव के सामने दीढ़ पड़ा और ढन पर सुदर्शन चक्र गिराया।

अथ देवो महादेवस्त्रिपुरारिस्त्रिशूलभृत्।

तपापातनं सावज्ञामालोक्यद्विभित्तिः॥८२॥

तब त्रिपुरासुर के शत्रु त्रिशूलधारी देव महादेव ने जो सभी शत्रुओं को जीत लेने वाले हैं अपनी ओर आने वाले उस द्वारपाल को अवज्ञापूर्वक देखा।

तदन्ते महद्वतं युगान्तदहनोपमम्।

शूलेनोरसि निर्भित्य यातयामास तं भुविः॥८३॥

स शूलाभिहोऽत्यर्थं त्यक्त्वा स्वप्यरमं बलम्।

तत्याज जीवितं दृष्टा मृत्युं व्यायिहता इव॥८४॥

इसी बीच युगान्तकालीन अन्नि के समान दिखाई देने वाले महान् अद्भुत चक्र को रोककर कालभैरव ने वक्षःस्थल पर शूल से प्रहार करके उसको भूमि में गिरा दिया था। इस प्रकार शूल से अत्यन्त अभिहत होकर उसने भी अपने परम श्रेष्ठ शरीरस्वत का त्याग करके मानों रोगाक्रान्त होकर मृत्यु को प्राप्त हुआ हो, वैसे ही अपने प्राणों का उसने त्याग दिया।

निहत्य विष्णुपुरुषं सार्वं प्रमथपुङ्खचैः।

विवेश चान्तरगृहं समादाय कलेवरम्॥८५॥

वीक्ष्य तं जगतो हेतुपीभृते भगवान्हरिः।

शिरां ललाटात्सम्पिण्डा रक्ष्यारामपातयत्॥८६॥

इस प्रकार विष्णुपुरुष द्वारपाल का वध करके महादेव ने उसके मृतक शरीर को उठाकर, अपने उत्तम प्रमथगणों के साथ विष्णु के अन्तःपुर में प्रवेश किया। भगवान् विष्णु ने

जगत् के कारणस्वरूप ईश्वर को देखकर अपने ललाट से
एक शिरा को भेदकर सधिर की धारा प्रवाहित की।

गृहण भिष्मो भगवन् यदीयामभित्तुते।
न विश्वेऽन्या द्वाचक्ता तब त्रिपुरार्थन॥ १७॥
न सम्पूर्णं कपालं तदद्वाहणः परमेष्ठिनः।
दिव्यं वर्षसहस्रं तु सा च धारा प्रवाहित॥ ८८॥

विष्णु बोले—हे अमितशुति भगवन्! मेरी इस भिक्षा को
स्वीकार करें। हे त्रिपुरमर्दन्! इसके अतिरिक्त अन्य कोई
भिक्षा आपके लिए उचित नहीं है। तत्प्रात्, सहस्रों दिव्य
बर्षों में भी परमेष्ठी ब्रह्मा का कपाल, पूर्वरूप से मुक्त नहीं
हुआ और वह रुधिर धारा सहस्रों दिव्य बर्षों तक बहती
रही।

अथाद्वायीत्कालरूपं हरिर्नारायणः प्रभुः।
संस्तुय विविधैर्भावैर्वृहुमानपुरः सरम्॥ ८९॥
किमर्थैषेतद्वृह्णां द्वाहणो भवता धृतम्।
प्रोवाच्य वृत्तपात्रिलं देवदेवो महेश्वरः॥ ९०॥

तत्प्रात् प्रभु नारायण विष्णु ने अत्यन्त सम्मानसहित,
विभिन्न प्रकार से स्तुति करके कालरूप से कहा— आपने
किसलिए ब्रह्मा का मस्तक धारण किया है? यह सुनकर
देवाभिर्देव महेश्वर ने पूरा वृत्तान्त सुनाया।

समाहृद्य हृषीकेशो द्विहाहत्यामध्याव्युतः।
प्रार्थयामास भगवान्मिमुक्तिं त्रिशूलिनम्॥ ९१॥

हृषीकेश भगवान् अच्युत (विष्णु) ने ब्रह्महत्या को अपने
समीप बुलाकर, उससे प्रार्थना की कि—वह त्रिशूलधारी
भगवान् शंकर का ल्याग कर दे।

न तत्याजाव सप्तश्चैव्याहतापि मुरारिणा।
यिरं ध्यात्वा जगदोनि शङ्करं प्राह सर्ववित्॥ ९२॥
द्रुजमव दिव्यां भगवन्मुरीं वाराणसीं शुभाम्।
यत्राद्विलजगहोषाद्विप्रत्राजायतीश्वरः॥ ९३॥

भगवान् मुरारि के द्वारा भली-भौति प्रार्थना करने पर भी
उस ब्रह्महत्या ने उनका पीछा नहीं छोड़ा था। तब चिरकाल
तक ध्यान करके सर्ववेत्ता प्रभु ने जगत् की योनि भगवान्
शंकर से कहा— हे भगवन्! अब आप परम शुभ एवं दिव्य
वाराणसीं मुरीं में जायें जहाँ पर समस्त जगत् के दोषों को
शीघ्र ही ईश्वर नष्ट कर देते हैं।

ततः सर्वाणि भूतानि तीर्थान्यायतनानि च।
जगाम त्वीत्यादेवो त्वोकानां हितकाम्यया॥ ९५॥

संस्तुयमानः प्रमर्थैर्भावोर्गतिसततः।
नृत्यमानो महायोगी हस्तन्यस्तकलेवरः॥ ९५॥

इसके पश्चात् समस्त भूतमात्र के हित की इच्छा से सभी
ग्रहण करने योग्य तीर्थों और आयतनों में लोला करने के
लिए गये। तब महान् योगधारी प्रमथगणों द्वारा चारों ओर से
संस्तुयमान होते हुए कालभैरव अपने हाथ में (द्वारपाल के)
मृत-कलेवर को ग्रहण करते हुए नृत्य कर रहे थे।

तपमध्याद्वद्वान्वरिनारायणः प्रभुः।
समास्त्वाय परं रूपं नृत्यदर्शनलालसः॥ ९६॥
निरीक्ष्माणो गोविन्दं वृषेन्द्राक्षितशासनः।
सम्मयोऽनन्तयोगात्मा नृत्याति स्म पुनः पुनः॥ ९७॥

उस समय हरि प्रभु नारायण भी नृत्य देखने की इच्छा से
उनके पीछे-पीछे दौड़ पड़े। वृषेन्द्र से अद्वित बाहन बाले
अनन्त योगात्मा भगवान् शिव स्वयं साक्षात् गोविन्द को
वहाँ पर देखकर बहुत विस्मित होते हुए बारम्बार अपना
नृत्य करने लगे थे।

अनुं चानुचरो रूपं स हरिर्द्वर्घवाहनः।
भेजे महादेवपुरीं वाराणसीति विश्रुताम्॥ ९८॥
प्रदिवष्टात्रे किञ्चेषो द्विहात्या कपर्हिनि।
हाहेत्युक्त्वा समादं वै पातालं प्राप दुःखिताम्॥ ९९॥

अन्त में धर्मवाहन बाले रूप ने अपने अनुचरों के साथ
वाराणसी के नाम से प्रसिद्ध महादेव की नगरी में प्रवेश
किया। विशेषर कपर्ही शंकर के वाराणसी में प्रवेश करते ही
ब्रह्महत्या हाहाकार करती हुई दुखी होकर पाताल में चली
गई।

प्रविश्य परमं स्थानं कपालं द्विहणो हरः।
गणानापत्रो देवः स्थापयामास शंकरः॥ १००॥
स्थापयित्वा महादेवो ददौ तद्य कलेवरम्।
उक्त्वा सजीवपस्तिविति विष्णवेऽसौ धृणानिधिः॥ १०१॥

महादेव शंकर ने अपना परम धाम में प्रवेश करके ब्रह्मा
के कपाल को अपने गणों के सामने रख दिया। दयानिधि
भगवान् महादेव ने उस कलेवर को स्थापित करके कहा—
यह जीवित हो। फिर विष्णु को विष्वक्सेन का शरीर सौंप
दिया।

ये स्मरन्ति प्रभाजसं कपालं वेषमुत्तमम्।
तेषां विवश्यति क्षिप्रमिहामुत्रं च पातकम्॥ १०२॥
आगम्य तीर्थप्रवरे स्नानं कृत्वा विद्यानतः।

तर्पयित्वा पितृनदेवाम्युच्यते ब्रह्महत्या॥ १०३॥

जो भेरे इस उत्तम कपालिक स्वरूप को सदा ध्यानपूर्वक स्मरण करते हैं उनके इस लोक के और परलोक के सारे पाप शीघ्र ही नष्ट हो जाते हैं। जो कोई इस श्रेष्ठ तीर्थस्थान में आकर विधिपूर्वक स्नान करके पितरों और देवताओं का तर्पण करता है तो वह ब्रह्महत्या के पाप से मुक्त हो जाता है।

अशास्त्रते जागज्ञात्वा द्रुजव्यं परमां पुरोष।

देहान्ते तत्परं ज्ञानं ददाति परमम्पदम्॥ १०४॥

जो व्यक्ति इस जगत् को अनित्य समझ कर इस श्रेष्ठ पुरी में निवास करता है तो मृत्यु के समय मैं उसे परमज्ञान और परमपद को प्रदान करता है।

इतीदमुक्त्वा भगवान् सपालिङ्गं चनार्हनम्।

सहैव प्रमथेशानैः क्षणादन्तरधीयता॥ १०५॥

स लक्ष्या भगवान्कृष्णो विष्वकर्मेन त्रिशूलिनः।

स्वन्देशपगमतूर्धीं गृहीत्वा परमं द्युषः॥ १०६॥

ऐसा कहकर महादेव ने जनार्दन का आलिंगन किया और शीघ्र ही प्रमथगणों के साथ अदृश्य हो गये। परम बुद्धिमान् भगवान् विष्णु भी त्रिशूली से विष्वकर्मेन को पाकर शीघ्र ही अपने स्थान को छले गये।

एतद्: कथितं पुण्यं महापातकनाशनम्।

कपालमोचननीर्थं स्थाणोः प्रियकरं शुभम्॥ १०७॥

य इषं पठनेऽध्यायं ब्राह्मणानां समीपतः।

मानसैर्वाचिकैः पापैः कायिकैश्च प्रमुच्यते॥ १०८॥

इस प्रकार महापातक का नाश करने वाला महादेव का अतिशिय, पवित्र इस कपालमोचन नामक तीर्थ के विषय में आपको कहा गया है। जो मनुष्य ब्राह्मण के पास रहकर इस अध्याय का पाठ करता है, वह मानसिक, वाचिक और कायिक सभी प्रकार के पापों से मुक्त हो जाता है।

इति श्रीकृष्णपुराणे उत्तरार्द्धे कपालमोचनमाहात्म्ये

नामैकविंशोऽध्यायः॥ ३१॥

द्वारिंशोऽध्यायः

(प्रायश्चित्त-नियम)

व्यास उवाच

सुरापस्तु सुरां तसापमिवर्णा पिवेतदा।

निर्दब्धकायः स तथा मुच्यते च हिंडोत्तमः॥ १॥

गोभूत्रमिवर्णा वा गोशकुद्रसमेव च।

पयो घृतं जलं वाय चुम्यते पातकात्ततः॥ २॥

व्यासजी बोले— सुरापान करने वाला ब्राह्मण अग्नि के समान लाल वर्ण की डण्ड सुरा का पान करेगा। उससे शरीर दग्ध हो जाने पर वह पाप से मुक्त हो जायेगा। अनिवर्ण का गोभूत्र अथवा गोवर का रस, गाय का दूध, गाय का धी या जल को पीने से उसका शरीर झुलसने से वह पाप मुक्त हो जाता है।

जलार्द्वासाः प्रयतो व्यात्वा नारायणं हरिम्।

ब्रह्महत्याद्वातं चाय चरेत्पापप्रशान्तये॥ ३॥

मुवर्णस्तेयकृद्विप्रो राजानमधिगच्छ तु।

स्वकर्म ख्यापयन्दूयान्मा भवाननुशास्त्रिवत्ति॥ ४॥

पाप की शानि के लिये पानी में गौले बस्त्र पहन कर पवित्र होकर और नारायण हरि का ध्यान करते हुए ब्रह्महत्या व्रत का पालन करें। सोना चुराने वाला ब्राह्मण राजा के पास जाकर अपनी चोरी को कबूल करते हुए कहे कि हे राजन्! मुझे दण्ड दीजिए।

गृहीत्वा मुसलं राजा मक्खदन्यात् ते स्वयम्।

वये तु शुद्धयते सोनो ब्राह्मणसप्तसात्वा॥ ५॥

राजा स्वयं मूसल लेकर उस ब्राह्मण को एकद्वार भारेगा जिससे उसकी मृत्यु हो जाने पर अथवा अपनी तपस्या के द्वारा भी वह चोर ब्राह्मण पाप से मुक्त हो सकता है।

स्वत्वेनादाय मुसलं लगुडं वापि खादिरम्।

शक्तिभूदाय दीक्षणाप्रामायम् दण्डमेव वा॥ ६॥

राजा तेन च गनव्यो मुक्तकेशेन वावता।

आद्यक्षणेन तत्पापमेतत्कर्मास्मि शायि माप्॥ ७॥

अथवा वह स्वयं अपने कंधे पर मूसल, या खदिर से निर्मित दण्ड अथवा नुकीले भाग वाली शक्ति और लोहे की छड़ धारणकर, खुले बाल रखकर तीव्र गति से राजा के

पास जाना चाहिए और राजा से कहना चाहिये कि मैंने यह पाप किया है मुझे दण्ड दो।

शासनाद्विक्षेक्षाद्वास्तेनः स्तेयाद्विमुच्यते।
अशासित्वा तु तं राजा स्तेनस्यापनोति किल्विषम्॥ ८॥
तपसापनोतुभिष्ठेन्मु सुवर्णस्तेयजं मलम्।
चीरवामा द्विजोऽरण्ये चरेद्व्रह्महणो द्रवतम्॥ ९॥
स्नात्वाभ्येषावभृते पूतः स्वादववा द्विजः।
प्रद्वादाद्वय विशेषः स्वात्मतुल्ये हिरण्यकम्॥ १०॥
चरेद्वा वत्सरं कृच्छ्रं द्रव्याचर्यपरायणः।
द्राह्मणः स्वर्णहारी तु तत्पापस्यापनुत्ये॥ ११॥

राजा के द्वारा दण्ड देने पर अथवा उसे छोड़ देने पर वह चोर चोरी के पाप से मुक्त हो जाता है। परन्तु राजा उसे दण्ड न दे तो राजा स्वयं उस पाप का भागी हो जाता है। सुवर्ण की चोरी करने वाले पाप को दूर करने की इच्छा से द्राह्मण को कोपीन पहनकर जंगल में रहते हुए ब्रह्महत्या का ब्रत करना चाहिये या द्राह्मण को अवधेध में अवधृथ स्नान करके पवित्र होना चाहिये अथवा अपने बजन के बराबर सोने का दान द्राह्मणों को करना चाहिये। सुवर्ण की चोरी करने वाले द्राह्मण को पाप से मुक्त होने के लिये द्रव्याचर्य परायण होकर एक वर्ष तक कठोर ब्रत का पालन करना चाहिये।

गुरोर्भायी समारहा द्राह्मणः कामपोहितः।
अवगृहेत्विक्षयं तसां दीपां कार्ण्याद्यसीं कृताम्॥ १२॥

यदि द्राह्मण कामासक होकर गुरुपत्नी के साथ सहवास करे तो राजा उसे चमकती हुई लोहे की संतान मूर्ति से आलिङ्गन करने को कहे।

स्वयं वा शिश्नवृषणावुक्त्याद्याय द्वाष्टलौ।

अधिगच्छेद्विष्णुशामानिपाताद्विग्रहणः॥ १३॥

अथवा तो उसे स्वयं पाप के ग्रायणित के लिए अपना लिङ्ग और दोनों वृषण काटकर आँखिलि में रखकर दक्षिण दिशा की ओर जाना चाहिए, जब तक वह नीचे की ओर गिर न पड़े।

गुरुकृत्वागमः शुद्धै चरेद्व्रह्महणो द्रवतम्।
शाखां वा कण्टकोपेतां परिक्षयाद्य वत्सरम्॥ १४॥
अथःश्याम नियतो मुच्यते गुरुत्वगः।
कृच्छ्रं वादं चरेद्विष्णुरवासाः समाहितः॥ १५॥

अथवा गुरुभार्या के साथ समागम को शुद्धि के लिए वह यापी कॉटिदार वृक्ष की शाखा को आलिङ्गन कर एक वर्ष तक नीचे जमीन पर कुछ भी विलाये थिना शयन करना चाहिए। ऐसा करने से वह व्यभिचारी पाप से मुक्त हो जाता है। अथवा विप्र चौर (फटे-पुराने) वस्त्र पहनकर एकाग्र चित से एक वर्ष तक कृच्छ्र ब्रत का आचरण करे।

अष्टुपेषावधृथके स्नात्वा वा शुद्ध्यते द्विजः।
कालेऽष्टुपे वा भुज्ञानो द्रव्याचारी सदा द्रव्ती॥ १६॥
स्वानाशनाद्यां विहारस्त्रिरहोऽभ्युपयत्तः।
अथःशायी विभिवर्त्तसाद्व्यपोहिति पातकम्॥ १७॥
चान्द्रायणानि वा कुर्यात्पञ्च चत्वारि वा पुनः।

अथवा वह द्विज अष्टुपेध यज्ञ का अवधृथ स्नान करके शुद्ध हो जाया करता है। अथवा आठवें काल में (दो दिन के उपवास के बाद तीसरे दिन) भोजन करता हुआ ब्रह्मचारी एवं सदा व्रतपरायण रहे। और एक ही स्थान पर स्थिति रखकर तथा भोजन लेकर विहार करता हुआ तीन वर्ष तक नीचे जमीन पर शयन करने वाला पुरुष उस पाप को दूर करने में समर्थ होता है। उस ब्रत के अन्त में भी उस पापी को पौंच या चार चान्द्रायण ब्रत करने चाहिए।

पतितैः संप्रयुक्तात्मा अथ वक्ष्यामि निष्कृतिम्॥ १८॥
पतितेन तु संसर्गे यो येन कुरुते द्विजः।

स तत्पापापनोदार्वी तस्यैव द्रवत्पाचरेत्॥ १९॥

जो पतित-धर्मभृत लोगों के साथ अच्छी प्रकार संपूर्ण है, अब उसकी निष्कृति के विषय में कहता हूँ। जो द्विज जिस पतित के साथ संसर्ग रखता है, उस पाप को दूर करने के लिए वह उसी के ब्रत का आचरण करेगा।

तस्कृच्छ्रोद्वय संवत्सरपतन्त्रितः।
षाण्मासिके तु संसर्गे प्रायष्टित्तार्थपाचरेत्॥ २०॥
एभिर्द्वैतैरपोहन्ति महापातकिनो मलम्।
पुण्यतीर्थाभिगमनात्पृथिव्यां वाय निष्कृतिः॥ २१॥

तन्द्रा से रहित होकर उस द्विज को तस्कृच्छ्र ब्रत का समाचरण करना चाहिए। वह ब्रत भी पूरे एक वर्ष तक करे। यदि पतित के साथ संसर्ग केवल है: मास तक ही रहा हो तो उसका ग्रायणित भी आधा हो करना चाहिए। इन्हीं द्वारों के द्वारा महापातकी भी पापरूपी मल को दूर कर लेते हैं। अथवा पृथिवी में जो परम पुण्य तीर्थ हैं उनमें वह परिधामण करे हो भी ऐसे पातकों को निष्कृति हुआ करती है।

ब्रह्महत्या मुरायानं स्तेयं गुर्वद्वनागमप्।
कृत्वा तैश्चापि संसर्गं द्वाहाणः कामचारतः॥ २२॥
कुर्यादनशनं विप्रः पुनस्तीर्थं समाहितः।
ज्वलनं वा विशेषदग्निं व्यात्वा देवं कपर्हिनप्त॥ २३॥
न ह्यन्या निष्कृतिर्दृष्टा मुनिर्धृदर्थवादिभिः।
तस्मात्पुण्येण तोर्वेषु दहन्वापि स्वदेहकप्त॥ २४॥

ब्रह्महत्या, मदिरायान, स्तेय (चोरी) या गुरुमत्रों के साथ गमनरूप पाप करता है, तो उन्हें भी पूर्वोक्त संसर्ग का प्रायश्चित्त करके शुद्ध होना चाहिए। यदि वह ब्राह्मण हो तो उसे अपनी इच्छा से प्रायश्चित्त कर लेना चाहिए। यदि उपर्युक्त कोई महायाप किया हो तो ब्राह्मण को किसी पवित्र तीर्थ में जाकर समाहितचित्त होकर अनशन करना चाहिए। अथवा देव कपर्दी का ध्यान करते हुए प्रज्वलित अग्नि में प्रवेश कर लेना चाहिए। क्योंकि धर्मवादी मुनियों ने इसके अतिरिक्त अन्य कोई भी उपाय महा यात्रियों की शुद्धि के लिये नहीं देखा है। इसलिये पुण्य तीर्थों में अपने देह को दाप करते हुए भी अपनी शुद्धि अवश्य ही करनी चाहिए।

इति श्रीकृष्णपुराणे उत्तरार्द्धे द्वार्तिंशोऽध्यायः॥ ३२॥

ब्रयस्त्रिंशोऽध्यायः (प्रायश्चित्त-नियम)

व्यास उवाच

गत्वा दुहितरं विप्रः स्वसारं वा स्मुदायपि।
प्रयिशेऽत्यलनदीतं यतिपूर्वपिति स्वितिः॥ १॥

यदि कोई ब्राह्मण अपनी पुत्री, बहन या पुत्रवधु के साथ व्यभिचार करता है, तो उसे बुद्धिपूर्वक जलती हुई अग्नि में प्रवेश कर जाना चाहिए।

पातृव्यसां मातुलानीं तथैव च पितृव्यसाम्।
भागिनेयों समारुद्ध कुर्यात्कृच्छ्रातिकृच्छ्रकौ॥ २॥

चान्द्रायणङ्गं कुर्यात् तस्य पापस्य शान्तये।
व्यायन्देवं जगद्योनियनादिनियनं हरिष्य॥ ३॥

इसी प्रकार अपनी मौसी, मामी या बुआ अथवा भौंजी के साथ व्यभिचार करता है, तो उसे प्रायश्चित्तरूप में कृच्छ्रतिकृच्छ्र व्रत करना चाहिए। अथवा उस पाप की शान्ति हेतु जगत् के योनिरूप, आदि और अन्त से रहित देव विष्णु का ध्यान करते हुए चान्द्रायण व्रत करना चाहिए।

प्रातुभायां समारुद्ध कुर्यात्तत्पापशानतये।
चान्द्रायणानि चत्वारि पञ्च वा सुसपाहितः॥ ४॥

यदि कोई पुरुष भाई की पत्नी के साथ गमन करे तो उस पाप की शान्ति के लिए अच्छी प्रकार सावधान होकर चार या पाँच चान्द्रायण व्रत करने चाहिए।

पितृव्यस्त्रेयीं गत्वा तु स्वस्त्रीयो मातुरेव च।
मातुलस्य सुती वापि गत्वा चान्द्रायणं चरेत्॥ ५॥

इसी प्रकार बुआ की लड़की, बहन की लड़की, मौसी की लड़की या मामी की लड़की के साथ समागम करके प्रायश्चित्तरूप में (पुनः पाप न करने की प्रतिज्ञा करके) चान्द्रायण व्रत करे।

सखिभायां समारुद्ध गत्वा श्यालीं तथैव च।
अहोरात्रेष्वितो भूत्वा ततः कृच्छ्रं समाचरेत्॥ ६॥

अपने मित्र की पत्नी अथवा साली के साथ समागम करने पर एक दिन-रात का उपवास करके तस्कृच्छ्र नामक व्रत का आचरण करे।

उदक्या गमने विश्रस्तिरात्रेण विशुद्ध्यति।
चाण्डालीप्राप्ने चैव तस्कृच्छ्रवयं विदुः॥ ७॥

शुद्धिः सान्तप्नेन स्यान्नान्यथा निष्कृतिः स्मृता।

यदि कोई ब्राह्मण रजस्वला के साथ गमन करता है, तो तीन रात्रि के बाद शुद्धि होती है। चाण्डाली के साथ समागम करने पर तीन बार तस्कृच्छ्र और सान्तप्न व्रत करने पर ही शुद्धि कही गई है, अन्यथा निष्कृति नहीं है।

मातृगोत्रां समारुद्ध समानप्रवरां तथा॥ ८॥

चान्द्रायणेन सुध्येत प्रयतात्पा समाहितः।
ब्राह्मणो ब्राह्मणीङ्गत्वा कृच्छ्रमेकं समाचरेत्॥ ९॥

कन्यकान्दूषयित्वा तु चोरेचान्द्रायणद्रतम्।

माता के गोत्र में उत्पत्त तथा समान गोत्र वाली स्त्री के साथ समागम करने पर एकाग्रचित्त से चान्द्रायण महाव्रत से ही शुद्धि होती है। ब्राह्मण यदि किसी भी ब्राह्मणी के साथ मैथुन करे, तो उसे फिर पाप के अपनोदन के लिये एक ही कृच्छ्र व्रत का आचरण पर्याप्त होता है। यदि किसी कन्या का शोल भङ्ग करके दूषित करे तो उसको भी चान्द्रायण महाव्रत का ही आचरण करना चाहिए।

अपानुपीषु पुरुष उदक्यायामयोनिषु॥ १०॥

रेतः सिवत्वा जले चैव कृच्छ्रं सान्तप्ने चरेत्।
वार्द्धिकीयमने विश्रस्तिरात्रेण विशुद्ध्यति॥ ११॥

गवि मैथुनपासेव्य चरेचान्द्रायणद्रतम्।
वेश्यायां मैथुनं कृत्वा प्राजापत्यं चरेदिहजः॥ १२॥

कोई पुरुष अमानुषी, रजस्वला और अयोनि में तथा जल में अपना वीर्यपात करता है, तो उसे शुद्धि के लिये कृच्छ्र सान्तपन ब्रत का पालन करना चाहिए। यदि वार्दुकी (व्यभिचारिणी) स्त्री के साथ गमन करने पर विष्र तीन रात्रि में शुद्ध होता है। गौ में मैथुन का आसेवन करके चान्द्रायण ब्रत को ही करना चाहिए। वेश्या में मैथुन करके द्विज शुद्धि के लिये प्राजापत्य ब्रत करे।

पतितां च स्त्रियहृत्वा विभिः कृच्छ्रविशुद्ध्यति।
पुल्कसीगमने दैव कृच्छ्रं चान्द्रायणं चरेत्॥ १३॥
नटीं शैलूषकीं दैव रजकीं वेणुजीविनीम्।
गत्वा चान्द्रायणहृद्यात्यथा घर्मोणीजीविनीम्॥ १४॥
ब्रह्मचारी स्त्रियहृच्छ्रत्यशुद्धित्वाप्नोहितः।
सप्तागारं चरेदैक्षं वसित्वा गर्दधाजिनम्॥ १५॥
उपसृष्टेनियवणं स्वयापं परिकीर्तयन्।
संवत्सरेण दैक्षेन तस्मात्पापात्रमुच्यते॥ १६॥

पतित स्त्री से समागम कर तीन कृच्छ्रों से विशुद्ध हुआ करता है। पुल्कसी के गमन में कृच्छ्र और चान्द्रायण ब्रत करना चाहिए। नटी, नटकी, धोविन, बाँस बेचने वाली और चमड़े का काम करने वाली स्त्री के साथ सहवास करने से चान्द्रायण ब्रत करना चाहिए। यदि कोई भी ब्रह्मचर्य ब्रत के धारण करने वाला द्विज कामदेव से मोहित होकर किसी भी तरह किसी स्त्री का गमन करे तो उसकी विशुद्धि का विधान यही है कि उसे गधे का चर्म धारण कर सात घण्टों में भिषा मांगनी चाहिए। वह त्रिवरण में अर्थात् तीनों कालों में स्नान कर उपस्थिति करता रहे और अपने पाप को सब के समक्ष कहते हुए निरन्तर एक वर्ष पर्यन्त व्रताचरण करे तो उस पाप से उसकी मुक्ति होती है।

ब्रह्महत्याद्रत्तुषापि यण्मासान्विचरन्यमी।
मुच्यते हृवकीर्णीं तु द्राह्मणानुमते स्थितः॥ १७॥
सप्तरात्रपकृत्वा तु भैक्षयर्याग्निपूजनम्।
रेतसञ्च समुत्सर्गं प्रायश्चित्तं समाचरेत्॥ १८॥
ओकारपूर्विकापिस्तु महाव्याहतिभिः सदा।
संवत्सरन्तु भुज्ञानो नक्तं भिष्माशनः शुचिः॥ १९॥
सावित्रीञ्जु जपेनित्यं सत्वरः क्रोधवर्जितः।
नदीनीरेषु तीर्थेषु तस्मात्पापाद्विमुच्यते॥ २०॥

यदि यमी (संन्यासी) है, तो ब्रह्महत्या के ब्रत को छः मास तक करने से यापमुक्त हो जाया करता है, ऐसा द्राह्मणों का कहना है। यदि कोई ब्रह्मचारी सात दिन तक भैक्षयर्या और अग्निदेव का पूजन नहीं करता, और वीर्यस्खलन करने पर प्रायश्चित्त करना चाहिए। अथवा एक वर्ष तक ओकारपूर्वक महाव्याहतियों से सदा रात्रि में चकित्र होकर भिषा द्वारा भोजन करके गायत्री का नित्य जप करे तथा जोध्र ही क्रोध को त्याग दे और नदी के तटों पर या तीर्थों में नित्य वास करे तो इस पाप से मुक्तिकारा प्राप्त कर लेता है।

हृत्वा तु क्षत्रियं विष्रः कुर्याद्ब्रह्मणो द्रतम्।
अकापतो वै यण्मासान्द्रायतपञ्चशत्त्रृत्वाम्॥ २१॥
अर्द्धं चरेदृश्यानयुतो वनवासी समाहितः।
प्राजापत्यं सान्तपनं तस्मकृच्छ्रं वा स्वयम्॥ २२॥

विष्र यदि किसी क्षत्रिय का वध कर दे तो उसे भी ब्रह्महत्या का ही ब्रत करना चाहिए और यदि विना इच्छा के द्राह्मण द्वारा ऐसा हो जाय, तो छः मास तक पाँच सौ गौओं का दान करना चाहिए। अथवा ध्यानयुक्त होकर एक वर्ष पर्यन्त बन में निवास करते हुए एकाग्रचित्त से प्राजापत्य ब्रत, सान्तपन ब्रत अथवा तस्मकृच्छ्र ब्रत ही करे।

प्रमादात्कामतो वैश्यं कुर्यात्संवत्सरत्रयम्।
गोसहस्रन्तु पादन्तु प्रदद्याद् ब्रह्मणो द्रतम्॥ २३॥
कृच्छ्रतिकृच्छ्रौ वा कुर्याद्वान्द्रायणम्यापि वा।

प्रमादवश या अपनी इच्छा से किसी वैश्य का हनन करने पर तीन वर्ष पर्यन्त एक हजार गायों का दान करना चाहिए और एक चतुर्थांश ब्रह्महत्या का ब्रत भी करना चाहिए। अथवा उसे कृच्छ्र और अतिकृच्छ्र दोनों ब्रत तथा चान्द्रायण ब्रत करना चाहिए।

संवत्सरं द्रतं कुर्याच्छूरं हृत्वा प्रमादतः॥ २४॥
गोसहस्राद्वृणादञ्च तत्त्वात्पापशान्तये।

यदि प्रमादवश या अनिच्छा से किसी शूद्र का वध कर देता है, तो उसे पाप की शांति के लिए पाँच सौ गायों का दान करना चाहिए।

अष्टौ वर्षाणि वा त्रीणि कुर्याद् ब्रह्मणो द्रतम्।
हृत्वा तु क्षत्रियं वैश्यं शूद्रं दैव यथाक्रमम्॥ २५॥
निहत्य द्राह्मणों विष्रस्वष्टवर्षं द्रतञ्चरेत्।
राजन्यां वर्षण्टकं तु वैश्यां संवत्सरत्रयम्॥ २६॥

वत्सरेण विशुद्धयत् शूद्रो हत्या हिजोत्तमः।

जिस किसी ब्राह्मण ने क्षत्रिय, वैश्य या शूद्र का वध किया हो, उसे क्रमशः आठ वर्ष, छः वर्ष तथा तीन वर्ष तक ब्रह्महत्या व्रत का पालन करना चाहिए। विष्र यदि किसी ब्राह्मणी की हत्या कर डाले तो आठ वर्ष तक उसे व्रत करना चाहिए। क्षत्रिय स्त्री के वध पर छः वर्ष और वैश्य स्त्री के वध में तीन वर्ष तक व्रत करना चाहिए। यदि विष्र किसी शूद्र स्त्री का वध कर डाले तो उसे विशुद्धि के लिये एक वर्ष पर्यंत व्रत करना चाहिए।

वैश्यां हत्या हिजोत्तम्नु किञ्चित्प्रादित्प्रजातये॥ २७॥

अन्त्यजानां व्ये वैव कुर्याद्वायणं द्रव्यम्।

पराकेणावत्वा शुद्धिरित्याह भगवान्मजः॥ २८॥

विशेष यह भी है कि यदि हिजोत्तमि किसी वैश्य का वध करे तो उसे ब्रह्मणादि के लिये कुछ दान भी अवश्य करना चाहिए। अन्त्यजों के वध में भी चान्द्रायण व्रत करके ही विशुद्धि का विधान है। भगवान् अज ने यह भी कहा है कि पराक नामक व्रत से भी शुद्धि हो जाती है।

पण्डूकं नकुलङ्कं विडालं खरपूषकौ।

शानं हत्या हिजः कुर्यात्प्रोडशांशं महाव्रतम्॥ २९॥

पयः पिवेत्विराग्ननु शानं हत्या ह्रातन्त्रितः।

मार्जारं वाव नकुलं योजनञ्जाव्वनो द्रव्येत्॥ ३०॥

यदि कोई हिजवर्ण मेंढक, नेवला, कौआ, विडाल, खर और मूषक तथा कूते की हत्या करता है, तो पाप से विशुद्ध होने के लिये महाव्रत का सोलहवां भाग अवश्य ही करना उचित है। किसी शान की हत्या करके तीन रात्रि तक अतिन्द्रित होकर दूध का पान करें। मार्जार अथवा नकुल का वध करके मार्ग से एक योजन तक गमन करें।

कृच्छ्रं हादशराग्ननु कुर्यादश्वव्ये हिजः।

अर्द्धा कार्णायसी द्यात्सर्पं हत्या हिजोत्तमः॥ ३१॥

पलालभारकं पण्डे सीसकञ्जुकमाषकम्।

धृतकुम्भं वराहे तु तिलद्रोणन्तु तितिरे॥ ३२॥

अह का वध करने पर हिज को बारह रात्रि तक कृच्छ्र व्रत करना चाहिए। हिजोत्तम को सर्प का वध करने पर काले लोहे की संपर्मूर्ति बनवाकर दान करना चाहिए। पण्ड अथवा नपंसक के वध में एक पलालभारक (आठ हजार तोला) और एक माषक शीशा का दान करना चाहिए। वराह

के वध में घृतपूर्ण कुम्भ और तीतर के वध में एक द्रोण तिलों का दान करना चाहिए।

शुशु द्विहायनं वत्सं क्रौञ्चं हत्या त्रिहायनम्।

हत्या हंसं बलाकाङ्गं वकं वर्हिणमेव च॥ ३३॥

बानरं स्वेनभासञ्जं स्पर्शवेद्वाहाणाय गाम्।

क्रव्यादांस्तु पृगाहत्वा येनुद्यात्पर्यस्विनीम्॥ ३४॥

शुक को मारने पर हो वर्ष के बछड़े का और क्रौञ्च पक्षी का वध करने पर तीन साल के बछड़े का दान करना चाहिए। हंस-बलाका-वक-मोर-बानर-बाज या भास पक्षी का वध करने पर ब्राह्मण को गौ का स्पर्श करावे अर्थात् उसका दान करो। इसी प्रकार मांसाहारी पशुपक्षियों का या मृगों का वध करके छोटे बछड़े का दान देना चाहिए।

अक्रव्यादान्वस्तरीपृष्ठं हत्या तु कृष्णालम्।

किञ्चिदेह्यनु विप्राय दद्यादिश्चिमतां वद्ये॥ ३५॥

अमांसाहारी पशु-पक्षियों का वध करने पर छोटी बछड़ी का दान दें और उष्ट्र की हत्या करने पर ब्राह्मण को एक रत्ती सुवर्ण आदि किसी धातु का दान देना चाहिए। अस्थियुक्त पशु आदि का वध करने से ब्रह्मण को कुछ दान अवश्य ही देना चाहिए।

अनस्त्रांश्च विसायां प्राणायामेन शुद्धति।

फलादानानु वृक्षाणां छेदने जप्यपृक्षतम्॥ ३६॥

जिनके अस्थियाँ नहीं होती हैं, ऐसे प्राणियों के वध में तो केवल प्राणायाम करने से ही हिज की पाप से शुद्धि हो जाया करती है। परन्तु फल प्रदान करने वाले वृक्षों को काटने पर ऋग्वेद की सौ ऋचाओं का जप करना चाहिए।

गुल्मवल्लीत्तानानु पुष्पितानाङ्गं वीर्याम्।

अण्डजानां च सर्वेषां स्वेदजानां च सर्वशः॥ ३७॥

फलपुष्पोद्दवानाङ्गं धृतप्राशो विशेषनम्।

गुल्म, वल्ली, सता और पुष्पों वाले वृक्षादि का छेदन करने में तथा सभी अण्डज प्राणियों के एवं स्वेदज जीवों के वध में तथा फल एवं पुष्पों के उद्धव करने वालों के छेदन में घृत का प्राश कर लेने से ही विशुद्धि होती है।

हस्तिनाङ्गं व्ये दृष्टं तपसकृच्छ्रं विशेषनम्॥ ३८॥

चान्द्रायणं पराकं वा गौ हत्या तु प्रमादतः।

मतिपूर्वव्ये चास्या: प्रायश्चित्तं न विद्यते॥ ३९॥

हाथियों के वध में तो तपसकृच्छ्र ही विशेष शोधन करने वाला देखा गया है। प्रमादवश गौ का वध हो जाने पर

चान्द्रायण महाव्रत या पराक्र व्रत करे। परन्तु जानवृक्ष बुद्धिपूर्वक गोवधरुपी पाप होने पर उसकी शुद्धि के लिए प्रायशित हो नहीं है।

इति श्रीकृष्णपुराणे उत्तरार्द्धे प्रायशितनिरूपणे
त्रयस्त्रिंशोऽध्यायः॥ ३३॥

चतुर्स्त्रिंशोऽध्यायः (प्रायशित नियम कथन)

व्यास उक्ताच

मनुष्याणानु हरणं कृत्वा खीणां गृहस्य च।
वार्षीकृपजलानाञ्च शुद्धयेयांद्रायणेन तु॥ १॥

ज्यासजी बोले— पुरुष, स्त्री और गृह का अपहरण तथा वार्षी (वावली), कृप (कुर्म) के जल का हरण करने वाले मनुष्यों की शुद्धि चान्द्रायण व्रत से होती है।

द्रव्याणामल्पसाराणां स्तेवं कृत्वाऽन्यवेशमनः।
घरेत्सांतपनं कृच्छ्रं तत्रियात्यात्मशुद्धये॥ २॥

दूसरे के घर से कम मूल्य की वस्तुएं चुराने वालों की शुद्धि सान्तपन व्रत करना चाहिए। इस प्रकार वह (पाप) सम्पूर्णरूप से दूर होता है।

धान्याभ्यन्तर्यान्तुं कृत्वा कामादिद्वयोत्तमः।
स्वजातीयगृहदेव कृच्छ्रार्द्धेन विशुद्धयति॥ ३॥

यदि ग्राहाण लोभ के कारण साजीतय के घर से धान्य, अब्र एवं धन को चुराता है, तो एक साल तक प्राजापत्य व्रत करने से उसकी शुद्धि होती है।

भक्ष्यभोज्योपहरणे यानशब्दासनस्य च।
पुष्पमूलफलानाञ्च पंचगव्यं विशेषनम्॥ ४॥

खाने-पीने योग्य भोज्य पदार्थ, वाहन, शब्दा, आसन, पुष्प, मूल और फल चुराने से पंचगव्य (गोमूत्र, गोबर, गाय का दूध, दही और घो) के द्वारा शुद्धि करनी चाहिए।

तृणकाठुमाणां च शुक्काप्रस्य गुडस्य च।
चैलवर्मापिशाणां च शिरात्रं स्यादपोजनम्॥ ५॥

तृण, काष्ठ, वृक्ष, सूखा अब्र, गुड़, वस्त्र, चमड़ा या मांस— इनमें से कुछ भी चुराया हो तो, तीन रात तक उपवास करना चाहिए।

मणिमुक्ताप्रवालानां ताप्रस्य रजतस्य च।

अयस्कालोपलानाञ्च द्वादशाहं कणाशनम्॥ ६॥

कार्पासस्त्रैव हरणे द्विशफैकशफस्य च।
पुष्पगाढ्याणाञ्च पिवेश्वै त्र्यहं पश्यः॥ ७॥

मणि, मुक्ता, प्रवाल, ताँबा, चाँदी, लोहा, कौसा और पथर में से कोई भी चीज चुराने से (प्रायशितरूप में) बारह दिन अनाज के कुछ कण खाकर रहना चाहिए। कपास या उससे निर्मित वस्त्र, दो खुर बाले या एक खुर बाले पश्च, फूल, इत्र और औषधि को चुराने से तीन दिनों तक दूध पीकर रहना चाहिए।

नरमासाशनं कृत्वा चान्द्रायणपथाचरेत्।
काकाञ्छैव तथा शानञ्चल्पा हस्तिनमेव वा॥ ८॥

बराहं कुकुटुं वाय तस्मकृच्छ्रेण शुद्धयति।

मनुष्य का मांस खाने से चान्द्रायण व्रत करना चाहिए। कीआ, कुक्ता, हाथी, ग्राम्यशूकर और ग्राम्यमुर्ग— इनमें से किसी का मांस खाने से तस्मकृच्छ्र व्रत के द्वारा शुद्धि होती है।

ऋग्यादानाञ्च मांसानि पुरीषं पूत्रमेव वा॥ ९॥

गोगोमायुक्तीनां च तदेव द्वात्माचरेत्।

शिशुमारनथा चायं पत्स्यमांसं तत्त्वैव च॥ १०॥

उपोष्य द्वादशाहं कूप्याण्डैनुहुयाद् धृतम्।

नकुलोलूकमार्जाराङ्गम्बा सानपनं चरेत्॥ ११॥

मांसाहारी पशु-पक्षियों का मांस, मल-मूत्र, सौँड़, सियार और बन्दर का मांस, शिशुमार (जलजन्तु विशेष) नीलकण्ठ तथा अन्य मछलियों को खाने से भी तस्मकृच्छ्र व्रत करना चाहिए। अथवा बारह दिन उपवास रहकर, कूप्याण्ड के साथ अग्नि में घो की आहुति देनी चाहिए। नेवला, उल्लू और दिल्ली का मांस खाने से सान्तपन व्रत करना चाहिए।

श्वापदोष्टुखराङ्गम्बा तस्मकृच्छ्रेण शुद्धयति।

प्रकृद्याद्यैव संस्कारं पूर्वेण विधिनैव तु॥ १२॥

कूते के पैरों जैसे पैरवाले पश्च, ऊँट और गधा का मांस खाने लेने पर तस्मकृच्छ्र व्रत से शुद्धि होती है तथा पूर्वोक्त विधि से (शुद्धि के लिए) संस्कार भी करना चाहिए।

बकं चैव बलाकाञ्च हंसद्वारण्डवांसत्वा।

चक्रवाकपलं जग्या द्वादशाहमभोजनम्॥ १३॥

यदि कोई बगुला, बलाका, हंस, कारण्डव (हंस विशेष) और चक्रवाक का मांस खा ले, तो उसे बारह दिनों तक उपवास रखना चाहिए।

कपोतटिटिभाष्टैव श्रुकं सारसपेत च।
 उलूकं जालपादङ्गं जम्बुवाय्येतद्वतज्ञरेत्॥ १४॥
 शिशुमारं तथा चाषं मन्त्रयामासं तथैव च।
 जम्बु चैव कटाहारपेतदेव द्रुतं चरेत्॥ १५॥
 कबूतर, टिटिंभ, तोता, सारस, उलू और चतुख पक्षी
 मांस खाने से बारह दिन उपवास करना चाहिए।
 शिशुमार नामक जलचर प्राणी, चाष पक्षी और मछली का
 मांस खाने से, या बिना शींग वाले छोटे भैंसे का मांस
 बसने रखाया हो, उसे भी बही द्रुत करना चाहिए।

कोकिलं चैव मत्स्यादान्मण्डुकं भुजगनक्षा।
 गोमूष्टयावकाहारो मासेनैकेन शुद्धयति॥ १६॥
 जलेघराञ्छु जलजात्रपुदानव्य विक्षिकान्।
 रक्तपादांस्तथा जस्त्वा सप्ताहं चैतदाच्यरेत्॥ १७॥
 कोयल, ऊदविलाब, मेढक और सौंप खाने पर एक
 हीने तक गोमूत्र में जौ उबाल कर खाने से शुद्धि होती है।
 ल में रहने वाले, जल में उत्पन्न होने वाले (शंखादि)
 अट्फोड़वा जैसे चौंच मारने वाले पक्षी, विखरे हुए दानों को
 गगने वाले तीतर जैसे पक्षी और रक्तपाद (तोता) का मौस
 खाने से एक सप्ताह तक गोमूत्र में जौ उबालकर खाना
 दिय।

शुनो मासं शुक्रमासमात्यर्थं च तदा कृतम्
भुक्त्वा मासं चेदेतत्त्वापस्यापनुयते॥ १८॥
यनाकं भूषणे शिवे कुटकं घटकं तदा।
प्राजापत्यं चरेत्तद्या गवङ् कम्पीकमेव च॥

कृते का माँस तथा सूखा माँस अपने खाने के लिए तैयार किया हो, तो उसे पाप का नाश करने के लिए एक महोने तक गोमूत्र में पकाया गया जौ खाना चाहिए। बैंगन, जमोन के नीचे उगने वाले कन्द-मूल, सहिजन, खुम्भी (मशरूम) गौरीया, शंख और कुम्भीक (जलधर या बनस्पति) खाने से प्राणापन्य बत करना चाहिए।

पलाण्डु लशुनं चैव भुक्त्वा चान्द्रायणं चरेत्।
नालिकां तपद्वलीयं च प्राजापत्येन शुद्धयति॥ २०॥
अश्मन्तकं तथा पोतं तस्मक्वचेण शुद्धयति।
प्राजापत्येन शुद्धिः स्यात्क्षमस्य च भक्षणे॥ २१॥

ज्याज या लहसुन खाने से भी चान्द्रायण करे तथा कमलनाल और चौलाई खाने से प्राजापत्य व्रत करने से शुद्धि होती है। अरमन्तक^१ (कचनार) और पात नामक अधृत्य खाने से तासकूचू और कुसुंभ^२ खाने से प्राजापत्य व्रत से शुद्धि होती है।

अलावुर्द्धगुरुकञ्चैव भुक्त्वा प्येतद्व्रतम्।
 एतेषाम् विकाराणं पीत्वा मोहेन या पुनः॥ २२॥
 गोप्त्रयावकाहारः सप्तराश्रेण शुद्धयति।
 उद्यमरस्त कामेन तपस्कृच्छ्रेण शुद्धयति।
 भुक्त्वा धैव नवश्राद्दे पृतके मूतके तथा॥ २३॥
 यान्द्रायणेन शुद्धयेत द्वाष्ट्रणः सुप्रापाहितः।

लौकी और किंशुक (पलाश) खाने से प्राज्ञापत्र्य ब्रत करना चाहिए। अज्ञानतावश खराब हो गए दूध को पी लेने से, सात रात्रियों तक गोमूत्र में पकाया हुआ जौ खाने से शुद्धि होती है। स्वेच्छा से गूलर वृक्ष खा लेने पर तस्कृच्छ्र ब्रत करने से शुद्धि होती है। जो मुल्यु में नव दिन बाद होने वाले श्राद्ध में, और सूतक के अवसर पर भोजन करता है, वह ब्राह्मण एकाग्रचित होकर चान्द्रायण ब्रत करने पर शुद्ध होता है।

यस्यामनौ हयते नित्यमन्त्रस्याद्वं न दीयते॥ २४॥

चांद्रायणज्ञरेत्सम्यक् तस्याप्राप्नाशने ह्रिजः।
अभोज्याप्नतु सर्वेषां भुक्त्वा चाप्नपुण्मृतम्॥ २५॥
अनावसमिवाङ्गीय तस्मक्षेषण शुद्ध्यति।

जिस गृहस्थ की अनिं में नित्य अग्निहोत्र होता है, परन्तु अन्न का प्रथम भाग दान नहीं करता, ऐसे पुरुष का अन्न यदि ब्राह्मण खाता है, तो उसकी शुद्धि चान्द्रायण व्रत के द्वारा होती है। सभी जातियों से प्राप्त अधोज्य अन्न और निम्न जाति वालों का अन्न खाने से तपस्कृच्छ्र व्रत के द्वारा शुद्ध होना चाहिए।

चण्डालान् द्विजो भक्त्वा साप्यक चान्त्रायणङ्गरेत्॥ २६॥

बुद्धिपूर्वक कव्याल्बं पनः सांस्कारमेव चा

असुरापद्मानेन कुर्यान्नायणद्रुतम्॥ २७॥

जो ब्राह्मण चाण्डाल का अप्र स्खा ले, तो उसे विधिपूर्वक चान्द्रायण व्रत करना चाहिए। परन्तु जो उस अप्र को जानवद्धकर खाता है, तो एक साल तक प्राजापत्य करने के

१. शोभाडुनः शिष्यस्तीक्ष्णगन्धकाक्षीवमोचकाः । Hyperanthera
Moringa.

बाद पुनः उसका संस्कार करना चाहिए। जिसने सुरा के अतिरिक्त दूसरा मध्यपान किया हो, उसे चान्द्रायण व्रत करना चाहिए।

अभोज्याप्रनु भुक्त्वा च प्राजापत्येन शुद्धति।
विष्णुप्रप्राशनं कृत्वा रेतस्त्वैतदाचरेत्॥ २८॥

अभोज्य अत्र खाकर प्राजापत्य व्रत से शुद्धि होती है। मल, मूत्र तथा बोर्य भक्षण कर लेने पर भी यही प्राजापत्य व्रत करना चाहिए।

अनादिष्टे तु चैकाहं सर्वत्र तु यथार्थतः।
विष्वराहयुरोषाणां गोपायोः कपिकाकयोः॥ २९॥

अविहित कार्य करने से उत्पत्ति होने वाले पाप में नियमानुसार एक दिन का उपवास करना चाहिए। ग्राम्याशुद्ध, गधा, ऊट, सिंचार, बन्दर आँ कौए का मूत्र या मल खाने से, ब्राह्मण को चान्द्रायण व्रत करना चाहिए।

अज्ञानात्प्राप्त्य विष्णुवं सुरासंस्मृष्टेव च॥ ३०॥
पुनः संस्कारमहीनि त्रयो वर्णा द्विजात्यः।

अनजाने में, मनुष्य के मल, मूत्र और सुरा से छुइ दुई किसी वस्तु को खा लेने से तीनों वर्णों का पुनः उपनयन संस्कार होता है।

ऋग्यादां पश्चिमां चैव प्राप्त्यमूर्त्पुरीषकम्॥ ३१॥
प्राप्त्यासांतपनं योहात्यथा कुर्याद्विजोत्तमः।
भासमण्डककुरे विष्किरे कृच्छ्रपाचरेत्॥ ३२॥

मांसाहारी पशुओं या पश्चिमों का मल-मूत्र अज्ञानतावश खा लेने से, ब्राह्मण श्रेष्ठों को सान्तपत व्रत करना चाहिए। गिढ़, भेड़क, कुरर और फैले हुए दानों को चुगाने वाले तीतर जैसे पश्चिमों का माँस खाने से, कृच्छ्र व्रत करना चाहिए।

प्राजापत्येन शुद्धयेत् ब्राह्मणोच्छिष्टभोजने।
क्षत्रिये तपस्कृच्छ्रं स्याद्वैश्ये चैवातिकृच्छ्रकम्॥ ३३॥
शूद्रोच्छिष्टान्दिजो भुक्त्वा कुर्याद्वान्द्रायणव्रतम्।
सुराया भाण्डके वारि पीत्वा चान्द्रायणव्रतेत्॥ ३४॥

ब्राह्मण का जूठा भोजन खाने से प्राजापत्य, क्षत्रिय का खाने से तपस्कृच्छ्र और वैश्य का खाने से अतिकृच्छ्र व्रत करना चाहिए। शूद्र का जूठा खाने से और सुरा-पात्र में पानी पीने से, ब्राह्मण चान्द्रायण व्रत करेगा।

समुच्छिष्टं द्विजो भुक्त्वा त्रिरात्रेण विशुद्धतिः।
गोमूत्रयावकाहारः पीतशेषम् वा गवाम्॥ ३५॥

यदि कोई ब्राह्मण किसी का शूद्र खाता है, तो तीन रात उपवास करके शुद्ध होता है। गाय के पी लेने के बाद बचा हुआ पानी पीने से गोमूत्र मिश्रित कण का आहार करने से शुद्धि होती है।

अपो पूत्रपुरीषाद्वैदूषिताः प्राशयेष्टदि।

तदा सान्तपनं कृच्छ्रं व्रतं पापविशेषनम्॥ ३६॥

यदि मल-मूत्रादि से दूषित जल को पी लेता है, तो सान्तपन और कृच्छ्र व्रत से पाप की शुद्धि को जा सकती है।

चाण्डालाकृपे भाषेषु यदि ज्ञानात्पिवेज्जलम्।

चरेत्सांतपनं कृच्छ्रं ब्राह्मणः पापशोषनम्॥ ३७॥

कोई द्विज चाण्डाल के कुरैं या पात्र से, जानवृक्षकर पानी पीता है, तो पाप को शोधन करने वाला सान्तपन या कृच्छ्र व्रत करना चाहिए।

चाण्डालेन तु संस्पृष्टं पीत्वा वारि द्विजोत्तमः।

त्रिरात्रव्रतमुख्येन पञ्चगव्येन शुद्धतिः॥ ३८॥

चाण्डाल के द्वारा स्पर्श किया हुआ जल पी लेने से, ब्राह्मण श्रेष्ठ शुद्धि के लिये पंचगव्य पीकर तीन रात तक उपवास करे।

महापातकिसंस्पर्शं भुक्त्वा स्नात्वा द्विजो यदि।

बुद्धिपूर्वं वदा मोहात्पकृच्छ्रं समाचरेत्॥ ३९॥

यदि ब्राह्मण जानवृक्ष कर या अनजाने में, किसी महापापो का स्पर्श करे या भोजन करे अथवा स्नान करे तो, उसे तपस्कृच्छ्र व्रत करना चाहिए।

स्पृष्टा महापातकिनं चाण्डालङ्घं रजस्वलाम्।

प्रमादाद्वोजनं कृत्वा त्रिरात्रेण विशुद्धतिः॥ ४०॥

यदि महापापी, चाण्डाल और रजस्वला स्त्री को छूकर प्रमादवश (अपवित्र हो) भोजन कर लेता है, तो उसे तीन रात उपवास रहकर शुद्ध होना पड़ेगा।

स्नानार्हो यदि भुज्ञीत ह्यरोरात्रेण शुद्धतिः।

बुद्धिपूर्वं तु कृच्छ्रेण भगवानाह पद्मजः॥ ४१॥

जो स्नान करने योग्य हो, फिर भी यदि स्नान किये बिना ही अज्ञानतावश भोजन कर लेता है, तो एक दिन-रात उपवास करके और जानवृक्षकर भोजन करने से कृच्छ्रव्रत करके शुद्ध हो सकता है, ऐसा भगवान् ब्रह्मा ने कहा है।

भुक्त्वा पर्युषितदीनि गवादिग्रिद्वैषिताः।

भुक्त्वा प्रवासकुर्वत कृच्छ्रपादमवापि वा॥ ४२॥

जो कोई बासी हुआ भोजन या गाय आदि पशुओं द्वारा दूषित किया हुआ अब खा सेता है, तो एक उपवास करे या एक चौथाई कृच्छ्र व्रत करना चाहिए।

संवत्सरान्ते कृच्छ्रं तु चरेद्विप्रः पुनः पुनः।
अज्ञानभूक्षुदृढर्थं ज्ञातस्य तु विशेषतः॥ ४३॥

पूरे वर्षभर यदि अज्ञानवश, अधक्षय वस्तु स्वाई हो और विषेषतः जानवृक्षकर रुआई हो तो यार-बार कृच्छ्र व्रत करना चाहिए अथवा वर्ष के अन्त में कृच्छ्र व्रत कर लेना चाहिए।

द्वात्यानो याजने कृत्वा परेषामन्त्यर्कम् च।
अभिधारमहीनश्च त्रिभिः कृच्छ्रीर्क्षुदृष्टिः॥ ४४॥

जो ब्रात्यां (समाज में व्यवहार के अद्योग्य) तथा संस्कार रहित अधम लोगों के यहां यज्ञ कराये और दूसरों का अन्य कर्म, अधिचार (बसीकरण आदि) कर्म तथा अधमवर्जन से उत्तम कर्म कराता है, तो तीन कृच्छ्र व्रत करके शुद्ध हुआ जा सकता है।

द्वात्याणादित्वानां तु कृत्वा दाहादिकं द्विजः।
गोमूत्रयावकाहारः प्राजापत्येन शुद्धतिः॥ ४५॥
तैलाध्यन्तोऽथ बानो वा कुर्यामूत्रपुरीषके।
अहोरात्रेण शुद्धयेत शमश्रुकर्मणि मैषुने॥ ४६॥

जो कोई ब्रात्याणादि तीनों वर्णों के द्वारा मारे गये व्यक्ति का दाह-कर्म करता है, तो उसकी शुद्धि गोमूत्र विक्रित अब का आहार करते हुए प्राजापत्य व्रत करने से होती है। तेल की मासिश की हो, या डल्टी की हो, तो मल-मूत्र का त्याग करे। और कर्म कराने या मैथुन कर्म करने पर एक दिन-रात उपवास रहकर शुद्ध होना पड़ता है।

एकाहेन विवाहाग्निं परिहात्य द्विजोत्तमः।
त्रिरात्रेण विशुद्धयेत त्रिरात्रात्पद्धः परम्॥ ४७॥
दशाहं ह्रादशाहं वा परिहात्य प्रपादतः।
कृच्छ्रं चान्द्रायणं कुर्यात्तापस्योपशान्तये॥ ४८॥

यदि कोई अज्ञानवश एक दिन में ही विवाहाग्नि को त्याग दे, तो तीन रात तक उपवास रहकर शुद्ध होगा और तीन दिन के बाद छोड़ दे, तो छः दिन उपवास करने से शुद्ध होती है। परन्तु जो प्रमादवश दस या बारह दिन तक अग्नि को त्याग दे तो उस पाप नाश के लिए चान्द्रायण व्रत करना पड़ता है।

पतिताद्वयमादाय तदुत्सर्गेण शुद्धतिः।
चरेय विषिना कृच्छ्रमित्याह भगवाम्बनुः॥ ४९॥

पतित (धर्मप्रष्ट) व्यक्ति से दूत्य ग्रहण करने से, उसे त्यागने (दान करने) के बाद शुद्ध होती है, और विषिपूर्वक कृच्छ्र व्रत करना चाहिए, ऐसा भगवान् मनु कहते हैं।

अनाशकान्निवृत्तास्तु प्रद्वज्यावसितासत्या।
चरेयुस्त्रीणि कृच्छ्राणि त्रीणि चान्द्रायणानि च॥ ५०॥
पुन्त्य जातकर्मादिसंस्कारैः संस्कृता द्विजाः।
शुद्धयेयुस्तद्वात्ते सम्यक्त्वयेर्युर्वर्मदर्शिनः॥ ५१॥

जिस किसी ने अनशन व्रत स्वीकार कर छोड़ दिया हो, या संन्यास (लेकर बाद में) त्याग कर दिया हो, तो उस व्यक्ति को तीन कृच्छ्र और तीन चान्द्रायण व्रत करने चाहिए। तत्पश्चात् फिर से जातकर्मादि संस्कारों से संस्कृत होकर ही ब्रात्याण शुद्ध होंगे और उन्हें पुनः धर्मदर्शी होकर भली-भौति व्रतों का पालन करना होगा।

अनुपासितसम्यस्तु तदहर्यावके भवेत्।
अनश्वन् संयतमना रात्री चेद्वाप्रिमेव हि॥ ५२॥

सन्ध्योपासना न करने पर, (ब्रह्मचारी को) उस दिन, विना भोजन किये एकाग्रचित होकर जप करना चाहिए। यदि सायंकाल सन्ध्या न करे तो उस दिन रात को भोजन किये विना जप करना चाहिये।

अकृत्वा समिदायानं शुचिः स्नात्वा समाहितः।
गायत्र्यष्टुसहस्रस्य जप्यं कुर्याद्विशुद्धये॥ ५३॥

यदि कोई स्नान करके पवित्र होकर एकाग्रचित से अग्नि में समिधादान नहीं करता तो, उसे आठ हजार बार गायत्री-मंत्र जपना चाहिये।

उपवासी चरेत्सम्यां गृहस्थो हि प्रपादतः।
स्नात्वा विशुद्धयो ऽस्तु परिप्राप्त्वा संयतः॥ ५४॥

प्रमादवश यदि (ब्रह्मचारी) संध्यापूजन करना भूल जाय, तो स्नान के बाद, उपवास रहकर संध्यापूजन कर लेना चाहिए। यदि अत्यधिक परिश्रान्त होने से संध्या करने में असमर्थ हो, तो मात्र उपवास करके शुद्ध हो सकता है।

वेदोदितानि नित्यानि कर्मणि च विलोप्य तु।
स्नातको द्रवत्सोपेण तु कृत्वा चोपवसेइनप्॥ ५५॥

यदि स्नातक (जिसने ब्रह्मचर्य समाप्ति का स्नान कर लिया हो) ब्रात्याण, वेदोक्त नित्य कर्मों का लोप करता है और व्रत करना भी भूल जाय, तो वह एक दिन का उपवास करके शुद्ध होता है।

संवत्सरं चरेत्कृच्छ्रमित्यादी द्विजोत्तमः।

चान्द्रायण चरेद्वात्यो गोप्रदानेन शुद्धयति॥५६॥

अग्नि का नाश करने वाले ब्राह्मण को एक साल तक कृच्छ्रवत रखना चाहिये। यदि कोई ब्रात्य हुआ है, तो चान्द्रायण व्रत करने तथा गोदान करने से शुद्धि होती है।

नास्तिक्यं यदि कुर्वते प्राजापत्यं चरेद्विजः।

देवदोहं गुरुदोहं तस्मक्च्छ्रेण शुद्धयति॥५७॥

यदि कोई द्विज ब्राह्मण नास्तिकता करे तो प्राजापत्य व्रत करना चाहिये। देवदोह और गुरुदोह करने से तस्मक्च्छ्र व्रत करके शुद्ध होता है।

उष्टुप्यानं समारूहा खरयानं च कामतः।

त्रिरात्रेण विशुद्धयेत् नग्नो वा प्रविशेष्मलम्॥५८॥

ऊंट गाड़ी या गधा-गाड़ी पर स्वेच्छापूर्वक आरोहण करता है अथवा नग्न होकर जल में प्रवेश करने से तीन रात तक उपवास करने पर शुद्धि होती है।

पश्चात्रकालता यासं संहिताजप एव च।

होमाष्टु शाकला नित्यं अपाइक्तानां विशेषनम्॥५९॥

नीलं रक्तं वसित्या च द्वाहणो वस्त्रभेदं हि।

अहोरात्रोपितः स्नातः पंचगव्येन शुद्धयति॥६०॥

अयाज्य व्यक्ति द्वारा यागादि करने पर तीसरे दिन सायंकाल उपवास करे और एक महीने तक वेदसंहिता का जप करते हुए और नित्य शाकल होम करते रहना चाहिए। यही प्रायश्चित्त है। वह ब्राह्मण नीले या लाल रंग का वस्त्र पहनें, एक दिन-रात उपवास रह कर, पंचगव्य द्वारा स्नान करने से शुद्धि हो जाती है।

वेदघर्मपुराणानां चण्डालस्य तु भाषणो।

चान्द्रायणेन शुद्धिः स्यात्र हन्या तस्य निष्कृतिः॥६१॥

चाण्डाल को वेद, धर्मशास्त्र और पुराणों की व्याख्या सुनाने से चान्द्रायण व्रत के द्वारा शुद्धि होती है, इसके अतिरिक्त अन्य कोई प्रायश्चित्त नहीं है।

उद्घयनादि निहतं संस्मृश्य द्वाहणां कवचित्।

चान्द्रायणेन शुद्धिः स्यात्राजापत्येन वा पुनः॥६२॥

फाँसी लगाकर आत्महत्या किये हुए ब्राह्मण के शव को स्पर्श करने से, चान्द्रायण या प्राजापत्य व्रत करने पर शुद्धि होती है।

उच्चिष्ठो यद्यनाथांत्क्षण्डालादीन् स्पृशेद् द्विजः।

प्रपादादृष्टे जपेत्सनात्वा गायत्र्याष्टुसाहस्रकम्॥६३॥

यदि ब्राह्मण प्रमादवश आचमन करने से पूर्व जूठे मुँह किसी चाण्डाल को स्पर्श करता है, तो उसे स्नान करके आठ हजार बार गायत्री का जप करना चाहिये।

दुपदानां शतं वापि द्रव्याचारी समाहितः।

त्रिरात्रोपेषितः सम्यक् पञ्चगव्येन शुद्धयति॥६४॥

उस द्रव्याचारी को एकाग्रचित्त होकर, सौ बार दुपदा मन्त्र का जप करना चाहिये और तीन रात उपवास रहकर पंचगव्य से स्नान करके उसकी शुद्धि होगी।

चाण्डालपतितादीन्मु कामाद्यः संस्मृशेद्विजः।

उच्चिष्ठसत्र कुर्वते प्राजापत्यं विशुद्धये॥६५॥

चाण्डालसूतकिं शवांस्तवा नारीं रजस्वलाम्।

स्मृष्टा स्नायाद्विशुद्धर्यं तत्स्मृष्टुपतितांस्तवा॥६६॥

जो ब्राह्मण जानवृक्षकर जूठे मुँह चाण्डाल और पतितों का स्पर्श करता है, उसे शुद्धि के लिये प्राजापत्य व्रत करना चाहिए। वैसे ही चाण्डाल, सूतकी, शव और रजस्वला स्त्री का स्पर्श करने से, शुद्धि के लिये स्नान करना चाहिये। पतितों का स्पर्श करने पर भी वैसा ही करना चाहिए।

चाण्डालसूतकिशवैः संस्मृष्टं संस्मृशेद्वादि।

ततः स्नात्वाद्य आद्यम् जपं कुर्यात्समाहितः॥६७॥

तत्स्मृष्टुपर्शिनं स्मृष्टा बुद्धिपूर्वं हिजोत्तमः।

स्नात्वाद्याचार्येद्विशुद्धर्यं प्राह देवः पितामहः॥६८॥

चाण्डाल, सूतकी और शव को ढूने वाले व्यक्ति का यदि कोई स्पर्श कर लेता है, तो उसे (शुद्धि हेतु) स्नान करके, आचमन करने के बाद एकाग्रचित्त से जप करना चाहिए। चाण्डालादि व्यक्तियों को ढूने वाले को यदि कोई ब्राह्मण जानवृक्षकर ढूता है, तो उसे स्नान करके आचमन करना चाहिये, यह पितामह ब्रह्मा ने कहा है।

भुज्ञानस्य तु विप्रस्य कदाचित्संस्मृशेद्वादि।

कृत्वा शौचं ततः स्नायादुपोष्य जुहुयाद्वत्तम्॥६९॥

भोजन करते हुए ब्राह्मण का यदि किसी दूषित (विष्ट) का स्पर्श या स्नाव हो जाय, तो शौच करके स्नान कर लेना चाहिए और उपवास रखकर अग्नि में आहुति देनी चाहिये।

चाण्डालं तु शवं स्मृष्टा कच्छं कुर्याद्विशुद्धति।

स्मृष्टाऽभ्यक्तस्त्वसंस्मृश्य अहोरात्रेण शुद्धयति॥७०॥

ब्राह्मण यदि चाण्डाल के शव को स्पर्श कर ले, तो कृच्छ्र व्रत के द्वारा उसकी शुद्धि होती है और (बस्त्र से) लिपटी

हुई अवस्था में, स्पर्श किये बिना, केवल देख लेने से, एक दिन और रात उपवास रहकर शुद्ध होना चाहिये।

सुरा सृष्टा द्विजः कुर्यात्राणाचामकवयं शुचिः।
पत्नाण्डुं लशुनञ्जीव घृतं प्राश्य ततः शुचिः॥७१॥

यदि कोई ब्राह्मण सुरा का स्पर्श कर ले, तो वह तीन बार प्राणायाम करके और प्याज तथा लहसुन का स्पर्श करने से, घो पीकर शुद्ध होता है।

ब्राह्मणस्तु शुरा दृष्टस्यहं साथं पथः पिवेत्।
नापेष्वर्वन्तु दृष्टस्य तटेव द्विगुणं भवेत्॥७२॥
स्वादेततिगुणं बाह्मोर्मुखिं च स्वादातुर्गुणम्।
स्नात्वा जपेद्वा सावित्रीं श्वभिर्दृष्टे द्विजोत्तमः॥७३॥

ब्राह्मण को कुत्ता काट ले, तो तीन दिन तक साथेकाल दूध पीना चाहिये। नाभि के कल्पर काटने पर उससे दुगना-छः दिन, बाहु पर काटने से नौ दिन और सिर पर काटने से बारह दिन तक साथेकाल दूध पीकर रहना चाहिये अथवा कुत्ते का काटा हुआ ब्राह्मण, स्नान करके गायत्री का जप करना चाहिए।

अनिवर्त्य महायज्ञान्यो भुक्ते तु द्विजोत्तमः।
अनातुरः सति धने कृच्छार्द्देन स शुद्धतिः॥७४॥
आहिताग्निरुपस्थानं न कुर्याद्यस्तु पर्वणिः।
इती न गच्छेद्याद्या वा सोऽपि कृच्छार्द्दमाचरेत्॥७५॥

जो रोगरहित और धन रहने पर भी ब्राह्मण पंचवज्र किये बिना भोजन करता है, तो वह आर्द्ध-कृच्छ व्रत करके शुद्ध हो सकता है। और यदि कोई अग्निहोत्री ब्राह्मण पर्व के दिन सूर्योपस्थापन नहीं करता और ऋतुकाल में भी गर्भधारण निमित्त पत्नी के साथ मैथुन कर्म नहीं करते, उनकी शुद्धि अर्धप्राजापत्य व्रत करने से होती है।

विनादिरप्य नायार्तः शरीरं सञ्जिवेश्य च।
सर्वैलो जलमाप्नुत्य गामालभ्य विशुद्धतिः॥७६॥
बुद्धिपूर्वनवभ्युदिते जपेदन्तर्जले द्विजः।
गायत्र्यष्टसहस्रं तु त्र्यहं घोपवसेदिद्विजः॥७७॥

अस्वस्थ न होने पर भी कोई मल-मूत्र त्वागने के बाद पानी से शौच किया न करे या पानी के अन्दर मल-मूत्र त्वागे, तो उस व्यक्ति को, उन्हीं वस्त्रों को पहनकर स्नान करके, गाय का स्पर्श करके शुद्ध होना पड़ेगा। ऐसा कर्म जानबूझकर किया जाये तो, ब्राह्मण को सूर्योदय काल में पानी के अन्दर ढूबकी लगाकर आठ हजार बार गायत्री जप

करना चाहिए और ब्रती होकर तीन दिन उपवास करना होगा।

अनुगम्येच्छया शूद्रं प्रतीपूतं द्विजोत्तमः।
गायत्र्यष्टसहस्रं जपं कुर्याद्रदीपु च॥७८॥
यदि कोई उत्तम ब्राह्मण मृत्यु के प्राप्त शुद्ध के पीछे-पीछे अपनी इच्छा से जाता है, तो उसे नदी-किनारे जाकर आठ हजार गायत्री जप करना चाहिए।

कृत्वा तु शापये विप्रो विप्रस्यावद्यिसंयुक्तम्।
स चैव पावकात्रेन कुर्याद्याद्यायणं द्रवतम्॥७९॥
यदि कोई ब्राह्मण दूसरे ब्राह्मण के समक्ष सावधि समयबद्ध प्रतिज्ञा करता है, और उसे पूरा नहीं करता तो उसे 'पावक' अब के द्वारा चान्द्रायण व्रत करना चाहिये।

पृक्तौ विषमदानन्तु कृत्वा कृच्छेण शुद्धतिः।
छायां श्वपाकस्यारुहं स्नात्वा सम्प्राशयेद्युतम्॥८०॥
जो मनुष्य दान लेने वालों को धनि में (किसी को कम या ज्यादा देहर) विषमता (भेद) करता है, उसकी शुद्धि कृच्छ व्रत द्वारा होती है। यदि चाषडाल की परछाई को उस पर चढ़कर जाता है, तो स्नान करके घो पीना चाहिये।

इक्षेदादित्यमशुचिर्द्विष्टार्णिं चन्द्रप्रेव वा।
मानुषं चास्ति संसृश्य स्नानं कृत्वा विशुद्धतिः॥८१॥
कृत्वा तु यित्याव्ययनं चरेऽक्षेत्रं वत्सरम्।
कृत्वो ब्राह्मणग्रहे पंचसंवत्सरद्वाती॥८२॥

अपवित्र होने पर सूर्य दर्शन करना चाहिये। अथवा अग्नि प्रज्वलित करे या चन्द्रदर्शन करना चाहिए। मनुष्य की अस्थि स्पर्श करने पर स्नान करके शुद्ध होता है। यित्या अध्ययन करने पर (प्रायहितरूप में) एक साल तक भिक्षा माँगनी चाहिये और कृत्वन (उपकार का नाशक) व्यक्ति को ब्राह्मण के घर रहकर, पाँच साल तक व्रत करना चाहिए।

हुंकारं ब्राह्मणस्योक्त्वा त्वंकारं च गरीयसः।
स्नात्वा नाशनत्रहः शेषं प्रणिपत्य प्रसादयेत्॥८३॥

यदि कोई ब्राह्मण को हुंकार करके अपमानित करे या सम्मानित व्यक्ति को 'तृता' करे तो उसे स्नान करके शेष दिन में भोजन नहीं करना चाहिये और जिसका अपमान किया हो, उनके पैर पकड़कर उन्हें प्रसन्न करना चाहिये।

ताडयित्वा तुणेनापि कण्ठं बद्धावद वाससा।
विवादे चापि निर्जित्य प्रणिपत्य प्रसादयेत्॥८४॥

ब्राह्मण को तृण से मारने पर अथवा उसके गले को बस्त्र से चाँधने पर या चाकुयुद में परासत करने से, उन्हें प्रणाम करके ग्रस्त्र करना चाहिये।

अवगृथं चरत्कृच्छ्रपतिकृच्छ्रं निपातने।
कृच्छ्रातिकृच्छ्रं कुर्वीत विप्रस्योत्पादं शोणितम्॥ ८५॥

यदि ब्राह्मण को मारने के लिये ढंडा ढवया जाय तो कृच्छ्रव्रत करें। यदि ब्राह्मण को नीचे गिरा दिया जाय तो अतिकृच्छ्र व्रत करें और जो ब्राह्मण को कुछ मारकर उसका खून बहाता है, तो उसे कृच्छ्र और अतिकृच्छ्र दोनों व्रत करने चाहिये।

गुरोराक्षोशभूतं कुर्यात्कृत्वा विश्वोधनम्।
एकरात्रं निराहारः तत्पापस्यापनुच्यते॥ ८६॥

गुरु के आक्रोश करने पर जो उन्हें खराब शब्द कहता है, तो ऐसे पुरुष को पाप की निवृत्ति हेतु एक दिन का उपवास रखना चाहिये।

देवर्षीणामधिषुखं द्वीवनाकोशने कृते।
उल्मुकेन दहेजिह्वां दातव्यं च हिरण्यकम्॥ ८७॥

जो व्यक्ति देवों के ऋषिरूप ब्राह्मणों के सामने धूकता है, और उनके प्रति गुस्सा दिखाता है, उसे जलती लकड़ी से जीभ जला देनी चाहिये और सुवर्ण का दान करना चाहिये।

देवोदानेषु यः कुर्यात्मूत्रोद्यारं सकृदिद्वजः।
छिन्द्याजिञ्चनं विशुद्ध्यर्थं चरेदान्द्रायणं व्रतम्॥ ८८॥

देवोदान में जो कोई द्विज एक बार भी मूत्र त्वाग करता है, वह पाप की शुद्धि के लिये अपना लिङ्ग काटकर चान्द्रायण व्रत करना चाहिए।

देवतायतने मूत्रं कृत्वा मोहाद्विजोत्पम्।
शिशनस्योत्कर्तनं कृत्वा चान्द्रायणमथावरेत्॥ ८९॥

देवतानामधीषाणां च देवानां चैव कुत्सनम्।
कृत्वा सम्यक् प्रकृत्वीतं प्राजापत्यं द्विजोत्पम्॥ ९०॥

जो उत्तम द्विजवाणि का मनुष्य देवमन्दिर के अन्दर मूत्र त्वाग करता है, वह शिशन काटकर चान्द्रायणव्रत करके पाप का प्रायश्चित्त करें। देवताओं, ऋषियों और देवता-समान व्यक्तियों की निन्दा करने से, ब्राह्मण की शुद्धि, अच्छे प्रकार से प्राजापत्य व्रत करने से होती है।

तैस्तु सम्पाद्यणं कृत्वा स्नात्वा देवं समर्पयेत्।
दृष्टा वीक्षेत भास्यते स्मृत्वा विशेष्वरं स्परेत्॥ ९१॥

यः सर्वभूताधिपतिं विशेषानं विनिन्दति।

न तत्त्वं निष्कृतिः शक्या कर्तुं वर्षशतैरपि॥ ९२॥

चान्द्रायणं चरेत्पूर्वं कृच्छ्रं चैवातिकृच्छ्रकम्।

प्रपत्रः शरणं देवं तस्मात्पापाद्विमुच्यते॥ ९३॥

और ऐसे आदमी के साथ वार्तालाप करने से स्नान करके अपने इट देव का पूजन करना चाहिये। यदि उस निन्दक को देखता है, तो सूर्य दर्शन करना चाहिये तथा याद करने से विशेषर शंकर का ध्यान करना चाहिये। परन्तु जो जानकूदकर समस्त प्राणियों के अधिपति विशेषर की निन्दा करता है, उसको तो सेंकड़ों बर्षों में प्रायश्चित्त करके मुक्ति नहीं होती। वैसे उसे पहले चान्द्रायण व्रत, पक्षात् कृच्छ्र और अतिकृच्छ्र व्रत करना चाहिए तथा उन महादेव को शरण में जाने से उस पाप से मुक्ति संभव है।

सर्वस्वदानं विश्वित्सर्वपापविशोधनम्।

चान्द्रायणं च विधिना कृच्छ्रं चैवातिकृच्छ्रकम्॥ ९४॥

इसके अतिरिक्त नियमानुसार अपना सर्वस्व दान करना, नियमानुसार चान्द्रायण, कृच्छ्र और अतिकृच्छ्र व्रतों को करना भी समस्त पापों की शुद्धि का कारण बताया गया है।

पुण्यक्षेत्राभिगमनं सर्वपापविशोधनम्।

अमावस्या तिथि प्राय यः समाराप्येद्वतम्॥ ९५॥

ब्राह्मणान् पूजयित्वा तु सर्वपापैः प्रमुच्यते॥ ९६॥

कृष्णाष्टम्यां पहादेवं तथा कृष्णचतुर्दशीम्।

सम्पूर्णं ब्राह्मणमुखे सर्वपापैः प्रमुच्यते॥ ९७॥

इसी प्रकार सब तीर्थों में जाने भी सारे पापों का शुद्धि होती है। अमावस्या के दिन, ब्राह्मणों को पूजा करके जो भगवान् महादेव की आराधना करता है, वह भी समस्त पापों से मुक्त हो जाता है। कृष्णाष्टमी या कृष्णचतुर्दशी के दिन, ब्राह्मण भोजन करवाकर महादेव की पूजा करने से, सभी पापों से मुक्ति मिलती है।

त्रयोदश्यां तथा रात्रौ सोपहारं त्रिलोचनम्।

दृष्टेषां प्रश्नमे यामे पूच्यते सर्वपातकैः॥ ९८॥

उसी प्रकार त्रयोदशी की रात्रि के प्रथम प्रहर में, उपहार के साथ त्रिलोचन (भगवान् शंकर) की पूजा करने से, सब पापों से मुक्ति मिलती है।

उणोषितश्चतुर्दश्यां कृष्णपक्षे समाहितः।

यमाय दर्शनाजाय पृत्यवे चान्तकाय च॥ ९९॥

वैवस्वताय कालाय सर्वशाणहराय च।

प्रत्येकं तिलसंयुक्तान्द्रायणमोदकाङ्गलीन्॥ १००॥

कृष्णपथ की चतुर्दशी लो, उपवास रखकर एकाग्रचित से यम, धर्मगाज, मृत्यु, अनंत, वैवस्वत, काल और सर्वप्राणहर— इन सातों में प्रत्यक को उद्देश्य करके तिल मिश्रति जल चढ़ाना चाहिये।

स्वात्वा दद्यात् पूर्वाङ्गे मुच्यते सर्वपातकैः।
ब्रह्मचर्यमयःऽस्या उपवासो द्विजार्द्दनम्॥ १०६॥
द्रोतेर्वेतु कुर्वति शान्तः संयतमानसः।
अमावास्यायो द्राह्मणं समुद्दिश्य पितामहम्॥ १०७॥
द्राह्मणांस्तीन्मामध्यर्थं मुच्यते सर्वपातकैः।

पूर्वाङ्ग में स्नान करके, इस प्रकार जल समर्पण करने से मनुष्य सब पापों से मुक्त हो जाता है। ब्रह्मचर्य का पालन, भूमि पर शयन, उपवास और द्राह्मण की पूजा इन सब द्रतों में शान्त और एकाग्रचित होकर करनी चाहिये। अमावास्या के दिन पितामह द्राह्मा को उद्देश्य करके जो तीन द्राह्मणों की विधिपूर्वक पूजा करता है, वह समस्त पापों से मुक्त हो जाता है।

पङ्क्षामुपोषितो देवं शुक्लपक्षे समाहितः॥ १०३॥
सप्तम्यामर्द्येदानुं मुच्यते सर्वपातकैः।
भरण्यां च चतुर्व्यां च शैक्षुरदिने यमम्॥ १०४॥
पूजयेत्समजन्मोर्ध्येमुच्यते पातकैनरः।

शुक्लपक्ष में पश्ची के दिन उपवास करके, सप्तमी में एकाग्रचित से मूर्द्येव को जो पूजा करता है, वह सभी पापों से मुक्त होता है। भरणी नक्षत्र में शनिवार के दिन चतुर्व्यां होने पर यम की पूजा करने वाला, सात जन्मों के पापों से मुक्त हो जाता है।

एकादश्यां निराहारः समर्थर्थं जनार्दनम्॥ १०५॥
द्वादश्यां शुक्लपक्षस्य महापापैः प्रमुच्यते।
तपो जपस्तीर्थसेवा देवद्राह्मणपूजनम्॥ १०६॥

ग्रहणादिषु कालेषु महापातकशोधनम्।
जो शुक्लपक्ष की एकादशी में उपवास रखकर द्वादशी के दिन भगवान् विष्णु की पूजा करता है, वह महापापों से मुक्त हो जाता है। ग्रहण काल में तप, जप, तीर्थ सेवा, देवताओं और द्राह्मणों का पूजन, आदि कर्म महापाप को धोने वाले होते हैं।

यः सर्वपापयुक्तोऽपि पुण्यतीर्थेषु पानवः॥ १०७॥
नियमेन त्यजेत्त्राणाम्नुच्यते सर्वपातकैः।

जो पुरुष सभी प्रकार के पापों से युक्त होते हुए भी पुण्य तीर्थों में नियमतः प्राण त्याग करता है, तो वह सभी पापों से मुक्ति पा जाता है।

ब्रह्मणं वा कृताणं वा महापातकदूषितम्॥ १०८॥

भर्तारमुद्दरेत्रारी प्रविष्टा सह पावकम्।

एतदेव परं स्त्रीणां प्रायश्चित्तं विदुवृद्या॥ १०९॥

यदि पति ब्रह्माशाती, कृताण और महापापी हो तो भी उसके साथ (भरणोपरात) अग्नि में ग्रविष्ट होती है, तो वह अपने पति को तार देती है। यही स्त्रियों का परम प्रायश्चित्त है, ऐसा विद्वानों का कहना है।

पतिद्रवता तु या नारी भर्तुशुश्रूषणे रता।

न तस्या विद्वते पापमिहलोके परत्र च॥ ११०॥

जो नारी पतिद्रवता है और पति को ही सेवा में संलग्न रहने वाली होती है, उसे इस लोक में और परलोक में भी पाप नहीं लगता।

(सर्वपापविनिर्मुक्ता नास्ति कार्या विचारणा।

पतिद्रवत्यसमायुक्ता भर्तुशुश्रूषणोत्सुका।

न जातु पातकं तस्यामिहलोके परत्र च।)

पतिद्रवता भर्तुरता भद्राण्येव लभेत्सदा।

नास्या: परापर्वं कर्तुं शब्दनोतीह जनः क्वचित्॥ १११॥

(जो नारी पतिद्रवताधर्म से युक्त और पति सेवा में उत्सुक रहती है, वह सब पापों से मुक्त हो जाती है, इसमें विचार नहीं करना चाहिए। इस लोक और परलोक में कभी उसे पातक नहीं लूटा।) पतिद्रवता और धर्म में परायण रहने वाली स्त्री सभी प्रकार के कल्पाणों को ग्राह करती है तथा ऐसी स्त्री को इस संसार में कभी कोई परापर्व नहीं कर सकता।

यथा रामस्य सुपर्णा सीता त्रैलोक्यविश्रुता।

पल्लो दाशरथेदेवी विजिग्ये राक्षसेश्वरम्॥ ११२॥

जैसे तीनों लोकों में विश्वात, दशरथ-पुत्र राम की सीधाग्न्यशालिनी पश्ची देवी सीता ने (अपने सतीत्व के कारण) राक्षसेश्वर (रावण) को जीत लिया था।

रामस्य भार्या सुपर्णा रावणो राक्षसेश्वरः।

सीता विशालनयनो चक्रेष कालनोदितः॥ ११३॥

गृहीत्वा भावया वेषं चरनीं विजये वने।

समाहर्तुं पतिं चक्रे ताप्तसः किल कामिनीम्॥ ११४॥

एक बार राक्षसराज रावण ने, काल के द्वारा प्रेरित होकर, राम की सीधाग्न्यशालिनी, विशालाक्षी पश्ची सीता की कामना

की थी। उसने अपनी माया से तपस्नी वेष धारण करके, एकान्त बन में विचरण करने वाली नारी (सीता) को हरण करने का मन बनाया।

विज्ञाय सा च तद्वावं स्मृत्वा दाशरथि पतिष्ठ।
जगाम शरणं वह्निमावसर्थं सृचिस्मिता॥ १५॥

पवित्र हास्ययुक्ता सीता, रावण के मनोभाव को जानकर, अपने पति दशरथ पुत्र राम का स्मरण कर आवस्थ्य नामक गृहाणिनी की शरण में चली गई।

उपस्थे महायोगी सर्वलोकविद्यायकम्।
कृतांजलौ रामपत्नी माक्षात्पतिमिवाच्युतम्॥ १६॥

महायोगस्वरूप, सारे संसार के दाहक अग्नि को, साक्षात् अपने पति विष्णु का स्वरूप मानकर रामपत्नी सीता दोनों हाथ जोड़कर खड़ी हो गयी।

नपस्थ्यमि महायोगं कशानु गह्नरं परम्।
दाहकं सर्वभूतानामीशानं कालरूपिणम्॥ १७॥

महायोगी, अतिशय श्रेष्ठ गुहारूप सभी प्राणियों के दाहक, सर्वभूत और सभी के संहारक कालरूपी अग्नि को नपस्कार है।

प्रपटे पावकं देवं शाश्वतं विश्वरूपिणम्।
योगिनं कृतिवसनं भूतेशं परमपदम्॥ १८॥

शाश्वत, विश्वरूपी, योगी, मृगचर्मधारी सभी प्राणियों के ईश्र, परमपद स्वरूप, अग्निदेव की शरण में जाती है।

आत्मानं दीपतपुषं सर्वभूतहदि स्थितम्।
तं प्रपटे जगन्मूर्ति प्रथवं सर्वतेजसाम्।
पहायोगीश्वरं वह्निमादित्यं परमेष्ठिनम्॥ १९॥

आत्मस्वरूप, प्रकाशमान शरीर वाले, सभी प्राणियों के हृदय में स्थित, जगत्मूर्ति सभी तेजों के उत्पत्ति स्थान, महान् योगयोगों के ईश्र, आदित्यरूप, प्रजापति स्वरूप, अग्निदेव की शरण में जाती है।

प्रपटे शरणं स्फूर्तं पहायासं त्रिशूलिनम्।
कालामिन् योगिनामीशं भोगमेष्टफलप्रदम्॥ २०॥

भयंकर महाप्राप्त (अर्थात् सर्वसंहारक) त्रिशूलधारी सर्वयोगी शर, भोग और योक्षरूपी फल देने वाले कालाणि की शरण में जाती है।

प्रपटे त्वां विश्वस्थं भूर्भुवःस्वःस्वरूपिणम्।
हिरण्मये गृहे गुप्तं महान्तपमितौजसम्॥ २१॥

हे अग्नि! मैं आपकी शरण में जाती हूँ। आप विश्वाध, भूर्भुवःस्वः— इन तीन महाव्याहृतियों का स्वरूप धारण करने वाले, सुवर्णमय प्रकाशमान गृह में गुप्तरूप से विद्यमान, महान् और अमित तेजस्वी हैं।

वैश्वानं प्रपटोऽहं सर्वभूतेष्ववस्थितम्।
हृव्यक्त्यवहं देवं प्रपटे वह्निमाश्वरम्॥ २२॥

सभी प्राणियों में (जटरानिरूप से) विद्यमान, वैश्वानर के शरण में जाती हूँ। मैं हृव्य (देवों की आहुतियाँ) कव्य (पितरों की आहुतियाँ) को बहन करने वाले और ईश्वरस्वरूप वहिदेव की शरण में जाती हूँ।

प्रपटे तत्परं तत्त्वं वरेण्यं सवितुः शिवम्।
स्वर्णपर्मिन परं ज्योतिः रक्ष मा हृव्यवाहन॥ २३॥

मैं उस परम श्रेष्ठ तत्त्व अग्नि की शरण में जाती हूँ, जो सूर्य के लिए भी कल्पयाकारी, आकाश मण्डल में स्थित परम ज्योतिःस्वरूप है। हे हृव्यवाहन अग्निदेव! आप मेरी रक्षा करें।

इति वह्निमास्त्रकं जप्त्वा रामपत्नी यशस्विनी।
व्यायनी यनसा तस्या राममुन्मीलितेक्षणा॥ २४॥

इस प्रकार अग्निसम्बन्धी आठ श्लोकों वाले इस स्तोत्र का जप करके, रामपत्नी यशस्विनी सीता, आँखें बन्दकर मन ही मन राम का ध्यान करती हुई स्थित हो गयी।

अथावसत्याद्गवान्हृव्यवाहो महेश्वरः।
आविरासीस्तुदीपात्पा तेजसा निर्दहन्त्रिव॥ २५॥
सृष्टा मायायर्थी सीतां स रावणक्षेच्छया।
सीतामादाय रामेष्टा पावकोऽनरथीयता॥ २६॥

तत्पक्षात् उस आवस्थ्य घर की अग्नि से भगवान् हृव्यवाह महेश्वर प्रकाशित होकर प्रकट हुए। ऐसा लगता था मानो वे तेज से सब को जला रहे हों। भगवान् ने उस रावण को मारने को इच्छा से, एक मायापत्नी सीता को रचना करके, राम की (वास्तविक) प्रिया सीता को लेकर, अग्नि में ही अन्तर्धान हो गये।

तां दृष्टा तादृशीं सीतां रावणो राक्षसेश्वरः।
समादाय यथौ लङ्घीं सागरान्तरसंस्थिताम्॥ २७॥

उस मायावी सीता को देखकर राक्षसेश्वर रावण, उसका हरण करके सागर के मध्य स्थित लंकापुरी में गया।

कल्पा तु रावणक्षं रायो लक्ष्मणसंयुतः।
समादायाभ्यत्सीतां शङ्काकुलितपानसः॥ २८॥

तत्प्राणात् राम रावण का बध करके लक्ष्मण के साथ उस (मायावी) सीता को ले आये, परन्तु उनका मन शंका से च्याकुल था।

सा प्रत्ययाय भूतानां सीता मायापर्यु पुनः।
विवेश पावकं शिंगं ददाह ज्वलनोऽपि ताप्॥ १३१॥

(राम को ऐसा देखकर) मायावी सीता ने लोगों को विश्वास दिलाने के लिए पुनः अग्नि में प्रवेश किया था और अग्नि ने भी उस सीता को शीघ्र जला डाला था।

दृष्ट्वा मायापर्युं सीतां भगवानुष्णादीशितिः।
रामायादर्शयत्सीतां पावकोऽभूत्सुरप्रियः॥ १३२॥

इस प्रकार मायावी सीता को जलाकर भगवान् तेज अग्निदेव ने राम को वास्तविक सीता के दर्शन करवाए थे, इसलिए अग्निदेव देवों को अत्यन्त प्रिय हुए।

प्रगृह्ण भर्तुष्ठरणो कराप्यां सा मुपच्यमा।
बकार प्रणाति भूमौ रामाय जनकाम्पजा॥ १३३॥

तब सुमध्यमा जनकपुत्री सीता ने, दोनों हाथों से राम का चरण-स्पर्श किये और भूमि पर झुककर राम को प्रणाम किया।

दृष्ट्वा हष्टमना रामो विस्मयाकुललोचनः।
प्रणाय वह्नि शिरसा तोषयापास राघवः॥ १३४॥

इस प्रकार (सीता को) देखकर आश्चर्य चकित नेत्रों वाले वे राम हीर्षित मनवाले हुए। राघव ने सिर झुकाकर प्रणाम करके अग्निदेव को दृढ़ किया था।

उवाच वह्नि भगवान् किमेषा वरवर्णिनो।
दृष्ट्वा भगवता पूर्वं दृष्ट्वा मत्पार्ष्णमागता॥ १३५॥

उस समय वे अग्निदेव से बोले, हे भगवन्! आपने क्षेष्ठ वर्ण वाली सीता को पहले क्यों जला दिया था? और अब मैं आपने पार्श्वभाग में स्थित देख रहा हूँ (यह कैसे?)।

तपाह देवो लोकानां दाहको हव्यवाहनः।
यथाद्वृतं दाशरथिं भूतानामेव सक्षिद्यो॥ १३६॥

तब संपूर्ण लोकों के दाहकर्ता, हव्यवाहन अग्निदेव ने सभी लोगों के समक्ष दाशरथी राम को जैसा वृत्तान्त था, कह सुनाया।

इयं सा परमा मायी पार्वतीव प्रिया तव।
आराय लक्ष्या तपसा देव्याङ्गात्पत्वल्लभा॥ १३७॥

यह देवी सीता पार्वती के समान प्रिय और परम साधी है। शंकरप्रिया पार्वती की तपस्या के द्वारा आराधना करके, (राजा जनक ने) उसे प्राप्त किया था।

भर्तुः शुशूलणोपेता सुशीलेयं पतिद्रिता।
भवानीवेष्वरे गुप्ता माया रावणकामिता॥ १३८॥

या नीता राक्षसेशेन सीता भगवती हुता।
पद्मा पायापर्यु मृष्टा रावणस्य व्येच्छया॥ १३९॥

यह सीताजी पाति की सेवा में परावण, पतिद्रिता और सुशील हैं। परन्तु रावण ने सीता की कामना की, तब मैंने इन्हें पार्वती के पास रख दिया था। राक्षसराज रावण जिस भगवती सीता को ले गया था, वह तो मैंने रावण का बध करने की इच्छा से मायावी सीता की रचना की थी।

तवर्य भवता दृष्टो रावणो राक्षसेष्वरः।
पायोपमंहता चैव हतो लोकविनाशनः॥ १३८॥

जिसके लिए आपने राक्षसेष्वर रावण को देखा (और उसका बध किया), वह मायावी सीता को मैंने समेट लिया हैं और संसार का विनाशकारी रावण भी मारा गया है।

गृहाण चैतां विष्पलां जानकीं वचनान्मयम्।
पश्य नारायणं देवं स्वात्मनं प्रभवाव्यव्यम्॥ १३१॥

इसलिए आप मेरे कहने पर पवित्र जानकी को स्वीकार करें और आपने स्वरूप को सब के उत्पत्ति कारण अविनाशी देव नारायण स्वरूप ही जानें।

इत्युक्त्वा भगवांशुष्ठुणो विश्वार्चिर्क्षितोपुष्टः।
मानितो राघवेणामिर्षृतेष्वान्तर्योयता॥ १४०॥

यह कहकर संसार के ज्वालारूप, विष्वतोपुख्य भगवान् चण्ड (अग्नि) अन्तर्धान हुए और भगवान् राम भी मनुष्यों के द्वारा सम्मानित होकर अन्तर्धान हो गए।

एतत्पतिद्रितानां वै माहात्म्यं कवितं भया।
स्त्रीणां सर्वांधशमने प्रायश्चित्तपिंदं स्मृतम्॥ १४१॥

अशेषपापसंयुक्तः पुरुषोऽपि सुसंयुतः।
स्वदेहं पुण्यतीर्थेषु त्यक्त्वा मुच्येत किल्विष्यत्॥ १४२॥

इस प्रकार पतिद्रिताओं का माहात्म्य मैंने कहा है। यह त्रियों के समस्त पापों को दूर करने वाला प्रायश्चित्त यताथा गया है। यदि कोई पुण्य अनेक पापों से युक्त भी हो, तो भी सुसंयुत होकर इन पुण्यतीर्थों में अपना देह त्याग करता है, तो सारे पापों से मुक्त हो जाता है।

पृथिव्या सर्वतीर्थे प्रसाद्या पुण्येषु वा हितः।
मुच्यते पातकैः सर्वैः सञ्चितैरपि पुरुषः॥ १४३॥

पृथिवी पर स्थित सभी पुण्य तीर्थों में स्नान करके द्वाहाण या कोई मनुष्य अपने द्वारा संचित सभी प्रकार के पापों से मुक्त हो जाता है।

व्यास उवाच

इत्येष पानवो धर्मो युव्याकं कवितो मया।
महेशाराधनार्थाय ज्ञानयोगद्वा शाश्वतः॥ १४४॥

व्यास बोले— यही मानव (मनु द्वारा कथित) धर्म है, जो मैंने आपको बताया है और महेश्वर की आराधना के लिए नित्य ज्ञानयोग भी बताया है।

योगेन विधिना युक्तो ज्ञानयोगं समाधेत्।
स पश्यति महादेवं नान्यः कृत्यश्तैरपि॥ १४५॥

जो मनुष्य योग को इस विधि के अनुसार ज्ञानयोग का आचरण करता है, वही महादेव का दर्शन पाता है। अन्य व्यक्ति सौ कल्पों में भी नहीं देख पाता।

स्थापयेद्वा: परं धर्मं ज्ञानं तत्पात्रमेष्वरप्।
न तस्मादधिको लोके स योगी परमो मतः॥ १४६॥

जो मनुष्य उस परमेश्वर सम्बन्धी ज्ञानरूप परम धर्म को स्थापना करता है, उससे अधिक क्रेष्ट इस संसार में कोई नहीं है और वही व्यक्ति क्रेष्ट योगी भी माना गया है।

यः संस्थापयितुं शक्तो न कुर्यामोहितो जनः।
स योगयुक्तोऽपि मुनिर्नात्यवै भगवतित्यः॥ १४७॥

तस्मात्पत्तैव दात्तत्वं द्वाहाणेषु विशेषतः।
धर्मयुक्तेषु ज्ञानेषु श्रद्धया चान्वितेषु वै॥ १४८॥

जो मनुष्य मोहवश समर्थ होते हुए भी धर्म की स्थापना नहीं करता, वह योगयुक्त मुनि होने पर भी भगवान् को प्रिय नहीं होता है। इसलिए सदैव इस ज्ञान का दान करना चाहिए और विशेषरूप उन द्वाहाणों को जो धर्मिक, शाना और श्रद्धायुक्त हों।

यः पठेद्वतां नित्यं संवादं पम चैव हि।
सर्वपापविनिर्मुक्तो गच्छेत परमाङ्गुतिष्ठ॥ १४९॥

श्राद्धं वा दैविके कार्ये द्वाहाणानां च सक्रियै।
पठेत् नित्यं सुमनाः श्रोतृत्वं च द्विजातिभिः॥ १५०॥

जो व्यक्ति आपका और मेरा यह संवाद नित्यप्रति पाठ करता है, वह सभी पापों से मुक्त होकर क्रेष्ट गति को प्राप्त

करता है। श्राद्ध, दैविक कार्य या द्वाहाणों के पास बैठकर, प्रसन्न मन से, प्रतिदिन इसका पाठ करना चाहिए और द्विजातियों को यह नित्य सुनना चाहिए।

योऽर्थं विचार्यं युक्तात्मा श्रावयेद्वा हिजान् शुचीन्।
स दोषकंचुकं त्यक्त्वा याति देवं महेश्वरम्॥ १५१॥

जो युक्तात्मा इसके अर्थ को विचार करके, पवित्र द्वाहाणों को सुनाता है, वह दोषरूपी आवरण को त्यागकर महेश्वर के पास जाता है।

एतावदुक्तवा भगवान्व्यासः सत्यवतीसुतः।
समाधास्य मुनीन्सुतं जगाम च चक्रागतम्॥ १५२॥

इस प्रकार कहकर सत्यवती पुत्र भगवान् व्यास उन सभी मुनियों तथा पौराणिक सूत को भली-भीति आक्षस्त करके जैसे आये थे, वैसे चले गये।

इति श्रीकृष्णपुराणे उत्तरार्द्धे चतुर्भिंशोऽध्यायः॥ ३४॥

पञ्चत्रिंशोऽध्यायः

(तीर्थ-प्रकारण)

ऋषय ऊचुः

तीर्थानि यानि लोकेऽस्मिन्विशुलानि महान्त्यपि
तानि त्वं कथयास्याकं रोमहर्षण साप्त्रतम्॥ १॥

ऋषियों ने कहा—हे रोमहर्षण! इस लोक में जो तीर्थ महान् और अति प्रसिद्ध हैं, इस समय उन सबका वर्णन आप हमारे सामने करें।

शृणुच वक्तव्येऽहं तीर्थानि विविधानि च।
कथितानि पुराणेषु मुनिभिर्द्वाहवादिपिः॥ २॥

यत्र स्नानञ्चपो होमः श्राद्धदानादिकं कृतम्।
एकैकशो मुनिश्चेष्टाः पुनात्यासप्तमं कुलम्॥ ३॥

रोमहर्षण ने कहा—हे ऋषिवृन्द! आप सुनें। मैं आपके समक्ष में अब अनेक तीर्थों के विषय में कहूँगा जिनको द्वाहवादी मुनियों ने पुराणों में बताया है। हे मुनिश्चेष्टो! वे ऐसे महान् महिमामय तीर्थ हैं, जहाँ पर स्नान-जप-होम-श्राद्ध और दानादिक शास्त्रोक्त सत्कर्म एकवार करने पर मनुष्य अपने सात कुलों को पवित्र कर देता है।

एवयोजनविसीर्णं द्वाहणः परमेष्ठिनः।
प्रथागं प्रथितं तीर्थं यस्य माहात्म्यमीरितम्॥ ४॥

अन्यथा तीर्थप्रवरं कुरुणां देववदितप्।
ऋषीणामस्त्रमैर्जुर्षु सर्वपापविशोषयनम्॥५॥

तब स्नात्वा विशुद्धत्वा दम्भमात्सर्यवर्जितः।
ददाति यत्किञ्चिदपि पुनात्पुभयतः कुलप्॥६॥

परमेष्ठी ब्रह्माजी का प्रसिद्ध प्रयाग तीर्थ पौच योजन के विस्तार बाला है जिसका कि माहात्म्य कहा गया है। अन्य भी तीर्थ प्रवर हैं, जो कुरुओं के हैं और देवों द्वारा बन्दित हैं। ये ऋषियों के आश्रमों से सेवित तथा सभी प्रकार के पाणों के विशेषक हैं। उस तीर्थ में स्नान करके विशुद्ध आत्मा बाला तथा दम्भ और मलसरता जैसे दुर्गुणों से वर्जित पुरुष वहाँ पर जो कुछ भी यथाशक्ति दान किया करता है वह अपने माता-पिता सम्बन्धी दोनों कुलों को पवित्र कर देता है।

परं गुह्यं गवातीर्थं पितॄणांश्चातिदुर्लभम्।
कृत्वा पिण्डप्रदानन्तु न भूयो जायते नरः॥७॥

गया तीर्थ तो परम गोपनीय तीर्थ है जो पितॄगणों को अल्पन हो दुर्लभ होता है। वहाँ पर पितॄगण के लिये पिण्डों को प्रदान करने वाला पुरुष पुनः संसार में जन्म प्रहण नहीं करता है।

मङ्गलग्याभिगमनं कृत्वा पिण्डं ददाति यः।
तारिताः पितरस्ते यास्यनि परपाङ्गतिप्॥८॥

तत्र लोकहितर्थाय रुद्रेण परमात्मना।
शिलातले पदं व्यस्ते तत्र पितॄन्नसादयेन्॥९॥

जो एक बार गया में जाकर पिण्डदान करता है, वह अपने समस्त पितरों को तार देता है। वे सब परमगति को प्राप्त हो जायेंगे। वहाँ पर लोकों के हित को सम्पादन करने के लिये परमात्मा रुद्रदेव ने शिला तल पर पौर्व रखा था। वहाँ पर पितरों को प्रसन्न करना चाहिए (तर्पण देना चाहिए)।

गवाभिगमनं करुं यः शक्तो नाश्विगच्छति।
शोचन्ति पितरस्ते वै कृत्वा तस्य परिश्रमः॥१०॥

गायन्ति पितरो गायाः कीर्तयन्ति महर्षयः।
गयां यास्यनि यः कञ्चित्सोऽस्मान्मनारयिष्यति॥११॥

जो गया जाने में समर्थ होता है, फिर भी नहीं जाता उसके पितॄगण उसके विषय में चिना किया करते हैं। उसका परिश्रम व्यर्थ हो जाता है। पितर लोग यही गाथा गाते हैं और महर्षिगण कीर्तन किया करते हैं कि जो कोई भी हमारे नंश में गया तीर्थ जायेगा वही हमको तार देगा।

यदि स्थानपातकोपेतः स्वर्थपरिवर्जितः।
गयां यास्यनि यः कञ्चित् सोऽस्मान्मनारयिष्यति॥१२॥

एष्टव्या बहवः पुत्राः शीलवनो गुणान्विताः।
तेषां तु समवेतानां यष्टेकोऽपि गया द्वजेत्॥१३॥

तस्मात्सर्वप्रयत्नेन द्वाहणस्तु विशेषतः।
प्रदद्याद्विषयित्यिष्टान् गयां गत्वा समाहितः॥१४॥

यदि कोई पातकी हुआ और अपने धर्म से परिवर्जित हुआ तो गया जायेगा और हम सबका उद्धार कर देगा। अतएव बहुत से शीलवनान् और गुणवान् पुत्रों की ही इच्छा करनी चाहिए। हो सकता है उनमें से कोई एक गया तीर्थ में गमन करे। इसीलिये सभी प्रकार के प्रयत्न से विशेषरूप से द्वाहण को तो गया में जाकर विधिपूर्वक समाहित होकर पिण्डों का दान अवश्य ही करना चाहिए।

यन्यास्तु खलु ते पर्वा गङ्गायां पिण्डदायिनः।
कुलान्युभयतः सप्त समुद्रस्यान्युः परप्॥१५॥

अन्यथा तीर्थप्रवरं मिद्यावासमुदाहतप्।
प्रभासमिति विष्णुवात् यज्ञास्ते भगवान्यवः॥१६॥

वे लोग धन्य हैं, जो अर्थात् महान् भाग्यशाली हैं जो गया में पिण्डदान करने वाले होते हैं। वे कर्तमान और आगे होने वाले सात-सात कुलों को दोनों ही ओर से तार कर स्वयं भी परम पद की प्राप्ति किया करते हैं। अन्य भी श्रेष्ठ तीर्थ हैं जहाँ सिद्ध पुरुषों को ही वास बताया गया है। वह प्रभास—इस शुभ नाम से संसार में विष्ण्वात है जहाँ पर भगवान् भव विराजमान रहा करते हैं।

तत्र स्नानं ततः श्राद्धं द्वाहणानां यूजनम्।
कृत्वा लोकपवानोति द्वाहणोऽक्षव्यमुत्तमम्॥१७॥

वहाँ पर स्नानकर और इसके अनन्तर श्राद्ध तथा द्वाहणों का अध्यर्चन करके मनुष्य ब्रह्म के अक्षय और उत्तम लोक प्राप्त करता है

तीर्थं त्रैयम्बकं नाम सर्वदेवनपमकृतप्।
पूजयित्वा तत्र रुदं ज्योतिष्ठोपफलं लभेत्॥१८॥

एक परम श्रेष्ठ त्रैयम्बक नामक तीर्थ है जिसे सभी देव गण नमस्कार करते हैं। वहाँ विराजमान रुद्रदेव का पूजन करके ज्योतिष्ठोम यज्ञ का फल मनुष्य को मिल जाता है।

सुवर्णाक्षं महादेवं समप्त्यर्थं करपूर्विनम्।
द्वाहणान् पूजयित्वा च गाणपत्यं लभेत् सः॥१९॥

वहाँ पर सुवर्णाक्ष कपदों महादेव की सम्बन्धक अर्चना करके और वहाँ पर स्थित द्वाहणों का पूजन करके मनुष्य

गाणपत्य लोक को प्राप्त कर लेता है।

सोमेश्वरं तीर्थवरं स्तुत्य परमेष्ठिनः।

सर्वव्याधिहरं पुण्यं रुद्रमालोक्य कारणम्॥ २०॥

एक परमेश्वरी रुद्रदेव का महान् सोमेश्वर तीर्थ है। यह तीर्थ समस्त व्याधियों को हरने वाला, परम पुण्यमय और रुद्रदेव के साक्षात् दर्शन करने वाला है।

तीर्थानां परमं तीर्थं विजयं नाम शोभनम्।

तत्र लिङ्गं यहेशस्य विजयं नाम विश्वतम्॥ २१॥

समस्त तीर्थों में परम श्रेष्ठतम् तीर्थ विजय नाम वाला अतीव शोभन तीर्थ है। वहाँ पर भगवान् महेश्वर का 'विजय' नामक विष्णुता लिङ्ग स्थापित है।

पण्मासनियताहारो द्राह्यचारी समाहितः।

उषित्वा तत्र विग्रेन्द्रा यास्यनि परमप्यदम्॥ २२॥

छः मास तक नियत आहार लेने वाला द्राह्यचारी अत्यन्त समाहित होकर वहाँ निवास करे तो है विग्रेन्द्रों। वह निष्ठितरूप से परमपद को पा लेता है।

अन्यथा तीर्थप्रवरं पूर्वदेशेषु शोभनम्।

एकान्तं देवदेवस्य गाणपत्यफलप्रदम्॥ २३॥

दूसरा परम श्रेष्ठ तीर्थ पूर्व देश में सुशोभित है, जो देवों के भी देव शिव के गाणपत्य लोक का एकान्त पद प्रदान करने वाला होता है।

दत्त्वात्र शिवधत्तानां किञ्चिच्छश्चन्महो शुभाम्।

सार्वभौमो भवेद्राजा मुमुक्षुमोक्षमाप्नुयात्॥ २४॥

यहाँ पर जो शिवधत्त ब्राह्मणों को थोड़ी-सी भूमि का दा। देता है, वह निष्ठित ही आगे जन्म में सार्वभौम चक्रवर्ती राजा हुआ करता है और मुमुक्षु को मोक्ष लाभ होता है।

महानीजलं पुण्यं सर्वपापविनाशनम्।

ग्रहणे तदुपस्थृत्य मुन्यते सर्वपापकैः॥ २५॥

महानदी का जल परम पुण्यमय एवं सभी तरह के पापों का विनाश करने वाला है। ग्रहण के समय उस जल में उपस्थर्ण करके सभी पापों से मनुष्य सदा के लिये मुक्त हो जाता है।

अन्य च विरजा नाम नदी त्रैलोक्यविश्वता।

तस्यां स्नात्वा नरो विश्रो द्राह्यलोके महीयते॥ २६॥

इसके अतिरिक्त एक अन्य परम पुण्यमय कुञ्जाश्रम है

त्रैलोक्य में परम प्रसिद्ध है। ब्राह्मण मनुष्य उसमें स्नान करके द्राह्यलोक में पूजित होता है।

तीर्थं नारायणस्यान्यज्ञाना तु पुरुषोत्तमम्।

तत्र नारायणः श्रीमानास्ते परमपुरुषः॥ २७॥

पूजयित्वा परं विष्णुं स्नात्वा तत्र द्विजोत्तमः।

ब्राह्मणान्यूजयित्वा तु विष्णुलोकमवाप्नुयात्॥ २८॥

भगवान् नारायण का एक अन्य तीर्थ है जिसका नाम पुरुषोत्तम है। वहाँ पर साक्षात् लक्ष्मीवान्, प्रभु, परम पुरुष नारायण विराजमान रहा करते हैं। वहाँ पहले परम विष्णु का पूजन करके तथा स्नान करके द्विजोत्तम ब्राह्मणों का पूजन करे तो वह विष्णुलोक में जाता है।

तीर्थानां परमं तीर्थङ्गेकर्णं नाम विश्वतम्।

सर्वपापहरं शार्पोनिवासः परमेष्ठिनः॥ २९॥

सभी तीर्थों में एक परम श्रेष्ठ गोकर्ण नाम से विष्ण्यात तीर्थ है, वह परमेश्वरी भगवान् शम्भु का निवास स्थल है और यह सभी पापों का हरण करने वाला है।

दृष्टा लिङ्गं तु देवस्य गोकर्णं परमपुनम्।

ईमित्ताल्लभते कामानुदस्य दिव्यतो भवेत्॥ ३०॥

उत्तरं चापि गोकर्णं लिङ्गं देवस्य शूलिनः।

महादेवं चार्ययित्वा शिवसायुज्यमाप्नुयात्॥ ३१॥

वहाँ पर महादेव के परमोत्तम गोकर्ण लिङ्ग का दर्शन करके मनुष्य अपने सभी अभीष्ट मनोरथों को प्राप्त कर लेता है तथा वह रुद्रदेव का अतीव प्रिय भक्त हो जाता है। उसी तरह उत्तर की ओर भी गोकर्ण नाम का तीर्थ है, वहाँ त्रिशूलधारी शंकर का लिङ्ग है। वहाँ भी मनुष्य महादेव को पूजा करके शिव के सायुज्य को प्राप्त करता है।

तत्र देवो महादेवः स्याणुरित्यपिविश्वतः।

तं दृष्टा सर्वपापेभ्यस्तत्क्षणानुच्यते नरः॥ ३२॥

उस तीर्थ में जो देव महादेव है वे स्थानु नाम से विश्वत हैं। उन प्रभु का दर्शन करके मनुष्य उसी क्षण सभी पापों से मुक्त हो जाता है।

अन्यत्कुञ्जाश्रमप्युण्यं स्वानं विष्णोर्महात्मनः।

संपूर्णं पुरुषं विष्णुं शेतद्वीपे यहीयते॥ ३३॥

इसके अतिरिक्त एक अन्य परम पुण्यमय कुञ्जाश्रम है जो महात्मा भगवान् विष्णु का स्थान है। वहाँ पर महापुरुष श्रीविष्णु का पूजन करके मनुष्य शेतद्वीप में महिमान्वित हो जाता है।

यत्र नारायणो देवो स्त्रेण त्रिपुरारिणा।
कृत्वा यज्ञस्य मथनं दक्षस्य तु विसर्जितः॥ ३४॥
समन्ताद्योजने क्षेत्रे सिद्धूर्धिगणसेवितम्।
पुण्यमायतने विष्णोस्तत्रास्ते पुरुषोत्तमः॥ ३५॥

जहाँ पर देव श्रीनारायण ने त्रिपुरारि रुद्र के साथ प्रजापति दक्ष के यज्ञ को मथकर नष्ट कर दिया था। उसके चारों ओर एक योजन का क्षेत्र जो बड़े-बड़े सिद्ध और श्रृणिगणों के द्वारा सेवित है। यह भगवान् विष्णु का परम पुण्यमय आश्रय स्थल है और वहाँ पर साक्षात् पुरुषोत्तम प्रभु विराजमान रहते हैं।

अन्यत्कोकामुखे विष्णोस्तीर्थमद्वतकर्मणः।
मुक्तोऽत्र पातकैर्पर्त्यो विष्णुसारुप्यमानुयात्॥ ३६॥
एक अन्य कोकामुख में अद्वत कर्मों वाले भगवान् विष्णु का तीर्थ स्थल है। इस तीर्थ में (स्नानादि से) पांपों से मुक्त हुआ मानव विष्णु की स्वरूपता को प्राप्त कर लेता है।

शालिग्रामं महातीर्थं विष्णोः प्रतिविवर्द्धनम्।
प्राणांस्तत्र नरस्त्वक्त्वा हृषीकेशं प्रपश्यति॥ ३७॥
एक शालिग्राम नामक महातीर्थ है, जो भगवान् विष्णु की प्रति को बढ़ाने वाला है। इस परम पवित्र स्थल पर मनुष्य अपने प्राणों को त्याग कर साक्षात् भगवान् हृषीकेश के दर्शन प्राप्त करता है।

अश्वतीर्थपिति खण्डात् सिद्धावासं सुशोभनम्।
आस्ते हृषीशिरा नित्यं तत्र नारायणः स्वयम्॥ ३८॥
एक अश्वतीर्थ नाम से प्रसिद्ध महान् तीर्थ है। यह सिद्धों का आवास स्थल और अतीव शोभासम्पन्न है। वहाँ पर हृष के समान शिर वाले भगवान् नारायण स्वयं नित्य विराजमान रहते हैं।

तीर्थं त्रैलोक्यविख्यातं सिद्धावासं सुशोभनम्।
तत्रास्ति पुण्यदं तीर्थं ब्रह्मणः परमेष्ठिनः॥ ३९॥
एक तीर्थ त्रैलोक्य नाम से विख्यात है। यह भी परमशोभन सिद्ध पुरुषों का निवास स्थल है। वहाँ पर एक पुण्य प्रदान करने वाला परमेष्ठी ब्रह्मणों का तीर्थ है।

पुकरं सर्वपापनं पृतानां ब्रह्मलोकदम्।
मनसा संस्मरेद्यस्तु पुकरं वै द्विजोत्तमः॥ ४०॥
मुच्यते पातकैः सर्वैः शक्तेण सह पोदते।
पुकर तीर्थं समस्त पांपों का हनन करने वाला तथा मृत होने वालों को ब्रह्मलोक प्रदान कराने वाला है। जो कोई भी

ह्रिजश्रेष्ठ मन से भी पुकर तीर्थ का स्मरण कर लेता है वह सभी प्रकार के पातकों से मुक्त होकर इन्द्रदेव के साथ आनन्दानुभव प्राप्त किया करता है।

तत्र देवाः सगच्छर्वाः सद्यक्षोरगराक्षसाः॥ ४१॥

उपासते सिद्धसम्हृद ब्रह्माणं पद्मसम्भवम्।

तत्र स्नात्वा ब्रजेच्छुदो ब्रह्माणं परमेष्ठिनम्॥ ४२॥

पूजायित्वा ह्रिजवरं ब्रह्माणं सप्तपश्यति।

वहाँ पर गन्धवौं के साथ सभी देवगण तथा यक्ष-उरग और राक्षस, सभी सिद्धों के संघ, पद्मयोनि पितामह ब्रह्मा की उपासना किया करते हैं। वहाँ पर विधिपूर्वक स्नान करके मनुष्य शुद्ध होकर परमेष्ठी ब्रह्मा का सत्रिधान प्राप्त करता है। जो कोई वहाँ उत्तम ब्रह्माण का पूजन करता है, वह ब्रह्मा का दर्शन कर लेता है।

तत्राभिगम्य देवेशं पुरुहूतमनिदितम्॥ ४३॥

तदूपो जायते पर्त्यः सर्वान् कामानवानुयात्।

वहाँ देवों के स्वामी अनिन्दित पुरुहूत (इन्द्र) भी रहते हैं। उनके समीप जाकर (दर्शन कर) मनुष्य उसी के समानरूप वाला हो जाया करता है और अपनी सभी कामनाओं की प्राप्ति कर लेता है।

सप्तसारस्वतनीर्थं ब्रह्माणीः सेवितं परम्॥ ४४॥

पूजयित्वा तत्र रुद्रमश्मेष फलं भवेत्।

वहाँ सप्त सारस्वत नाम का भी तीर्थ है जो ब्रह्मा आदि देवगणों के द्वारा परम सेवित है। जहाँ पर रुद्रदेव का पूजन करके अश्वमेघ यज्ञ के फल की प्राप्ति होती है।

यत्र मङ्गणको रुद्रं प्रपञ्चं परमेष्वरम्॥ ४५॥

आराधयामास शिवं तपसा गोवृष्णवजम्।

जहाँ मङ्गणक ने परमेष्ठ भगवान् रुद्र की शरणागति प्राप्त की थी। उस मङ्गणक ने अपनी तपश्चर्या से गोवृष्णवज प्रभु शिव की आराधना की थी।

प्रजज्वालात्य तपसा मुनिर्धक्षकस्तदा॥ ४६॥

ननर्ते हर्षवेगेन ज्ञात्वा रुद्रं समाप्तम्।

तं प्राह भगवानुदः किष्वर्वं नर्तितं त्वया॥ ४७॥

दृष्टापि देवर्णीशानं त्रृत्यति स्म पुनः पुनः।

तब मङ्गणक मुनि तप से प्रज्वलित हो उठे थे। भगवान् रुद्र के आगमन को जानकर वह मुनि हर्षातिरेक के साथ बड़े वेग से नृत्य करने लग गये थे। भगवान् रुद्रदेव ने उससे कहा— आपने यह नृत्य किस प्रयोजन से किया था ?

परन्तु वे ईशान देव को अपने समझ देखकर भी बारम्बार नृत्य ही करते रहे।

सोऽन्यौश्च भगवानीशः सगर्वं गर्वशानये॥ ४८॥

स्वकं देहं विदार्यास्मै भस्मराशिमदर्शयत्।

यह देखकर भगवान् ईशा ने मुनि के गर्व की शान्ति के लिये ही अपने शरीर को चीरकर गर्व के सहित इस मङ्गुणक मुनि को भस्मराशि दिखाई थी।

एष्येषं मच्छरीरोर्यं भस्मराशिं द्विजोत्तम॥ ४९॥

प्राहात्म्यमेतत्परस्परस्वादृशोऽन्योऽपि विद्याते।

यत्सगर्वं हि भवता नर्तनं मुनिपुङ्क्व॥ ५०॥

(वे चोले) हे द्विजोत्तम ! मेरे शरीर में उठी हुई इस भस्म की राशि को तुम देखो। यह इस तपक्षर्या का माहात्म्य ही है और तुम्हारे समान ही अन्य भी विद्यमान हैं। हे मुनिपुङ्क्व ! आपको अपनी की हुई इस तपस्या का गर्व हो रहा है कि आप बारम्बार नृत्य ही करते चले जा रहे हैं।

न युक्तं तापसस्यैतत्त्वतोऽप्यभ्यधिको हाहम्।

इत्याभाव्य मुनिक्रेष्टुं स रुद्रोऽखिलविष्टदृक्॥ ५१॥

आख्यया परमं भावं नर्तनं जगतो हरः।

सहस्रशीर्षा भूत्वा स सहस्राक्षः सहस्रपात्॥ ५२॥

दंष्ट्राकरात्मवदनो ज्वालामाली भयंकरः।

एक तापस को ऐसा नृत्य में ही विहूल हो जाना बस्तुतः उचित नहों है, तुम से भी अधिक तो मैं ही नृत्य करने वाला हूँ। अखिल विष्ट के द्रष्टा उन रुद्रदेव ने उस मुनिक्रेष्ट से ऐसा कहकर अपने क्रेष्ट भाव को प्रकट करते हुए जगत् संहारक ताण्डव नृत्य आरम्भ कर दिया था। उस समय भगवान् शिव का स्वरूप सहस्र शिरों वाला, सहस्र नेत्र और सहस्र चरणों वाला, दंष्ट्राओं से विकराल मुख वाला तथा ज्वालाओं की माला से युक्त हुआ भयङ्कर लगा रहा था। ऐसा त्रिशूली ईश के समीप में स्थित होकर उस मुनि ने स्वरूप देखा था। वहों पर उन्हों के समीप में परम विशाल लोचनों वाली चारुविलासिनी देवी का भी दर्शन किया था जो दश सहस्र सूर्यों के समान तेजाकार वाली थी तथा प्रसन्न मुख से युक्ता जगद्व्या साक्षात् शिवा थी। विशेष प्रभु को सित के साथ अमित द्युति वाले और सामने स्थित देखकर वह मुनीश्वर संत्रस्त हृदय वाले होकर कम्यायमान हो रहे थे। वशी मुनीश्वर ने रुद्राध्याय का जाप करते हुए शिव से भगवान् रुद्र को प्रणाम किया था।

सोऽन्यपश्यदेशस्य यार्षे तस्य त्रिशूलिनः॥ ५३॥

विशाललोचनामेकां देवीञ्चारुविलासिनीम्।

मूर्च्ययुतसमाकारां प्रसन्नवदनां शिवाम्॥ ५४॥

समितं प्रेष्य विशेशनिष्ठन्तमपितद्युतिप्।

उस समय मुनि ने त्रिशूलधारी भगवान् ईश के पार्श्वभाग में विशाल नेत्रों से युक्त तथा सुन्दर विलासों से युक्त देवी को भी देखा था। वे शिवा देवी हजारों सूर्य के समान तेज युक्त और प्रसन्नवदना थीं। अमित कानिसम्प्रब्रह्म वे देवी शंकर को ओर मन्द हास्य के साथ देखती हुई खड़ी थीं।

दृष्टा संत्रसाहृदयो वेषमानो मुनीश्वरः॥ ५५॥

ननाम शिरसा संरूपाध्यायापन्वशी।

इस प्रकार शंकर के रूप को देखकर मुनीश्वर का हृदय त्रस्त होकर कौपने लगा। वह किसी प्रकार इन्द्रियों को वश में करके रुद्राध्याय का जाप करने लगे और उन्हों शिर द्वाकाकर प्रणाम किया।

प्रसन्नो भगवानीशेस्त्राय्यको भक्तवत्सलः॥ ५६॥

पूर्ववेषं स जगाह देवी चान्तर्हिताभवत्।

आलिङ्ग्य भक्तं प्रणतं देवदेवः स्वयं शिवः॥ ५७॥

तब प्रसन्न होकर तीन नेत्रधारी भगवान् शिव ने भक्तवत्सल होने से पुनः अपना पूर्व वेष ग्रहण कर लिया और वह देवी वहां से अन्तर्हित हो गयीं। शिव ने स्वयं ही अपने चरणों में प्रणत भक्त का आलिङ्गन किया।

न भेत्यर्थं त्वया यस्य प्राह किन्ते ददाम्यहम्।

प्रणत्य मूर्णा गिरिशं हरं त्रिपुरसूदनम्॥ ५८॥

विजाप्यामास तदा हृष्टः प्रष्टुमना मुनिः।

नपोऽस्तु ते महादेव महेश्वर नपोऽस्तु ते॥ ५९॥

किमेतदगवद्वायं सुधोरं विश्वतोपुखम्।

का च सा भगवत्पार्षे राजमाना व्यवस्थिताः॥ ६०॥

अन्तर्हिते च सहसा सर्वपिच्छामि वेदितुम्।

और कहा— हे वत्स ! अब तुमको किसी प्रकार का भय नहीं करना चाहिए। बताओ, मैं तुमको क्या प्रदान करूँ। तब मुनि ने मस्तक से त्रिपुरासुर का नाश करने वाले गिरीश हर को प्रणाम किया और परमहर्षित होकर पूछने की इच्छा से प्रभु से कहा— हे महादेव ! हे महेश्वर ! आपको नमस्कार हो। हे भगवान् ! आपका यह परम घोर विश्वतोमुखरूप क्या था और आपके पार्श्वभाग में विराजमान होकर व्यवस्थित देवी

कौन थी ? वह अचानक अदृश्य हो गई, मैं यह सभी जानने की इच्छा कर रहा हूँ।

इत्युक्ते स्वात्महोरेशस्तदा सर्वकां हरः॥६१॥

परेषाः स्वात्मो योगं देवीं च त्रिपुरानलः।

अहं सहस्रनयनः सर्वात्मा सर्वतोमुखः॥६२॥

दाहकः सर्वणाशानां कालः कालकरो हरः।

पर्यवे प्रेयते कृत्स्नं चेतनादेतनात्मकम्॥६३॥

ऐसा पूछने पर त्रिपुरा को जलाने वाले अग्निरूप महेशश्वर हर ने उस समय मङ्गण मुनि से अपने योग के प्रभाव तथा देवी के विषय में कहा। मैं सहस्रनयन, सर्वात्मा, सर्वतोमुख, समस्त पाशों का दाहक, कालरूप और कालनिर्माता हर हूँ। मेरे द्वारा ही सम्पूर्ण चेतन और अचेतन जगत् प्रेरित किया जाता है।

सोऽनन्दार्थी म पुरुषो ह्यहं वै पुरुषोत्तमः।

तस्य सा परमा माया प्रकृतिस्त्रियुगुणात्मिका॥६४॥

मैं ही सबका अनन्दार्थी पुरुष होने से पुरुषोत्तम हूँ। वह देवी (जिसे तुमने देखा था) त्रिगुणात्मिका स्वरूप वाली मूलप्रकृति मेरी माया है।

प्रोच्यते पुनिभिः शक्तिर्ग्रहोनिः सनातनी।

म एष मायदा विश्वं व्यापोहयति विश्वकृतः॥६५॥

नारायणः परोऽव्यक्तो पायारूप इति श्रुतिः।

एवमेतत्त्वगत्सर्वं सर्वदा स्थापयात्यहम्॥६६॥

यही मुनियों के द्वारा इस जगत् की योनिस्वरूपा सनातनी शक्ति कहा गया है। वह विश्व को रचना करने वाला प्रभु अपनी इस माया के द्वारा इस सम्पूर्ण विश्व को मोहित किया करते हैं। वह नारायण पर, अव्यक्त और मायारूप हैं—ऐसा श्रुति कहती है। इसी प्रकार मैं इस सम्पूर्ण जगत् को सर्वदा स्थापित किया करता हूँ।

योजयामि प्रकृत्याहं पुरुषं पञ्चविंशकम्।

तथा वै संगतो देवः कूटस्थः सर्वगोऽपलः॥६७॥

सूजत्यशेषपेवेदं स्वपूर्तेः प्रकृतेरजः।

स देवो भगवान्द्रहा विश्वरूपः पितापहः॥६८॥

इस त्रिगुणात्मिका प्रकृति के साथ मैं पञ्चविंशते तत्त्व पुरुष को योजित करता हूँ। इस प्रकार प्रकृति के साथ संगत तथा स्वयं कूटस्थ-निर्विकार, सर्वत्र गमन करने वाला विशुद्ध वही अज अपनो ही मूर्तिरूपा प्रकृति में इस सम्पूर्ण

विश्व का सूजन किया करता है। वही देव भगवान् द्रहा विश्वरूप और पितामह हैं।

तदैत्कथितं सम्यक् स्वपूर्वं परमात्मनः।

एकोऽहं भगवान्कालो ह्यनादिशुत्तकद्विभुः॥६९॥

समाप्त्याय परं भावं प्रोक्तो रुद्रो मनीषिभिः।

पर्यवे सा परा शक्तिर्देवी विदेति विश्रुताः॥७०॥

मैंने परमात्मा का सूजन करने का यह समस्त विधान तुम्हें बता दिया है। एक मैं ही भगवान् कालरूप हूँ जो अनादि और विभु होने से सबका अन्त करने वाला हूँ। जब मैं परम भाव में समाप्तिस्थित होकर मनीषियों द्वारा रुद्र कहा गया हूँ। वह देवी विद्या नाम से प्रसिद्ध हैं मेरी ही एक परा शक्ति है।

दृष्टे हि भवता नूनं विद्यादेहं स्वयं ततः।

एवमेतानि तत्त्वानि प्रधानपुरुषेभ्वरः॥७१॥

विष्णुर्द्रहा च भगवान्द्रहः काल इति श्रुतिः।

प्रयं मे तदनाद्यन्तं द्रहाप्येव व्यवस्थितम्॥७२॥

तुमने तो स्वयं ही उस विद्यारूप देह को देख लिया है। इस प्रकार प्रधान, पुरुष, ईश्वर, विष्णु, द्रहा और भगवान् रुद्र, तथा काल—ये ही मुख्य तत्त्व हैं—यही श्रुति का बचन है। यह तीनों ही आदि और अन्त से रहित हैं तथा द्रहास्वरूप हैं।

तदात्मकं तदव्यक्तं तदक्षरमिति श्रुतिः।

आत्मानन्दपरं तत्त्वं चिन्मात्रं परम्पदम्॥७३॥

आकाशं निष्कलं द्रहा तस्मादन्यत्र विद्यते।

एवं विज्ञाय भवता भक्तियोगाश्रयेण तु॥७४॥

सम्पूर्ज्यो बन्दनोयोऽहं ततस्तं पश्यसीभुरम्।

श्रुति कहती है—वह उसी के स्वरूप वाला, अव्यक्त और अश्वर (आविनाशी) है। आत्मानन्दरूप परम तत्त्व ज्ञानमात्र है और वही परम पद है। वही आकाशरूप निष्कल द्रहा है उससे अन्य कुछ नहीं है। इसी प्रकार विशेषरूप से जानकर भक्तियोग का आश्रय लेकर आपके लिए मैं भली-भौति पूजन तथा बन्दन के योग्य हूँ। इससे तुम ईश्वर को देख सकोगे।

एतावदुक्त्वा भगवान्द्रहामादर्शने हरः॥७५॥

तत्रैव भक्तियोगेन रुद्रमाराघयन्तुनिः।

एतत्प्रवित्रपतुले तीर्थे द्रहाप्यसेवितम्।

संसेव्य द्रहाणो विद्वान्मुच्यते सर्वपातकैः॥७६॥

इतना कहकर भगवान् शंकर वहीं अदृश्य हो गये। वहीं भक्तियोग से मुनि ने रुद्रदेव को आराधना करते रहते थे। यह परम पवित्र अतुलनीय तीर्थ ब्रह्मर्षियों के हारा सेवित है। इसे विद्वान् ब्राह्मण सेवन करके समस्त पातकों से मुक्त हो जाता है।

इति श्रीकूर्मपुराणे उत्तरार्द्धे पञ्चांशोऽध्यायः॥३५॥

षट्ट्रिंशोऽध्यायः (तीर्थ-प्रकरण)

सूत उचाव

अन्यत्वित्रे विपुलं तीर्थं त्रैलोक्यक्षिण्यम्।
रुद्रकोटिरिति ख्यातं रुद्रस्य परमेष्ठिनः॥१॥

सूतजी बोले— त्रैलोक्य में प्रसिद्ध एक अन्य पवित्र विशाल तीर्थ है। परमेष्ठी रुद्र का होने से यह रुद्रकोटि नाम से विख्यात है।

पुरा पुण्यतमे काले देवदर्शनतत्यराः।
कोटिब्रह्मर्षयो दानासं देशमगमन्यरम्॥२॥
अहं इद्यासि गिरिशं पूर्वमेव पिनाकिनम्।
अन्योऽन्यं भक्तियुक्ताना विवादोऽभू-महान् किल॥३॥

किसी विशेष पुण्यतम पुरातन काल में कभी करोड़ों जितेन्द्रिय महर्षिगण, महादेव के दर्शन की इच्छा से उस तीर्थ में गये थे। वहां जाने पर भक्तियुक्त हुए उन महर्षियों में, ‘मैं पहले पिनाकी गिरीश का दर्शन करूँगा’ इस प्रकार परम्पर महान् विवाद हो उठा।

तेषा भक्तिं तदा दृष्टा गिरिशो योगिनां गुरुः।
कोटिरूपोऽभवतुदो रुद्रकोटिसतोऽभवत्॥४॥

तब उनकी भक्ति देखकर योगियों के गुरु भगवान् महादेव ने करोड़ों रूप धारण कर लिए। तब से यह तीर्थ रुद्रकोटि के नाम से प्रसिद्ध हुआ।

ते स्म सर्वे महादेवं हरं गिरिगुहाशयम्।
अपश्यन् पार्वतीनां व हृष्टपुष्टियोऽभवत्॥५॥

पर्वत की गुफा में रहने वाले, पार्वतीपति शंकर के (एक साथ) दर्शन किये अतः वे सभी ऋषिगण अत्यन्त परिपक्व बुद्धि वाले हो गये।

अनाशनं महादेवं पूर्वमेवाहमीष्वरम्।

दृष्टवानिति भवत्या ते रुद्रव्यस्तथियोऽभवत्॥६॥

आदि और अन्त रहित ईश्वर, महादेव को मैने ही पहले देखा, वह सोचकर, ब्रह्मर्षि लोग भक्ति के कारण रुद्रस्य बुद्धिवाले हो गये।

अद्यान्तिक्षे विमलप्यश्यनि स्म महत्तरम्।

ज्योतिस्त्रैव ते सर्वेऽभिलापतः परम्पदम्॥७॥

यतः स देवोऽध्युषितस्तीर्थं पुण्यतां शुभम्।

दृष्टा स्त्रान्सपर्यर्थं रुद्रसामीप्यमानुयुः॥८॥

तत्प्रस्त्रात् उन्होंने आकाश में एक विमल महान् ज्योति को देखा और उसी में लीन होकर ही, वे सब परम पद को प्राप्त हो गये। यही कारण है कि वे रुद्रदेव वहां रहते थे, इसलिए यह तीर्थ पुण्यमय और शुभ है। वहां रुद्र का दर्शन तथा पूजन करके मनुष्य रुद्र का समीक्ष प्राप्त कर लेता है।

अन्यथ तीर्थव्रतं नामा मधुवनं शुभम्।

तत्र गत्वा नियमवानिन्द्रस्याद्वासनं लभेत्॥९॥

अद्यान्या पदानगरी देशः पुण्यतमः शुभः।

तत्र गत्वा पितॄन्पूज्य कुलानां तारयेच्छतम्॥१०॥

एक दूसरा मधुवन नामक श्रेष्ठ पवित्र तीर्थ है। वहां जाकर नियमनिष्ठ होकर रहने वाला इन्द्र के अर्धासन को प्राप्त कर लेता है। इसके अतिरिक्त पदानगरी नामक शुभ और पुण्यतम प्रदेश है। वहां जाकर पितरों की पूजा करने से अपने बंश के सौ पितरों का उद्घार होता है।

कालंजरं पहातीर्थं रुद्रलोके पहेश्वरः।

कालंजरं भक्तन्देवं तत्र भक्तप्रियो हरः॥११॥

श्वेतो नाम शिवे भक्तो राजीष्प्रवरः पुरा।

तदाशीसत्प्रापस्त्वारौ पूज्यामास शूलिनम्॥१२॥

संस्थाप्य विधिना रुद्रं भक्तियोगपुरःसरः।

जगाप रुद्रपनिशं तत्र संन्यस्तमानसः॥१३॥

रुद्रलोक में कालंजर नामक एक महातीर्थ है। जहां भक्तप्रिय महादेव महेश्वर कालंजर नामक रुद्रदेव का भजन करते हैं। प्राचीन काल में श्वेत नामक एक शिवभक्त राजीषि यही शिवजी के आशीर्वाद प्राप्तकर नमस्कारादि से त्रिशूलधारी शिव का पूजन किया करता था। उसने वहां भक्तियोगपूर्वक विधिवत् शिवलिङ्ग स्थापित किया और फिर उसी शिव में चित लगाकर निरन्तर रुद्र मन्त्र का जप किया।

सितं कार्णाजिनं दीपं शूलमादाय भीषणम्।

नेतुमध्यागतो देशं स राजा यत्र लिष्टति॥१४॥

तत्पश्चात्, वे राजा जहाँ पर थे, (उनकी मृत्यु का समय आने पर) उनको वहाँ से कालदेव अपने यमलोक में ले जाने के लिए दीप्तिमान् काले मृगचर्म को धारणकर और हाथ में भीषण त्रिशूल धारण करके वहाँ आ पहुँचे।

वीक्ष्य राजा भवाविष्टः शूलहस्तं समागतम्।
कालं कालकरं थोरं भीषणं दण्डदीपितम्॥ १५॥
उभाभ्यामव हस्ताभ्यां स्पृष्टासौ लिङ्गमुत्पम्।
ननाम शिरसा स्त्रं जजाप शतरुद्रियम्॥ १६॥

तब राजा श्रेत सारे संसार के प्रलयकर्ता, भयंकर, घोररूप प्रचण्ड दीपिकाले, काल को त्रिशूल हाथ में लेकर उपस्थित देखकर भयभीत हो गये। तब वह राजा ने दोनों हाथों से अत्युत्तम शिवलिङ्ग का स्पर्श करके सिर झुकाकर रुद्र को नमस्कार किया तथा शतरुद्रिय स्तोत्र का जप करने लगे।

जपनमाह राजानं नपत्नं मनसा भवम्।
एहोहीति पुरः स्थित्वा कृतान्तः प्रहसन्निवा॥ १७॥
तपुवाच भवाविष्टो राजा स्त्रपरायणः।
एकमीश्वर्यनरतं विहायान्यात्रिषूदय॥ १८॥

इस प्रकार जप करते हुए तथा मन से भव को नमन करने वाले राजा के आगे कृतान्त यम ने हँसते हुए से कहा-यहाँ आओ, यहाँ आओ। स्त्रपरायण राजा भयभीत होकर यमराज से बोले कि महादेव की पूजा में निरत मुझ एक को छोड़कर, अन्य लोगों का विनाश करो।

इत्युक्तवनं भगवान्द्रवीदीतपानसम्।
स्त्रार्थ्यनरतो वान्यो यद्दृशो को न तिष्ठति॥ १९॥

तब ऐसा कहने वाले भयभीत मन वाले राजा को यमराज ने कहा कि चाहे रुद्र की पूजा में निरत हो या दूसरा कोई, कीन मेरे बशीभूत नहीं होता।

एवमुक्त्वा स राजानं कालो लोकप्रकालनः।
वदव्य पाशं राजापि जजाप शतरुद्रियम्॥ २०॥

ऐसा कहकर सारे लोकों के प्रलयकर्ता, काल मृत्युदेव ने राजा को पाश से बांध दिया, परन्तु राजा तब भी शतरुद्रिय का जप करते रहे।

अवांतरिक्षे विपुलं दीप्तिमान्
तेजोरार्णि भूतभर्तुः पुराणम्।
ज्वालामालासंदृतं व्याप्तं विष्णुं
प्रादुर्भूतं संस्थितं सन्दर्शन॥ २१॥

तभी राजा श्रेत ने भूतपति, महादेव के दीप्तिमान् ज्वालाओं की मालाओं से युक्त, अनादि, विपुल तेज समूह को देखा जो विष्णु को व्याप्त करके प्रादुर्भूत हुआ था।

तन्मध्येऽसौ पुरुषं रुक्मिवर्णं
देव्या देवं चन्द्रलेखोऽज्ज्वलाहृष्म्।
तेजोरूपं पश्यति स्मातिहृष्टो
येने चात्मानमप्यायच्छतीति॥ २२॥

राजा ने उस तेजसमूह के बीच महादेवी के साथ विद्यमान, सुनहरे वर्ण और चन्द्रलेखा से सुशोभित अंग वाले, तेजोरूप पुरुष को देखा। राजा अत्यन्त प्रसन्न होकर उसे देखने लगे और समझ गये कि मेरे नाथ आ गये हैं।

आगच्छनं नातिदूरेति दृष्टा कालो रुद्रं देवदेव्या महेशम्।
व्यपेतभीरुखिलेशैकनां राज्यर्षिस्त्रेतुमध्याजागाम॥ २३॥

थोड़ी दूर पर महादेवी के साथ रुद्रदेव को आते देखकर भी काल निर्भय ही रहा और समस्त विष्णु के नाथ महादेव के समक्ष ही राजर्णि को ले जाने के लिये उघत हुआ।

आलोक्यासौ भगवानुग्रहकर्मा
देवो रुद्रो भूतभर्ता पुराणः।
एवं भक्तं सत्वरं यां स्मरनं
देहीतीर्थं कालरूपं भवेति॥ २४॥

यह देखकर, प्राणियों के नाथ, पुराणपुरुष भगवान् उग्रकर्मा देव रुद्र ने, कालरूप मृत्यु से कहा—ऐसे मुझे बार बार स्मरण करने वाले मेरे भक्त को शीघ्र ही मुझे दे दो।

श्रुत्वा यावद्य गोपते स्त्रभावः
कालात्मासौ यन्यमानः स्वभावम्।
बद्धा भक्तं पुनरेवाव पाशे
रुद्रो रौद्रं याभिद्राव वेगात्॥ २५॥

बृशभपति महादेव का ऐसा बचन सुनकर भी काल ने अपने स्वभाव को मुख्य मानते हुए उग्रभाव से शिवभक्त को पाशों से बांध दिया और क्रोधित होकर वेग से रुद्र की ओर दौड़ पड़े।

प्रेक्ष्यायानं शैलपुत्रीम्येशः
सोऽन्वीक्ष्याने विश्वायायविष्णिः।
सावज्ञं वै वापरादेन कालं
त्वेतस्यैनं पश्यतो व्याजघान॥ २६॥

काल को आते देखकर संसार के प्रपन्थों के ज्ञाता, महादेव ने पावर्ती की ओर कटाक्ष से देखकर, उसकी

अवहेलना करते हुए राज्यी के सामने काल को बायें पैर से मारा।

यमार सोऽतिधीषणो महेशपादधातितः।

विराजते सहोमया महेश्वरः पिनाकश्चक्॥ २७॥

महेश्वर के पाद प्रहार से ही अत्यन्त भयंकर कालदेव मारा गया और पिनाक धनुधधारी महेश्वर, उमा के साथ सुशोभित होने लगे।

निरीक्ष्य देवमीक्षरं प्रहण्यमानसो हरम्।

ननाम चै तमव्ययं स राजपुङ्क्वस्तदा॥ २८॥

देवेश्वर शंकर को देखकर राजश्रेष्ठ चेत प्रसन्नमन होकर अविनाशी पुरुष को नमस्कार एवं स्तुति करने लगे।

नमो भवाय हेतवे हराय किञ्चश्चावदे।

नमः शिवाय धीमते नमोऽपवर्गदायिनो॥ २९॥

नमो नमो नमो महाविभूतये नमः।

विभागहीनस्त्विष्णो नमो नराविषय ते॥ ३०॥

नमोऽस्तु ते गणेश्वर प्रपञ्चदुःखशासन।

अनादिनित्यभूतये वराहशुद्धधारिणो॥ ३१॥

नमो वृषभजाय ते कपालमालिने नमः।

नमो महावगाय ते शिवाय शङ्कुराय ते॥ ३२॥

जगत् के हेतुरूप भव को नमस्कार है, हररूप, विश के लिए कल्याणरूप को नमस्कार है। जानी शिव को नमस्कार, मोक्षप्रदाता को नमस्कार। महान् विभूति या ऐश्वर्ययुक्त (महा विभूति-भस्मधारी) आपको चार चार नमस्कार। विभाग रहित स्वरूप चाले तथा मनुष्यों के स्वामी आपको नमस्कार है। हे प्राणियों के स्वामी! हे शरणागत दुःखहारी! आपको नमस्कार। आप आदि रहित, नित्य, सौभाग्य सम्पन्न और वशः का शङ्कु भारण करने वाले हैं, आपको नमस्कार। वृषभज! आपको नमस्कार है। हे कपालमाली! आपको नमस्कार। हे महानग! आपको नमस्कार। कल्याणकारी शंकर को नमस्कार।

अथानुगृह्ण शङ्करः प्रणामतत्परं नृपम्।

स्वगाणपत्यपत्ययं स्वरूपतामयो ददौ॥ ३३॥

तत्पक्षात्, प्रणाम करने में तत्पर राजा पर महादेव ने कृष को और अपना गाणपत्य पद और अविनाशी स्वरूप प्रदान किया।

सहोमया सपार्षदः सरावपुण्यो हरः।

मुनीशसिद्धवन्दितः क्षणाददृश्यतामगात्॥ ३४॥

तत्पक्षात् उमा देवी तथा पार्षदों के साथ चेत नामक राजा को भी साथ लेकर महर्षियों और सिद्धों के द्वाय स्तुत्य होते हुए, वे महेश्वर क्षणभर में अदृश्य हो गये।

काले महेशनिहते लोकनाथः पितामहः।

अयाचत वरं रुद्रं सजीवोऽयं भवत्विति॥ ३५॥

महेश के द्वाय काल को मार दिये जाने पर, लोकनाथ पितामह ने रुद्र से वर माँगा था कि 'यह काल जीवित हो जाय'।

नास्ति कञ्जिदपीशान दोपलेशो वृषभज।

कृतानस्यैव भविता तत्कार्ये विनियोजितः॥ ३६॥

(उन्होंने कहा) हे ईशान! वृषभज्वन्! यमराज का जरा भी दोष नहीं, क्योंकि उसे आपने ही इस कार्य में नियुक्त हैं।

स देवदेववचनोऽवदेवेशरो हरः।

तथास्त्वत्याह विश्वाता सोऽपि तादुग्विष्टोऽभवत्॥ ३७॥

देवाधिदेव ब्रह्मा के वचन सुनकर, देवाधिदेव विश को आत्मा महेश्वर ने 'तथास्तु' कहा और वह भी तैसा ही हो गया अर्थात् पुनः जीवित हो गया।

इत्येतत्परं तीर्थं कालङ्गारपिति श्रुतम्।

गात्मावच्चर्यं महादेवं गाणपत्यं स विन्दति॥ ३८॥

इसीलिए यह श्रेष्ठ कालंजर (जहाँ काल का नाश किया था) तीर्थ माना गया है। वहाँ जाकर महादेव की पूजा करने से गणों के अधिष्ठित पद की प्राप्ति होती है।

इति श्रीकूर्मपुराणे उत्तरादेवं कालवये षट्प्रिंशोऽथ्यायः॥ ३६॥

सप्तत्रिंशोऽथ्यायः

(तीर्थ-प्रकरण)

मृत उवाच

इदमन्यतरं स्वानं गुद्धादगुह्तरं महत्।

यहादेवस्य देवस्य महालय इति श्रुतम्॥ १॥

तत्र देवाधिदेवेन रुद्रेण त्रिपुरारिणा।

शिलातले पदं न्यस्तं नास्तिकानां निर्दर्शनम्॥ २॥

तत्र पाशुपता: शान्ता भस्मोद्भूतिविश्रहः।

उपासते महादेवं वेदाध्ययनतत्परा:॥ ३॥

स्नात्वा तत्र पदं शार्वं दृष्ट्वा भक्तिपुरस्सरम्।

नमस्कृत्वाथ शिरसा रुद्रसापीष्यमानुयात्॥ ४॥

सूतजी ने कहा—यह एक अन्य गुहा से भी गुहातर श्रेष्ठ स्थान है। यह महादेव देव का महालय है—ऐसा सुना है। वहाँ शिलातल पर देवाधिदेव त्रिपुरारि रुद्र ने पदन्वस्ता किया था जो नासिकों के लिए अदृष्ट है। वहाँ पर पाशुपत लोग परम शान्तावस्था में भस्म से धूसरित शरीर बाले तथा वेदों के अध्ययन में तत्पर महादेव की उपासना किया करते हैं। वहाँ स्नान करने पर भक्तिपूर्वक भगवान् शर्व के इस स्थान का दर्शन करके तथा शिर नमन कर प्रणाम करने से रुद्र का सामीप्य प्राप्त होता है।

अन्यद्य देवदेवस्य स्थानं शास्त्रोर्महात्मनः।
केदारपिति विख्यातं सिद्धुमामालयं शुभम्॥५॥
तत्र स्नात्वा महादेवप्रवर्च्य वृषकेतनम्।
पीत्वा चैबोदकं शुद्धं गाणपत्यमवानुवात्॥६॥
श्राद्धं दानादिकं कृत्वा हृक्षयं लभते फलम्।
द्विजातिप्रवर्जुष्टे योगिगिर्जितमानसैः॥७॥

देवों के भी देव महात्मा शम्भु का एक अन्य स्थान है। यह केदार नाम से विख्यात है जो सिद्धों का शुभ आश्रय स्थल है। वहाँ पर स्नान करके और वृषकेतन महादेव की पूजा करके तथा परम शुद्ध जल का पान करके गाणपत्य पद प्राप्त होता है। वहाँ श्राद्ध तथा दान आदि करके अक्षय फल की प्राप्ति होती है। यह जितेन्द्रिय योगियों तथा श्रेष्ठ द्विजातियों द्वारा सेवित है।

तीर्थं एनक्षावतरणं सर्वपापविनाशनम्।
तत्राप्यर्थं श्रीनिवासं विष्णुलोके यहीयते॥८॥
अन्यश्च मगधारण्यं सर्वलोकगतिप्रदम्।
अक्षयं विन्दते स्वर्गं तत्र गत्वा द्विजोत्तमः॥९॥

वहाँ एक प्लक्षावतरण नामक तीर्थ है जो सभी प्रकार के पापों का नाश करने वाला है। वहाँ पर भगवान् श्रीनिवास की अर्चना करने पर मनुष्य विष्णुलोक में पूजित होता है। एक अन्य मगधारण्य नामक तीर्थ है जो सभी लोकों में गति प्रदान करने वाला है वहाँ पर पहुँचकर द्विजोत्तम अक्षय स्वर्ग की प्राप्ति किया करते हैं।

तीर्थं कनकुलं पुण्यं महापातकनाशनम्।
यत्र देवेन रुद्रेण यज्ञो दक्षस्य नाशितः॥१०॥
तत्र गंगापुण्यस्य शुविर्भावसमन्वितः।
मुच्यते सर्वपापैस्तु द्रह्मलोके वसेन्नरः॥११॥

कनकुल नाम का तीर्थ परम पुण्यमय है जो महान् पातकों का विनाशक है, जहाँ पर भगवान् रुद्रदेव ने

प्रजापति दक्ष के यज्ञ का नाश किया था। वहाँ पर गङ्गा में उपस्थरण करके परम पवित्र होकर भक्तिभावना से युक्त होकर तीर्थ का सेवन करने पर मनुष्य सब प्रकार के पापों से मुक्त हो जाता है और फिर द्रह्मलोक में निवास किया करता है।

महातीर्थपिति ख्यातं पुण्यं नारायणप्रियम्।
तत्राप्यर्थं हृषीकेशं श्वेतद्वीपं स गच्छति॥१२॥

एक महातीर्थ नाम से विख्यात तीर्थ है जो परम पुण्यमय है और भगवान् नारायण को अत्यन्त प्रिय है। वहाँ पर भगवान् हृषीकेश की अर्चना करके मनुष्य श्वेतद्वीप में जाता है।

अन्यद्य तीर्थप्रवर्तं नामा श्रीपर्वतं शुभम्।
अत्र प्राणान्परित्यज्य रुद्रस्य दधितो भवेत्॥१३॥
तत्र सत्रिहितो रुद्रो देव्या सह महेश्वरः।
स्नानपिण्डादिकं तत्र दत्तमक्षयमुत्तमम्॥१४॥

एक दूसरा और तीर्थों में परम श्रेष्ठ शुभ तीर्थ है जो नाम से श्रीपर्वत कहा जाता है। इस तीर्थ में मनुष्य अपने प्रिय प्राणों का परित्याग करके भगवान् रुद्र का परम प्रिय हो जाता है। वहाँ पर रुद्रदेव देवी पार्वती के साथ विराजमान रहते हैं। इस तीर्थ में स्नान और पिण्ड आदि का कर्म तथा दिया हुआ धन अक्षय एवं उत्तम हो जाता है।

गोदावरी नदी पुण्या सर्वपापश्चाप्तिनी।
तत्र स्नात्वा पितॄदेवांसर्पयित्वा यथाविधि॥१५॥
सर्वपापविशुद्धात्मा गोमहस्यफलं लभेत्।

गोदावरी नामकी परम पुण्यमयी नदी सभी पापों का नाश करने वाली है। उस नदी में स्नान करके पितरों और देवों का तर्पण यथाविधि करना चाहिए। वह सर्वपापों से विशुद्ध आत्मा बाला होकर एक सहस्र गौओं के दान का फल प्राप्त करता है।

पवित्रसलिला पुण्या कावेरी विष्णुला नदी॥१६॥
तस्या स्नात्वोदकं कृत्वा मुच्यते सर्वपातकैः।
त्रिरात्रोपोपातिनाथ एकरात्रोपातिन वा॥१७॥
द्विजातीनानु कथितं तीर्थानामिह सेवनम्।

पवित्र जलबाली कावेरी नदी अतिशय पुण्यमयी है। उसमें स्नान करके तथा (पितरों को) जल दान करके मनुष्य तीन रात्रि उपवास करता है, अथवा एक रात्रि तक उपवास करता है, वह समस्त पापों से मुक्त हो जाता है।

द्विजातियों का यह कथन है कि वहाँ पर तीर्थों का सेवन करना चाहिए।

यस्य वाह्मनसी शुद्धे हस्तपादौ च संस्किलौ॥ १८॥

अलोलुपो ब्रह्मचारी तीर्थानां फलमानुयात्।

जिसका मन और बाणी शुद्ध हों और हाथ-पैर भी संस्किल हों, उसे तीर्थ सेवन अवश्य करना चाहिए। जो मनुष्य लोलुप न हो, ब्रह्मचारी हो वही मनुष्य तीर्थों के शुभ फल प्राप्त किया करता है।

स्वामितीर्थं महातीर्थं त्रिषु लोकेषु किञ्चुतम्॥ १९॥

तत्र सन्निहितो नित्यं स्कन्दोऽपरनपरस्कृतः।

स्नात्वा कुमारशारायं कृत्वा देवादिर्पणम्॥ २०॥

आराध्य षण्मुखां देवं स्कन्देन सह घोदते।

स्वामितीर्थ एक महान् तीर्थ है और तीर्थों लोकों में यह परम प्रसिद्ध है। वहाँ पर देवगण के द्वारा नमस्कृत भगवान् स्कन्द नित्य ही वास करते हैं। वहाँ कुमार धारा में स्नान करके पितृगण और देवों का तर्पण करना चाहिए। जो छः मुख वाले देव की आराधना करता है, वह भगवान् स्कन्द के ही साथ आनन्द का उपभोग करता है।

नदी त्रैलोक्यविख्याता ताप्तपर्णीनि नामतः॥ २१॥

तत्र स्नात्वा पितृभक्त्या तर्पयित्वा यत्किंविधि।

पापकर्तनपि पितृस्नातयेन्नात्र संशयः॥ २२॥

ताप्तपर्णी नाम की नदी त्रैलोक्य में विख्यात है। उसमें स्नान करके यथाकिंविधि पितरों का भक्तिभाव से तर्पण करना चाहिए। वह पापकर्म वाले पितरों का भी उद्धार कर देता है—इसमें जरा भी संशय नहीं है।

चन्द्रतीर्थमिति ख्यातं कावेर्याः प्रभवेऽक्षयम्।

तीर्थं तत्र भवेहतं मृतानां सद्गतिप्रदम्॥ २३॥

विश्वपादे प्रश्यत्यन्ति देवदेवं सदाशिष्यत्।

भक्ता ये ते न यश्यति यथस्य वदनं द्विजाः॥ २४॥

कावेरी नदी के उत्पत्ति स्थान पर चन्द्रतीर्थ नाम से एक अक्षय तीर्थ विख्यात है। उस तीर्थ में दिया हुआ दान भी मृत पुरुषों को संगति प्रदान करने वाला है। विश्वपाद में देवों के देव सदाशिष्य का जो दर्शन किया करते हैं और जो शिव के भक्त होते हैं, वे द्विज यमराज का मुख नहीं देखा करते हैं अर्थात् मृत्यु पक्षात् शिव के समीप हो रहते हैं।

देविकायां वृषं नाम तीर्थं सिद्धुनिरेवितम्।

तत्र स्नात्वोदकं कृत्वा योगशिद्भूत्वं विन्दति॥ २५॥

देविका क्षेत्र में वृष नाम वाला एक तीर्थ है जो सिद्धों के द्वारा निरेवित है। उस तीर्थ में स्नानकर देव-पितृगण का तर्पण करके मनुष्य योग की सिद्धि को प्राप्त करता है।

दशाष्ट्रमेविकं तीर्थं सर्वपापविनाशकम्।

दशानामस्तुपेतानां तत्रानोति फलं नरः॥ २६॥

पुण्डरीकं तथा तीर्थं ब्राह्मणैरुपशोभितम्।

तत्राभिगम्य बुक्तात्वा पुण्डरीकफलं लभेत्॥ २७॥

दशाष्ट्रमेविक नाम वाला तीर्थ सभी पापों का विनाश करने वाला है। वहाँ पर उस तीर्थ का स्नानादि करके मनुष्य दश अक्षमेधों का फल प्राप्त कर लेता है। एक पुण्डरीक नामक तीर्थ है जो ब्राह्मणों के द्वारा उपशोभित है। वहाँ पर जाकर योगयुक्त मन वाला मनुष्य पुण्डरीक यज्ञ का फल प्राप्त करता है।

तीर्थेष्वः परमं तीर्थं ब्रह्मतीर्थमिति स्मृतम्।

ब्रह्माणमर्द्यत्यात्र ब्रह्मलोके महीयते॥ २८॥

सप्तस्तु तीर्थों में श्रेष्ठ तीर्थ ब्रह्मतीर्थ नाम से कहा गया है। यहाँ पितामह ब्रह्मजी का अध्यर्थन करके मानव अन्त में ब्रह्मलोक में जा कर प्रतिष्ठित होता है।

सरस्वत्या विनशनं स्वक्षप्रस्तवणं शुभम्।

व्यासतीर्थमिति ख्यातं मैनाकश्च नगोन्माः॥ २९॥

यमुनाप्रभवस्तुतं सर्वपापविनाशनः।

पितृणा दुहिता देवी गन्धकालीति विचुता॥ ३०॥

तस्यां स्नात्वा दिवं याति पृतो जातिस्मरो भवेत्।

इस प्रकार सरस्वती के किनारे विनशन, स्वलक्ष प्रस्तवण तथा शुभ व्यास तीर्थ प्रसिद्ध है और वहाँ मैनाक नाम से उत्तम पवन्त तीर्थ भी है। यमुना का उद्धव स्थानरूप तीर्थ भी सम्पूर्ण पापों का विनाश करने वाला है। वहाँ पितृगण की पुत्री देवी गन्धकाली - नाम से प्रसिद्ध थी। उसमें स्नान करके मनुष्य स्वर्ग में जाता है और मृत होकर जातिस्मर (पूर्वजन्म की स्मृतिवाला) होता जाता है।

कुञ्चेरतुङ्गं पापानं सिद्धुचारणसेवितम्॥ ३१॥

प्राणांस्तात्र परित्यज्य कुञ्चेरामुचरो भवेत्।

उषातुङ्गमिति ख्यातं यत्र सा रुद्रवल्लभा॥ ३२॥

तत्राभ्यर्थ्य भग्नदेवीं गोस्वहस्फलं लभेत्।

कुञ्चेरतुङ्ग नाम वाला तीर्थ सब पापों को दूर करने वाला तथा सिद्धों और चारणों द्वारा सेवित है। वहाँ पर पाण्डवाग करके प्राणी फिर कुञ्चेर के अनुचर होने का अधिकारी हो

जाया करता है। एक उमातुङ्ग नाम से विष्णुत तीर्थ है, जहाँ पर इन्द्रदेव को प्रिया निवास किया करती है। वहाँ उस तीर्थ में महादेवी श्रीजगदम्बा का अभर्वन करके एक सहस्र गौओं के दान का फल प्राप्त करता है।

भृगुतुङ्गे तपस्तं श्राद्धं दानं तथा कृतम्॥३३॥

कुलान्युभयतः सप्त पुनातीति परिर्भाषा।

भृगुतुङ्ग नामक तीर्थ में किया हुआ तप और श्राद्ध तथा दान आदि सत्कर्मों का सम्पादन दोनों माता-पिता के सातवंशो का उद्धार कर पवित्र कर देता है—ऐसी मेरी मति है।

काश्यपस्य महातीर्थं कालसर्पिरिति श्रुतम्॥३४॥

तत्र श्राद्धानि देयानि नित्यं पापक्षयेच्छया।

एक महामुनीन्द्र काश्यप का महान् तीर्थ है, जिसका शुभ नाम कालसर्पि—ऐसा सुना गया है। पापों के क्षय करने की इच्छा से उस तीर्थ में श्राद्ध-दान नित्य करने चाहिए।

दशार्णाण्यो तथा दानं श्राद्धं होमं तपो जयः॥३५॥

अक्षवज्वाव्ययज्ञैव कृतं भवति सर्वदा।

दशार्णा नामक तीर्थ में किये गये श्राद्ध-दान-होम-जप-तप सभी सदा अक्षय और अविनाशी हुआ करते हैं।

तीर्थं द्विजातिर्भिर्जुष्टं नामा वै कुरुतांगलम्॥३६॥

दत्वा तु दानं विविवद्वहालोके महोयते।

एक द्विजातियों के द्वारा सेवित कुरुजाङ्गल नाम से प्रसिद्ध तीर्थ है। इसमें पहुँचकर दिया हुआ दान का महान् प्रभाव हुआ करता है। दान दाता जिसने विधिपूर्वक दान किया है अन्त में वह ब्रह्मलोक में पहुँच कर महिमान्वित हुआ करता है।

वैतरण्यो महातीर्थं स्वर्णवेदां तथैव च॥३७॥

घर्षपृष्ठे च शिरसि ब्रह्मणः परमे शुभे।

भरतस्याक्षमे पुण्ये पुण्ये गृष्णवने शुभे॥३८॥

महाहृदे च कौशिक्यां दत्तं भवति चाक्षयम्।

इसी प्रकार वैतरणी नामक महातीर्थ में, स्वर्णवेदी नामक विशाल तीर्थ में, ब्रह्माजी के परम शुभ घर्षपृष्ठ और ब्रह्मार्थीर्थ तीर्थ में, भरत के पवित्र आश्रम में तथा परम पुण्यमय शुभ गृष्णवन नामक तीर्थ में और कौशिकी नदी के महाहृद तीर्थ में किया हुआ दान अक्षय हुआ करता है।

मुण्डपृष्ठे पदं च्यस्तं महादेवेन धीमता॥३९॥

हिताय सर्वभूतानां नास्तिकानां निर्दर्शनम्।

अल्पेनापि तु कालेन नरो धर्मपरायणः॥४०॥

पाप्यानमुत्सुजत्यात् जीर्णा त्वचमिवोरगः।

धीमान् देवेशर महादेव ने मुण्डपृष्ठ नामक तीर्थ में अपना पादन्यास किया है। वह सभी लोकों के हित की इच्छा से नास्तिकों के लिए दृष्टान्तरूप है। यहाँ पर वहुत थोड़े से समय में ही मनुष्य धर्म में परायण हो जाया करता है। जिस प्रकार से कोई सर्प अपनी कञ्जुली को त्याग कर दिया करता है वैक उसी प्रकार यहाँ पर अपने विहित पापों को भी मनुष्य शीघ्र छोड़ देता देता है।

नामा कनकनन्देति तीर्थं ग्रैलोक्यविकुतम्॥४१॥

उदीच्यां ब्रह्मपृष्ठस्य ब्रह्मार्थिणसेवितम्।

तत्र स्नात्वा दिव्यं वान्ति सशरीरा द्विजातयः॥४२॥

दत्तं वापि सदा श्राद्धापक्षयं समुदाहतम्।

ऋणैस्त्रिपरिरः स्नात्वा मुच्यते क्षीणकल्पमः॥४३॥

कनकनन्दा नाम वाला एक महान् तीर्थ है जो तीनों लोकों में प्रसिद्ध है। उत्तर दिशा में ब्रह्मपृष्ठ नामक तीर्थ ब्रह्मार्थियों द्वारा सेवित है। इस तीर्थ में जो भी द्विजाति स्नान कर लेते हैं वे सशरीर स्वर्ग को चले जाते हैं। इस तीर्थ में किया हुआ दान तथा श्राद्ध सर्वदा अक्षय होता है। उस तीर्थ में स्नान करके मनुष्य तीनों देव-पितर और ऋषियों के ऋण से मुक्त हो जाया करता है और उसके सब पाप क्षीण हो जाया करते हैं।

यानसे सरसि स्नात्वा शक्रस्यार्द्धासनं लभेत्।

उत्तरं यानसे गत्वा सिद्धिं प्राप्नोत्यनुत्तमाम्॥४४॥

तस्यान्निर्वर्तयेच्छाद्वं यथाशक्ति यथावलम्।

स कामान् लभते दिव्यान्मोक्षोपायश्च विन्दति॥४५॥

इसी प्रकार मानसरोवर में स्नान करके मनुष्य इन्द्रदेव का आधा आसन ब्रह्म कर लेता है। उत्तर मानस में जाकर मानव उत्तम सिद्धि को प्राप्त कर लेता है। इसीलिये जितनी भी शक्ति और बल हो उसी के अनुसार श्राद्ध अवश्य ही करना चाहिए। ऐसा श्राद्ध करने वाला व्यक्ति दिव्य कामनाओं को प्राप्त कर लेता है तथा भोक्ष के उपाय भी उसे ज्ञात हो जाया करते हैं।

पर्वतो हिमवान्नाम नामधातुविभूषितः।

योजनानां सहस्राणि साशीतिस्वायतो गिरिः॥४६॥

सिद्धचारणसंकीर्णा देवर्थिणसेवितः।

एक हिमवान् नाम वाला परम विशाल पर्वत है जो अनेक प्रकार की महा मूल्यवान् धातुओं से विभूषित है। यह पर्वत

अस्यो हजार गोजन के विस्तार में फैला हुआ है। यह पर्वत सिद्धों और चारणों से संकीर्ण है और देवर्पिण्डि भी इसका सेवन किया करते हैं।

तत्र पुष्करिणी रथ्या सुषुमा नाम नामतः॥४७॥

तत्र गत्वा द्विजो विद्वान्द्रहहत्यां विमुच्छति।

श्राद्धं भवति चाक्षयं तत्र दत्तं महोदयम्॥४८॥

तारयेद्य पितॄन्सम्बद्धश पूर्वान्दशापरान्।

सर्वत्र हिमवान् पुण्यो गंगा पुण्या समंततः॥४९॥

बहाँ पर एक अतीव रमणीय पुष्करिणी है जिसका नाम तो सुषुमा है। बहाँ पर विद्वान् द्विज जाकर द्रहहत्या के पाप से भी छूट जाता है। बहाँ पर किया हुआ श्राद्ध अक्षय होता है तथा दान देना महान् उत्तिकारक होता है। बहाँ श्राद्ध करने वाला पुण्य अपने से पहले के दस और बाद के भी दस वंशजों को तार देता है। जैसे हिमवान् गिरि सर्वत्र महान् पुण्यशाली है उस तरह उसमें भागीरथी गंगा भी सभी ओर से पुण्यमयी है।

नद्यः समुद्रगाः पुण्याः समुद्राण्य विशेषतः।

बद्यांश्रमपासाद्य मुच्यते सर्वकिल्बिषान्॥५०॥

तत्र नारायणो देवो नरेणास्ते सनातनः।

अक्षयं तत्र दानं स्वाच्छाददानादिकञ्च यत्॥५१॥

महादेवश्चिंत्य तीर्थं पावनं तदिशेषतः।

तारयेद्य पितॄन्सम्बद्धत्वा श्राद्धं समाहितः॥५२॥

समुद्र की ओर जाने वाली सभी नदियाँ परम पुण्यमयी हैं और समुद्र तो विशेषरूप से पुण्यशाली है। बदरिकाश्रम में पहुँचकर मनुष्य सभी प्रकार के यापों से मुक्त हो जाता है। उस धाम में साक्षात् सनातन देव श्रीनारायण नर के साथ विराजमान हैं। उस धाम में जो भी दान किया जाता है और श्राद्ध आदि किये जाते हैं वे सभी अक्षय फल देने वाला होता है। यह महादेव का अतिप्रिय तीर्थ विशेषरूप से पावन है। बहाँ पर परम समाहित होकर यदि कोई श्राद्ध देता है तो वह अपने सभी पितॄगांगों का उद्धार कर देता है।

देवदारुवनं पुण्यं सिद्धगच्छवर्सेवितम्।

महता देवदेवेन तत्र दत्तं महेश्वरम्॥५३॥

योहित्यला मुनीन्सवर्णन्समस्तैः सप्तपूजितः।

प्रसन्नो भगवानीशो पुनीन्द्रान् प्राह भावितान्॥५४॥

इहाश्रमधरे रथ्ये निविष्वद्व सर्वदा।

मद्वावनासमायुक्तास्ततः सिद्धिमवाप्यथा॥५५॥

यत्र मापर्चयनीह लोके धर्मपरायणाः।

तेषां ददामि परमं गाणपत्यं हि शाश्वतम्॥५६॥

देवदारु नामक एक वन है जिसमें सिद्ध और गन्धवों के समुदाय रहा करते हैं। बहाँ पर महान् देवों के भी देव ने महेश्वर दिया है। समस्त महामुनीन्द्रों के द्वारा भली-भीति पूजन किये गये देव ने उन समस्त मुनिगणों को मोहित करके भगवान् परम प्रसन्न हुए थे तथा ईश ने उन भाव भावित मुनिगणों से कहा था कि आप सब लोग इस परम श्रेष्ठ सुरक्ष्य आश्रम में सर्वदा निवास करेंगे। मेरी भावना से समायुक्त होकर ही आप लोग सिद्धि को प्राप्त करेंगे। जहाँ पर धर्मपरायण होकर जो मेरी पूजा किया करते हैं उनको मैं परम शाश्वत गाणपत्य पद प्रदान किया करता हूँ।

अत्र नित्यं वसिष्यामि सह नारायणेन तु।

प्राणान्हि नरगत्यकल्पा न भूयो जन्म चाप्यात्॥५७॥

संस्मरनि च ये तीर्थं देशान्तरगता जनाः।

तेषाङ्गु सर्वपापानि नाशयामि द्विजोत्तमाः॥५८॥

श्राद्धं दानं तपो होमः पिण्डनिवृपणं तत्वा।

व्यानं जप्त्यु नियमः सर्वप्रताक्षयं कृतम्॥५९॥

मैं यहाँ सदा भगवान् नारायण के साथ बास करूँगा। जो मनुष्य यहाँ निवास करते हुए अपने प्राणों को त्याग करते हैं वे फिर दूसरी बार इस संसार में जन्म ग्रहण नहीं करेंगा। जो अन्य देशों में निवास करने वाले भी मनुष्य इस तीर्थ का संस्मरण किया करेंगे हैं, हे द्विजोत्तमो! उनके भी सारे पापों को मैं नष्ट कर देता हूँ। यहाँ पर किये हुए श्राद्ध-दान-तप-होम तथा पिण्डदान, ध्यान-जाप-नियम सभी कुछ अक्षय जाया करता है।

तस्मात्सर्वप्रवलेन द्रष्टव्यं हि द्विजातिभिः।

देवादारुवनं पुण्यं महोदेवनिषेवितम्॥५०॥

योऽनुभुते महादेवो विष्णुर्या पुरुषोत्तमः।

तत्र सत्रिग्निः गंगा तीर्थान्वयतनानि च॥५१॥

इसीलिये सब प्रकार से प्रयत्नपूर्वक द्विजातियों को इस तीर्थ का दर्शन अवश्य ही करना चाहिए। यह देव दारुनन परम पुण्यमय है और महादेव के द्वारा निषेवित है। यहाँ पर ईश्वर, महादेव अथवा भगवान् पुरुषोत्तम विष्णु स्वयं विराजमान हैं। बहाँ पर गंगाजी अन्य तीर्थ आयतन समीप में स्थित हैं।

इति श्रीकृप्यपुराणे उत्तराद्यु तीर्थवर्णनं नाम

सप्तशिष्ठोऽव्यायः॥५७॥

अष्टृत्रिंशोऽध्यायः
(देवदारुवन में प्रवेश)

ऋषय ऊरुः:

कर्वं दारुवनप्राप्तो भगवान्गोदृपञ्चजः।
मोहयामास विप्रेन्द्रान्मृत तद्कुमर्हसि॥१॥

ऋषियों ने कहा—मूतजी! दारुवन में प्रवेश करते हुए भगवान् तृष्णभञ्ज ने ब्राह्मणों को कैसे मोहित किया था यह बताने को कृपा करें।

मूत उवाच

पुरा दारुवने रथे देवसिद्धुनिषेविते।
स पुत्रादारतनयास्तप्त्वोरुः सहस्रशः॥२॥

प्रवृत्तं विविष्वं कर्म प्रकुर्वाणा यशाविष्य।
यजन्ति विविष्वैर्ज्ञैस्तपत्ति च महर्षयः॥३॥

मूतजी बोले— देवों तथा सिद्धों द्वारा सेवित रमणीय दारुवन में हजारों मुनियों ने प्राचीन काल में अपने पुत्र और पत्री के साथ रहते हुए तपस्या की थी। वे महर्षि प्रवृत्ति मार्ग से युक्त विविष्व प्रकार के कर्मों और अनेक प्रकार के वज्ञों द्वारा परमात्मा का पूजन करते थे।

तेषां प्रवृत्तिविन्यसत्येताप्य शूलभृत।
व्याख्यायव्यन्मदा दोषं यत्यौ दारुवनं हरः॥४॥

इस प्रकार उनका चित्र प्रवृत्तिमार्गीय कर्मों में विन्यस्त था, अतः उन मुनियों के दोषों को बताने के लिये शूलधारी भगवान् जंकर देवदारु वन में गये।

कृत्वा विश्वगुरुं विष्णुं पार्श्वे देवो महेश्वरः।
यत्यौ निवृत्तिविज्ञानस्यापनार्थं शङ्कुर॥५॥

विश्वगुरु भगवान् विष्णु को अपने साथ लेकर देव महेश्वर जंकर निवृत्तिमार्ग का ज्ञान कराने के लिए वहाँ गये थे।

आस्थाय विपुलञ्जुष जनं विश्विवत्सरम्।
लीलालासो महाबाहुः पीनांगश्चासुलोचनः॥६॥

चापोकरवपुः श्रीपान्यूर्णचन्द्रनिभाननः।
पत्तमात्मगमनो दिव्यासा जगदीश्वरः॥७॥

जातरूपपर्यां मालां सर्वरत्नैरलंकृताम्।
द्यनानो भगवानीशः समाप्तच्छ्रुति सम्प्रितः॥८॥

तब उन्होंने बीस वर्ष की आयु के पुरुष का भव्य नेष्ठा भारण किया था। अपनी लीला से सुन्दर, महाबाहु,

पुष्टशरीर, सुन्दर नयनयुक्त, सुवर्ण के वर्ण जैसे शरीरधारी, श्रीमान्, पूर्णिमा के चन्द्र की भौति मुखमण्डल वाले, मत हाथी की गति वाले, दिग्घवर थे। वे विविष्व रत्नों से जटित स्वर्णमाला को धारण करके मंद हास्य करते हुए भगवान् महादेव वहाँ जा रहे थे।

योऽनन्तः: पुरुषो योनिलोकानामव्ययो हरिः।

स्त्रीवेषं विष्णुरास्थाय सोऽनुगच्छति शूलिनम्॥९॥

सप्तर्णीचन्द्रवदनं पीनोप्रतपयोदयम्।

शुचिमितं सुप्रसन्नं रणन्त्रुपुरकद्यम्॥१०॥

सुपीतवसनं दिव्यं श्यामलं चारुलोचनम्।

उदारहंसगमनं विलासि सुमनोहरम्॥११॥

और जो अनन्त, लोकसंषु अविनाशी पुरुष हरि विष्णु थे, वे स्त्रों का रूप धारण करके महादेव के पीछे-पीछे चल रहे थे। स्त्रीवेशधारी विष्णु का मुखमण्डल पूर्णचन्द्र के समान सुन्दर था। स्तनयुगल स्थूल और उत्तम थे। पवित्र मंद हास्ययुक्त होने से उनका मुख अति प्रसन्न था और पैरों में बंधे नुपुर से ध्वनि निकल रही थी। वह पीत वस्त्र धारण किये हुए अलौकिक, श्यामल और सुन्दर नेत्रों वाली थी। उनकी चाल उत्तम हंस के समान थी। वह विलासयुक्त होने से अति मनोहर लग रही थीं।

एवं स भगवानीशो देवदारुवनं हरः।

चचार हरिणा सार्द्धं मायया मोहयञ्जगत्॥१२॥

दृश्य चरन्ते विशेषं तत्र तत्र पिनाकिनम्।

पायया मोहिता नार्यो देवदेवं समन्वयुः॥१३॥

इस प्रकार महादेव अपनी माया से संसार को मोहित करके (स्त्रीरूपधारी) विष्णु के साथ देवदारु वन में धूमने लगे। उन विशेषक धूमने लगे। उनकी इधर-उधर धूमते देख कर वहाँ की स्त्रियाँ भी माया से मोहित होकर देवाधिदेव के पीछे-पीछे जाने लगी।

विश्वसामरणः: सर्वास्त्यक्त्वा लज्जां पतिद्रवताः।

सहैव तेन कामानीं विलासिन्यञ्जगन्ति हि॥१४॥

उनमें कुछ पतिद्रवता नारियाँ भी सर्व लक्षा त्यागकर अपने वस्त्र तथा आभूषणों के अस्त-व्यस्त विशेषता कामाते और विलासिनी होती हुई शिव के साथ धूमने लगी।

ऋषीणो पुत्रका ये स्त्र्युवानो जितमानसाः।

अन्यागमन्हृषीकेशं सर्वं कामप्रपीडिताः॥१५॥

ऋग्यों के जो जितेन्द्रिय युवा पुत्र थे, वे भी तत्काल कामातुर होकर, स्त्रीरूपधारी भगवान् विष्णु के पीछे-पीछे चलने लगे।

गायनि नृत्यनि विलासयुक्ता

नारीणणा नायकमेकपीशप्।

दृष्टा सप्तलीकमतीवकान्-

पिष्टं तथालिङ्गितपाचरनिता॥ १६॥

इस प्रकार वे स्त्रियों विलासिनो होकर अद्वितीय नायक परमेश्वर का हो गान करने लगे और नाचने लगे। चाहने योग्य पर्वीसहित अति सुन्दर महादेव को देखकर कभी-कभी आलिंगन भी करती थीं।

ते सश्रिपत्य स्मितपाचरनि

गायनि गीतानि मुनीशपुत्राः।

आलोक्य पद्मापतिमादिदेवं

तुभागमन्ये विचरनि तेन॥ १७॥

वे मुनिपुत्र भी (स्त्रीरूपधारी) लक्ष्योपति आदिदेव को देखकर (उन्हें सचमुच स्त्री जानकर) पाँव डगामगाने लगे और मन्दहास्य करते हुए गीत गाने लगे। कुछ अन्य मुनि पुत्र तो उनके साथ भूविलास करने लगे और उनके साथ चिचरण लगे।

आशापैकापापि वासुदेवो

मायी मुरारिमनसि प्रविष्टः।

करोति भोगान्वनसि प्रवृत्तिं

मायानुभूयन इतीव सम्पृक्तः॥ १८॥

उन स्त्रियों तथा उन पुरुषों के मन में प्रविष्ट होकर मायावी मुरारि भगवान् उनके मन में भोगों के प्रति प्रवृत्ति उत्पन्न करने लगे, जैसे वे भोग माया द्वारा अच्छी प्रकार अनुभव किये गये हों।

विभाति विश्वापरविश्वनाथः

सपाश्वरस्त्रीणासन्निविष्टः।

अशेषशक्त्या समयं निविष्टो

श्वैकशक्त्या सह देवदेवः॥ १९॥

इस प्रकार संपूर्ण देवों के और विश के नाथ शंकर भगवान् विष्णु के साथ स्त्रियों के समूह में सञ्चिति हो गये थे। समग्र शक्ति के साथ वहाँ रहते हुए शंकर मानों अपनी अद्वितीय शक्तिस्वरूपा पार्वती के साथ देवेशर महादेव सुशोभित होते हैं।

करोति नित्यं परमं प्रधानं

तथा विस्तुहं पुनरेव भूयः।

यदौ समारुद्धं हरिः स्वभावं

तपीदृशं नाम तपादिदेवम्॥ २०॥

उस समय महादेव (भ्रमणरूप) अतिशय प्रधान कार्य कर रहे थे। इस कारण वे अधिक प्रख्यात हो गये थे। अपनी स्वभाव पर आरुद्ध होकर श्रीविष्णु हरि आदिदेव शंकर का अनुसरण कर रहे थे।

दृष्टा नारीकुलं स्तुं पुत्रानपि च केशवम्।

पोहयन्तं मुनिश्रेष्ठा कोणं सन्दिविरे भूशाम्॥ २१॥

स्त्री-समूह, रुद्र और अपने पुत्रों को तथा केशव विष्णु को परस्पर मोहित करता हुआ देखकर उन श्रेष्ठ मुनियों को अत्यन्त ऋषि हो आया।

अतीतपरमं वाक्यं प्रोचुर्वेवं करपर्हिनम्।

शेषु विविधैर्वाक्यैर्मायया तस्य मोहिताः॥ २२॥

वहाँ मुनियों ने कपर्दिदेव शंकर को बहुत कठोर वचन कहे और वे उन्हीं की माया से मोहित होकर अनेक प्रकार से शाप भी देने लगे।

तपासि तेषां सर्वेषां प्रत्याहृन्यन शंकरे।

यथादित्यप्रतीकाशे तारका नरसि स्थिताः॥ २३॥

परन्तु वे सभी वचन एवं शाप शंकर के आगे निस्तेज हो गये; जैसे आकाश में सूर्य के प्रकाशित होने पर तारागण निस्तेज हो जाते हैं।

तं भ्रत्यं तपसा विश्राः सपेत्य वृषभध्वजम्।

को भवानिति देवेशं पृच्छन्ति स्य विमोहिताः॥ २४॥

सोऽद्वैद्विद्वाद्वानीशस्तप्तुर्मुष्मिहागतः।

इदानीं भार्यया देशं भवद्विरहि सुद्रताः॥ २५॥

इस प्रकार अपना तप तिरस्कृत देखकर मोहित हुए वे मुनिजन वृषभध्वज देवेश के पास आकर उनसे पूछने लगे— 'आप कौन हैं?' तब भगवान् इश ने कहा— सुद्रतो! इस समय आप लोगों के इस स्थान में मैं पर्वीसहित तपस्या करने के लिये आया हूँ।

तस्य ते वाक्यमाकर्ण्य भृगवा मुनिपुङ्गवाः।

ऊर्धुर्गुहीत्वा वसनं त्वक्त्वा भार्या तपश्चर॥ २६॥

उनके उस वाक्य को सुनकर उन भृगु आदि श्रेष्ठ मुनियों ने कहा— (यदि यहाँ रहना चाहते हों, तो) वस्त्र धारणकर, भार्या का परित्याग कर तपस्या करो।

अयोवाच विहस्येषः पिनाकी नीललोहितः।
सम्प्रेक्ष्य जगतां योनि पार्श्वस्थङ्गं जनार्दनप्॥ २७॥
कथं भवदिरुदितं स्वपरायायोषणोत्सुकैः।
त्यन्तव्या मप भावेति धर्मज्ञैः शान्तमानसैः॥ २८॥

तथा नीललोहित पिनाकी ईश्वर ने हँसकर समीप में स्थित संसार के मूल कारण जनार्दन की ओर देखकर इस प्रकार कहा— धर्म को जानने वाले तथा शान्त मनवाले और अपनी भार्या के पालन-पोषण में तप्त रहने वाले आप लोगों ने मुझसे ऐसा क्यों कहा कि अपनी स्त्री को छोड़ दो।

ऋषय ऊरुः

व्यभिचारता भार्या: सन्त्याग्या: पतिनेरिताः।
अस्माभिर्भक्ताः सुधगा नेदूशास्त्यागमर्हति॥ २९॥

ऋषियों ने उत्तर दिया— जो स्त्रियां व्यभिचारपरायण हों, दूसरों द्वारा प्रेरित हों, उनका त्याग तो पति द्वारा किया जाना चाहिए। और यह स्त्री टौंक आचरण बाली नहीं लगती अतएव आपको इस सुन्दरी का त्याग करना चाहिये।

महादेव उवाच

न कदाचिदियं विग्रा मनसाप्यन्यपिच्छुति।
नाहमेनापि तथा विमुच्चापि कदाचन॥ ३०॥

महादेव बोले—हे विग्रो! यह स्त्री कभी मन से भी किसी परपुरुष को नहीं चाहती है, इसलिए मैं कभी इसका परित्याग नहीं करता हूँ।

ऋषय ऊरुः

दृष्टा व्यभिचरन्तीह छास्यापि: पुरुषाध्य।
उक्तं हासत्यं भवता गम्यता क्षिप्रमेव हि॥ ३१॥

ऋषियों ने कहा— हे पुरुषाध्य! हमने इसे यहाँ व्यभिचार करते हुए देखा है। तुमने असत्य ही कहा है। अतः शोच्र ही यहाँ से चले जाओ।

एवमुक्तो महादेवः सत्यमेव मयेतितम्।
भवतां प्रतिभा होषा त्यक्त्वासौ विवचार ह॥ ३२॥
सोऽगच्छद्विरिणा सार्द्धं मुनीन्द्रस्य महात्मनः।
वसिष्ठस्याश्रमं पुण्यं भिक्षार्थीं परमेष्वरः॥ ३३॥
दृष्टा सप्तगतं देवं भिक्षापाणपरुच्यती।
वसिष्ठस्य प्रिया भक्त्या प्रत्युदगम्य ननाम तप्त॥ ३४॥

ऋषियों के ऐसा कहने पर महादेव ने कहा— मैंने सत्य ही कहा है। परन्तु आपको यह ऐसी प्रतीत होती है। ऐसा कहकर महादेव वहीं विचरण करने लगे। भिक्षा की इच्छा से वे परमेश्वर विष्णु के साथ मुनिशेष महात्मा वसिष्ठ के पवित्र आश्रम में गये। भिक्षा माँगते हुए देव को आये देखकर वसिष्ठ को प्रिय पत्नी अरुन्धती ने समीप में जाकर उन्हें प्रणाम किया।

प्रकाश्य पदौ विपलं दत्ता चासनमुत्तम्।
सम्प्रेक्ष्य शिथिलं गात्रमधियातहतं ह्रिजैः।
सत्यायामास भैषज्यर्विषणवदना सती॥ ३५॥
घटकार महतीं पूजां प्रार्थयामास भार्या।

वहां (ऋषिपत्नी) अरुन्धती ने (परमेश्वर के) चरणों को धोकर और शुद्ध उत्तम आसन प्रदान किया। ब्राह्मणों के आश्रम से आहत उनके शिथिल शरीर को देखकर वे अत्यन्त खिल हुई सती (अरुन्धती) ने औषधि के उपचार से उनके घावों को भर दिया और भार्या सहित उनकी (परमेश्वर की) महती पूजा की तथा पूछा।

को भवान्तु आश्रामः किमाचारो भवानिति।
उच्यतामाह भगवान्सिद्धानां प्रवरो हहम्॥ ३६॥
यदेत्यन्यङ्गलं शुष्पु भाति ब्रह्मपर्यं सदा।
ऐव देवता महो धारयामि सर्वे तु॥ ३७॥

'आप कौन हैं, कहाँ से आये हैं, आपका आचार क्या है?' यह कहो। तब महादेव ने कहा— 'मैं सिद्धों में श्रेष्ठ हूँ।' और यह जो शुष्प मण्डल सदा ब्रह्मपर्य प्रकाशित हो रहा है वही (स्त्री) मेरे लिए देवतारूप है। इसलिए मैं सदा इसे धारण करता हूँ।

इत्युक्त्वा प्रययौ श्रीमान्मुग्धा पतिव्रताम्।
ताडयांचक्रिं दण्डलोषिष्ठिर्षुषिष्ठिर्जाः॥ ३८॥
दृष्टा वरतां गिरिशो ननं विकृतिलक्षणम्।
प्रोचुरेतद्वल्लङ्घमुत्पाट्य सुदुर्पतेः॥ ३९॥
तानद्वीन्याहायोगी करिष्यार्थीति शंकरः।
युग्माकं मामके लिहे यदि देषोऽभिजायते॥ ४०॥

ऐसा कहकर श्रीमान् शंकर पतिव्रता (अरुन्धती) पर कृपा करके चल पड़े। उस समय ब्रह्मणों ने उन्हें डंडों, ढेलों तथा मुक्कों से मारना शुरू कर दिया। नगन तथा विकृत लक्षणवाले महादेव को इस प्रकार धूमते हुए देखकर मुनियों ने कहा— हे दुर्मति! तुम अपने इस लिङ्ग को उल्लाङ्घ फैको।

तव महायोगी शंकर ने उनसे कहा—यदि आप लोगों को मेरे लिङ्ग के प्रति द्वेष उत्पन्न हो गया हो तो मैं वैसा ही करूँगा।
 उक्तवा तूत्याट्यामास भगवान्मग्नेत्रहा।
 नापश्यंसत्क्षणादीशं केशवं लिङ्गमेव च॥ ४१॥
 तदोत्पाता बभूर्हि लोकानां भयशःसिनेः।
 न राजते महस्तांशुष्ठाचाल पृथिवीं पुनः।
 निष्प्रभाष्य ग्रहाः सर्वे चुक्षुभे च महोदयिः॥ ४२॥

इन्हाँ कहकर भगवेव के नेत्र हरण करने वाले भगवान् ने (अपने) लिङ्ग को उखाड़ दिया। परन्तु वे ब्राह्मण उस समय ईश्वर, केशव और लिङ्ग किसी को भी न देख सके। (वे अदृश्य हो गये)। तभी सब लोगों में भय उत्पन्न करने वाले उपद्रव होने लगे। सहस्रकिरण (सूर्य) का तेज समाप्त हो गया, पृथ्वी कीपने लगी, सभी ग्रह प्रपावहीन हो गये और महासागर में क्षोभ उत्पन्न हो गया।

अपश्यत्यानुसूयात्रे: स्वप्नं भार्या पतिद्रुता।
 कवयामास विप्राणां भयादाकुलितेन्द्रिया॥ ४३॥
 तेजसा भासवन्कृत्स्नं नारायणसहायवान्।
 भिक्षमाणः जिवो नूनं दृष्टेऽस्माकं गृहेविति॥ ४४॥
 तस्या वधनमाकर्ण्य शङ्कमाना महर्षयः।
 सर्वे जग्मुर्पहयोगं ब्रह्माणं विश्वसप्तवप्तम्॥ ४५॥

इधर अत्रि की पत्नी पतिवता अनसूया ने स्वप्न देखा। भय से ज्याकूल नेत्र वाली उन्होंने ब्राह्मणों से (स्वप्न की बात बताते हुए) कहा— निष्प्रय ही हम लोगों के घर में अपने तेज से सम्पूर्ण संसार को ग्रकाशित कर रहे शिव नारायण के साथ भिक्षा माँगते हुए दिखलायी पड़े थे। उनके बचन सुनकर संशक्ति सभी महर्षि जगत् को उत्पन्न करने वाले महायोगी ब्रह्माजी के पास गये।

उपास्यमानपमलैर्योगिभिर्द्विवित्तमैः।
 चतुर्वेदैर्मूलितिपद्धिः सावित्रा सहितं प्रभुषम्॥ ४६॥
 आसीनमासने रथ्ये नानार्थ्यसप्तिवित्ते।
 प्रभासहव्यक्तिलिले ज्ञानेश्वर्यादिसंयुते॥ ४७॥
 विश्वाजमानं वपुषा सम्मितं शुभ्रलोक्यनम्।
 चतुर्मुखं महावाहुं छन्दोमयमज्ज परम्॥ ४८॥
 विलोक्य देववपुषं प्रसन्नवदनं शुचिम्।
 शिरोभिर्द्वरणीं गत्वा तोषयामासुरीम्भरम्॥ ४९॥

वही उन्होंने ब्रह्मज्ञानियों में ब्रेष्ट विशुद्ध चोगिजों द्वारा तथा मूर्तिमान् चारों वेदों द्वारा उपासित होते हुए सावित्री के

साथ प्रभु (ब्रह्मा) को देखा। नाना प्रकार के आकृत्यों से युक्त, हजारों प्रकार की प्रभा से सुशोभित और ज्ञान तथा ऐश्वर्य से युक्त रमणीय आसन पर विराजमान परम रमणीय अग्राकृत दिव्य शरीर के कारण शोभासम्प्रत्र, मंद हास्ययुक्त, उज्ज्वल नेत्रों वाले, महावाहु, छन्दोमय, अजन्मा, प्रसन्नवदन, शुभ एवं ब्रेष्ट चतुर्मुख वेदपुरुष (ब्रह्मा) को देखकर वे (मुनिजन) भूमि पर मस्तक नमाकर ईश्वर की सुन्ति करने लगे।

तात्रसप्रमना देवधुतुर्मूर्तिरुत्तुर्मुखः।

व्याजहार मुनिश्चेष्टः किमागमनकारणम्॥ ५०॥

तत्स्य वृत्तपरिलं ब्रह्मणः परमात्मनः।

ज्ञापयाचक्रिरे सर्वे कृत्वा शिरसि चांजलिम्॥ ५१॥

उससे प्रसन्नमन होकर चतुर्मूर्ति चतुर्मुख देव ने कहा—‘मुनिश्चेष्टो! आपके आने का क्या प्रयोजन है?’ तब सभी मुनियों ने मस्तक पर दो हाथ जोड़कर परमात्मा ब्रह्मा को सम्पूर्ण वृत्तान्त को बतालाया।

ऋषय ऊचुः

काञ्छिहारुवने पुण्यं पुरुषोऽतीवशोभनः।

भार्यया चारुसर्वाङ्गां प्रविष्टे नम्न हि॥ ५२॥

मोहयामास वपुषा नारीणां कुलपीच्छरः।

कन्यकानां प्रिया यस्तु दूष्यामास पुत्रकान्॥ ५३॥

ऋषियों ने कहा—पवित्र दारुवन में अत्यन्त सुन्दर कोई पुरुष सम्पूर्ण सुन्दर अङ्गों वाली अपनी भार्या के साथ नन अवस्था में ही प्रविष्ट हुआ। उस ईश्वर ने अपने शरीर से (हमारी) स्त्रियों के समूह को तथा सभी कन्याओं को मोहित कर दिया और उसकी प्रिया ने (हमारे) सब पुत्रों को (अपने आकर्षण से) दूषित किया।

अस्मापिर्विविधा: शापाः प्रदत्तास्ते पराहताः।

ताडितोऽस्मापिरत्यर्थं लिङ्गं तु विनिषातितम्॥ ५४॥

अनर्हितस्तु भगवान्सभार्यो लिङ्गमेव च।

उत्पाताङ्गाप्तवन् घोराः सर्वभूतपर्यकराः॥ ५५॥

हम लोगों ने उस पुरुष को अनेक प्रकार से शाप दिये, किन्तु वे निष्फल हो गये, तब हम लोगों ने उसे बहुत मारा और उसके लिङ्ग को गिरा दिया, पर तत्काल ही भार्या के साथ भगवान् और लिङ्ग अदृश्य हो गये। तभी से ग्राणियों को भय प्रदान करने वाले भीषण उत्पात होने लगे हैं।

क एव पुरुषो देव भीताः स्मः पुरुषोत्तमः

भवनमेव शरणं प्रपद्मा वयमच्युतः॥५६॥

त्वं हि पेत्सि जगत्प्रसिद्धिक्षिदिह घेष्ठितम्।

अनुप्रहेण युक्तेन तदस्माननुपालय॥५७॥

हे देव पुरुषोत्तम ! वह पुरुष कौन है ? हम लोग भयभीत हो गये हैं। हे अच्युत ! हम सब आपकी शरण में आये हैं। इस संसार में जो कुछ भी चेष्टा होती है, उसे आप अवश्य जानते हैं, इसलिये विशेष ! अनुग्रह कर आप हमारी रक्षा करें।

विज्ञापितो मुनिगणीर्विश्वात्मा कमलोद्देवः।

व्यात्वा देवं त्रिशूलांक कृताङ्गुलिरभाषतः॥५८॥

मुनिगणों के द्वारा इस प्रकार निवेदन किये जाने पर कमल से उत्पन्न विश्वात्मा (ब्रह्म) ने त्रिशूलधारी देव (शंकर) का ध्यान करते हुए हाथ जोड़कर इस प्रकार कहा —

द्वाहोवाच

हा कष्टं भवतामष्टा जातं सर्वार्द्धनाशनम्।

यिग्वले यिक् तपश्चार्या मिथ्यैव भवतामिह॥५९॥

संप्राप्य पुण्यसंस्कारात्रिदीना परमं निधिम्।

उपेक्षितं वृथाचारैर्पद्मिदिह मोहितैः॥६०॥

कांश्वन्ते योगिनो नित्यं यतनो यतयो निधिम्।

यपेव तं सपासाद्य हा भवद्दिरुपेक्षितम्॥६१॥

ब्रह्मा बोले— ओह ! आज आप लोगों को कष्ट है वह समस्त पुरुषाथों का नाश करने वाला है। आपके बल को धिक्कार है, तपश्चार्या को धिक्कार है, आपका जन्म भी मिथ्या ही है। पवित्र संस्कारों और निधियों में परम निधि को प्राप्त कर वृथाचारी आप लोगों ने मोहवश उस निधि की उपेक्षा कर दी, जिसे योगी लोग तथा यत्र करने वाले यति लोग नित्य चाहते हैं। उसी को प्राप्त कर आप लोगों ने उपेक्षा कर दी, यह बहुत ही कष्ट की बात है।

यजनि यज्ञैर्विष्वैर्यत्वात्तेवेद्वादिनः।

यहानिधि सपासाद्य हा भवद्दिरुपेक्षितम्॥६२॥

यमर्चयित्वा सततं विशेषत्वमिदं यमः।

स देवोपेक्षितो दृष्टा नियानं भाव्यवर्जिताः॥६३॥

यस्मिन्सपाहितं दिव्यपैषुर्यं यतदव्यव्यम्।

तपासाद्य निधि दृष्टा हा भवद्दिर्वृथाकृतम्॥६४॥

जिसकी प्राप्ति के लिये वेदज्ञानी अनेक प्रकार के यज्ञों द्वारा यजन करते हैं, वहाँ कष्ट है कि उन महानिधि को

प्राप्तकर भी आप सभी ने उनकी उपेक्षा कर दी। हाय ! जिसमें देवताओं का अक्षय ऐक्षर्य समाहित है, उस अक्षयनिधि को प्राप्तकर आपने उसे व्यर्थ कर दिया।

एष देवो महादेवो विज्ञेयस्तु महेश्वरः।

न तस्य परमं किञ्चित्पदं समप्रभिगच्छते॥६५॥

वे ही देव महादेव महेश्वर हैं, यह आपको जानना चाहिये। इनका परम पद अन्यत्र कुछ भी प्राप्त नहीं किया जा सकता अर्थात् जाना नहीं जा सकता।

देवतानामूर्धीणां वा पितॄणाङ्गापि शाश्वतः।

सहस्रयुगपर्यन्ते प्रलये सर्वदेहिनाप्॥६६॥

संहस्रये भगवान्कालो भूत्वा महेश्वरः।

एष चैव प्रजाः सर्वाः सुज्ञत्येव स्वतेजसा॥६७॥

ये ही सनातन भगवान् महेश्वर कालरूप होकर देवताओं, ऋषियों तथा पितरों और समस्त देहधारियों का हजारों युग-पर्यन्त रहने वाले प्रलयकाल में संहार करते हैं। ये ही अद्वितीय अपने तेज से समस्त प्रजाओं को सुषिट करते हैं।

एष चक्री चक्रवर्तीं श्रीवत्सकृतलक्षणः।

योगी कृतयुगे देवस्वेतायां यज्ञ एव च।

द्वापरे भगवान्कालो धर्मकेतुः कल्पी युगे॥६८॥

वे ही चक्रधारी, चक्रवर्ती तथा श्रीवत्स के चिन्ह को धारण करने वाले हैं। ये ही देव सत्युग में योगी, त्रेता में यज्ञरूप, द्वापर में भगवान्, काल तथा कलियुग में धर्म के संकेत रूप हैं।

स्त्रुत्य मूर्त्यस्तिद्वयोवाभिर्विश्वमिदं ततम्।

तमो द्वामी रजो दृष्टा सत्त्वं विष्णुरिति स्मृतिः॥६९॥

स्त्रुत्य मूर्त्यस्तिद्वयोवाभिर्विश्वमिदं ततम्।
इन्होंने ही इस विश्व को व्याप किया हुआ है। तमोगुण के अधिष्ठाता को अग्नि, रजोगुण के अधिष्ठाता को दृष्टा तथा सत्यगुण के अधिष्ठाता को विष्णु कहा गया है।

मूर्त्यस्ता द्वामी चास्य दिव्यासा च शिवाश्ववा।

यत्र तिष्ठति तद्वाह योगेन तु समन्वितम्॥७०॥

या चास्य पार्वता भार्या भवद्दिर्भिर्मायिता।

स हि नारायणो देवः परमात्मा सनातनः॥७१॥

तस्मात्सर्वमिदं जातं तत्रैव च लयं द्वजेत्।

स एव मोक्षयेत्कृतं स एष च परा गतिः॥७२॥

सहस्रशीर्षा पुरुषः सहस्राशः सहस्रपात्।

एकशृंगो महानात्मा नारायण इति श्रुतिः॥७३॥

इनकी एक दूसरी मूर्ति- दिग्म्बरा, शाश्वत तथा शिवात्मिका कहलाती है। उसी में योग से युक्त परब्रह्म प्रतिष्ठित रहते हैं। जिनको इनके पार्श्वभाग में स्थित भार्या के रूप में जो आपने देखा है, वे ही सनातन परमात्मा नारायण देव हैं। उनसे ही यह सब उत्पन्न है और उनमें ही यह सब लीन भी हो जाता है। वे ही सबको मोहित करते हैं और वे ही परम गति हैं। वे ही नारायण सहस्र शिर वाले, सहस्र नेत्रधारी और सहस्र पाद वाले पुरुष कहे जाते हैं। वे ही एक श्रृंग-रूप महान् आत्मा नारायण हैं। श्रुति भी यही कहती है।

रेतोऽस्य गर्भो भगवानापो माया तनुः प्रभुः।
सूयते विविधैर्यंत्रैर्द्वाहणैर्मोक्षकांश्चिभिः॥७४॥
संहृत्य सकलं विशु कल्पाते पुरुषोत्तमः।
श्रेते योगापृतं पीत्वा यत्र विश्वाः परं पदम्॥७५॥
न जायते न प्रियते वद्युते न च विश्वदृक्।
मूलप्रकृतिरव्यक्तो गीयते वैदिकैरजः॥७६॥

वे भगवान् जलमय शरीर वाले हैं, वही प्रभु नारायण का गर्भ है अर्थात् उनके शरीर में यह वास करता है। धर्म तथा मोक्ष की इच्छा करने वाले ब्रह्माण लोग विविध मनों के द्वारा (उनको) स्तुति करते हैं। कल्पान्त में समस्त विश्व का संहार करने के अनन्तर योगरूप अमृत का पानकर वे पुरुषोत्तम जिस सर्वाधिष्ठान, स्वप्रकाश में शयन करते हैं, वही विष्णु का परम पद है। विश्व के द्रष्टा ये न जन्म लेते हैं, न मरते हैं और न वृद्धि को प्राप्त होते हैं। वैदिक लोग इन्हीं अजन्मा को अव्यक्त मूलप्रकृति कहते हैं।

ततो निश्चायां वृत्तायां सिसृक्षुरखिलं जगत्।
अजनाप्तौ तु तद्वीजं द्विपत्तेष्य घटेष्वरः॥७७॥
तं पां वित्त महात्पानं ब्रह्माणं विश्वतोमुख्यम्।
महातं पुरुषं विश्वमपां गर्भमनुत्पम्॥७८॥
न तं जानीत जनकं मोहितास्तस्य यायवा।
देवदेवं महादेवं भूतानामीश्वरं हरम्॥७९॥

जब यह प्रलयरूपी रात्रि के समाप्त हो जाती है, तब सम्पूर्ण जगत् की सृष्टि की इच्छा से महेश्वर उन बीज को अजन्मा नारायण की नाभि में स्थापित करते हैं। वही बीज रूप में महात्मा, ब्रह्म, सर्वतोमुख, महान् पुरुष हैं। मैं ही विश्वात्मा होने से अप् का गर्भरूप सर्वोत्तम देव हूँ। अनन्त ब्रह्माण्ड के बीज को मेरे में स्थापित करने वाले उन परमपिता देवाधिपति महादेव हर को आप लोग उनकी माया से मोहित होने के कारण नहीं जान सके।

एव देवो महादेवो ब्रह्मादिर्भगवान्हरः।

विष्णुना सह संयुक्तः करोति विकरोति च॥८०॥

न तस्य विद्यते कार्यं न तस्माहिते परम्।

स वेदान् प्रददौ पूर्वं योगमायातनुर्पयम्॥८१॥

स माया मायाया सर्वं करोति विकरोति च।

तपेव मुक्तये ज्ञात्वा द्रव्यां शरणं शिवम्॥८२॥

वे ही अनादि भगवान् महादेव शंकर विष्णु के साथ संयुक्त होकर सृष्टि को रचते हैं और उसका विकार (संहार) भी करते हैं। फिर भी उनका कोई कार्य नहीं है और परन्तु उनसे भिन्न भी कुछ नहीं है। योगमाया का स्वरूप धारण करके उन्होंने पूर्वकाल में मुझे वेद प्रदान किया। वे मायी (अपनी) माया द्वारा सभी को सृष्टि और संहार करते हैं। उन्हीं को ही मुक्ति का मूल जानकर उन शिव की शरण में आपको जाना चाहिये।

इतीरिता भगवता भरीचिप्रमुखा विभुम्।

प्रणम्य देवं ब्रह्माणं पृच्छन्ति स्म समाहिताः॥८३॥

भगवान् (ब्रह्म) के ऐसा कहने पर भरीचि आदि प्रमुख ऋषियों ने विभु ब्रह्मदेव को प्रणाम कर अत्यन्त दुःखित होकर उनसे पूछा—

इति श्रीकूर्मपुराणे उत्तराद्वै अष्टविंशोऽध्यायः॥३८॥

उनचत्वारिंशोऽध्यायः

(देवदारुवन में प्रवेश)

पुनर्य ऊः-

कर्यं पश्येष म देवं पुनरेव पिनाकिनम्।

दूहि विश्वामरेशान त्राता त्वं शरणैषिणाम्॥१॥

मुनिजन योले— समस्त देवों के ईश्वर! उस पिनाकधारी देव का दर्शन हम पुनः कैसे कर पायेंगे, आप हमें बतायें। उनकी शरण चाहने वाले हमारे आप रक्षक हैं।

ब्रह्मोवाच

यददृष्टं भवता तस्य लिङ्गं भुवि निषातितम्।

तस्मिल्लक्ष्मनुकृतीशस्य कृत्वा लिङ्गमनुत्पम्॥२॥

पूजयत्वे सप्तलीकाः सादरं पुत्रसंयुताः।

वैदिकैरेव नियमैर्विविष्यैर्द्वाह्यारिणः॥३॥

पितामह ने कहा—पृथ्वी पर गिराये गये महेश्वर के जिस लिङ्ग को आप लोगों ने देखा था, उसीके जैसा ही एक श्रेष्ठ लिङ्ग बनाकर सप्तलीक तथा पुत्रों सहित आदरपूर्वक विविध आप लोग उसकी पूजा करें और वैदिकनियमों के अनुसार ब्रह्मचर्य का पालन करते रहें।

संस्थाप्य शांकरैर्पौत्रैर्हर्ग्यजुः साम्यसंधौः।
तपः परं समास्याय गृणनाः शतरुद्रियम्॥४॥
समाहिताः पूजयक्षं सपुत्राः सह वन्युभिः।
सर्वे प्राङ्गलयो भूत्वा शूलपाणिं प्रपाण्यात्॥५॥
ततो द्रक्षय देवेशं दुर्दर्शमकृतात्मपिः।
यं दृष्टा सर्वमज्ञानमर्पण्डु प्रणश्यति॥६॥

ऋग्वेद, यजुर्वेद तथा सामवेद में कहे गये शंकर के मन्त्रों द्वारा (लिङ्ग की) स्वापना कर परम तप का आश्रय लेकर, शतरुद्रिय स्तोत्र का जप करते हुए समाहित होकर वन्युओं तथा पुत्रोंसहित आप सभी लोग हाथ जोड़कर शूलपाणि की शरण में जायें। तब आप लोग अकृतात्माओं (अवशी) के लिये दुर्दर्श उन देवेश्वर का दर्शन करेंगे, जिनको देख लेने पर सम्पूर्ण अज्ञान और अशर्म दूर हो जाता है।

ततः प्रणाम्य वारदं द्रह्माणमप्मितीजसप्।
जग्मुः संहृष्टमनसो देवदारुवनं पुनः॥७॥
आराधयितुपारक्षा द्रह्माण कवितं यथा।
अज्ञानन्तः परं भावं वीतरागा विप्रत्सरा॥८॥
स्थणिदलेषु विचित्रेषु पर्वतानां गुहामु च।
नदीनाञ्च विविक्तेषु पुलिनेषु शुभेषु च॥९॥

तब अमित तेजस्वी वरदाता ब्रह्मा को प्रणामकर प्रसन्न मन वाले होकर वे सभी मुनिगण पुनः देवदारु वन की ओर चले गये और वहां जाकर जैसा ब्रह्माजी ने कहा था, वैसे ही शिव की आराधना प्रारम्भ कर दी। यद्यपि वे परम देव को नहीं जानते थे फिर भी वे महर्षि राग एवं मात्सर्य से रहते थे। उनमें कुछ अद्भुत सप्ताष्ट प्रदेशों में, पर्वतों की गुफाओं तथा एकान्न नदियों के सुन्दर किनारों स्थित थे।

शैवालभोजनाः केचित्केचिदनर्जलेश्याः।
केचिदप्रावकाशास्तु पादांगुष्ठे हृषिष्ठिताः॥१०॥

कुछ शैवाल का भोजी, कुछ जल के भीतर शयन की मुद्रा में स्थित, तथा कुछ लोग खुले आकाश के नीचे पैर के अँगूठे के अग्रभाग पर स्थित होकर श्रीशंकर की आराधना में दत्तचित हो गये।

दनोलूखलिनस्वन्ये हाश्मकृद्ग्रासत्या परे।

शाकपर्णाशनाः केचित्संप्रक्षाला मरीचिपाः॥ ११॥

वृक्षपूलनिकेताञ्छ शिलाशव्यासत्यापरे।

कालं नद्यन्ति तपसा पूजयन्तो महेश्वरम्॥ १२॥

कुछ तनोलूखली अर्थात् दौतों के ही द्वारा अनाज को बिना पकाये खाने वाले थे, कुछ दूसरे पत्थर पर ही अन्न को कूटकर खा लेते थे। कुछ शाक तथा पत्तों को ही अच्छी प्रकार धोकर भोजन करते थे, कुछ मुनि सूर्य-किरणों का ही पान कर जीवित रहते थे। कुछ वृक्ष के नीचे रहते थे, दूसरे शिला की शव्या पर ही शयन करते थे। इस प्रकार तपस्या (विविध के) द्वारा महेश्वर को पूजा करते हुए वे (मुनिजन) समय व्यतीत कर रहे थे।

ततस्तोषो प्रसादार्थे प्रपत्रार्तिहो हरः।

चकार भगवान्दुर्दिव वैष्ययन् वृषभध्वजः॥ १३॥

देवः कृत्युगे हास्मित्युगे हिष्पवतः शुभे।

देवदारुवनं प्राप्तः प्रसन्नः परमेश्वरः॥ १४॥

भस्मयाण्डुरदिव्यांगो नमो विकृतलक्षणः।

उल्मूकव्यशहस्तङ्ग रक्तपिंगललोचनः॥ १५॥

तब (मुनियों को इस प्रकार शरणागत देखकर) शरणागतों के दुखहर्ता भगवान् वृषभध्वज शंकर ने उन पर कृपा करने के लिए उन्हें उनमें ज्ञान देने का निश्चय किया। ऐसा सोचकर प्रसन्न हुए परमेश्वर देव शंकर सत्ययुग में हिमालय के इस शुभ शिखर पर स्थित देवदारु वन में पुनः आये। उनके सारे अङ्ग भस्म से लिप्त होने के कारण श्वेतवर्ण के थे, वे नम्रलूप थे तथा विकृत लक्षणवाले लगते थे। उनके हाथ में डल्मुक (जलती लकड़ी) थी, और उनके नेत्र लाल तथा पिंगल वर्ण के थे।

क्वचिच हस्ते रीढं क्वचिचिवयति विस्मितः।

क्वचिच्छ्रृद्धयति शृङ्गारी क्वचिच्छ्रृद्धयति मुहुर्मुहुः॥ १६॥

कभी वे रीढ़रूप में हैंसते, कभी विस्मित होकर गाते, कभी शृङ्गारपूर्वक नृत्य करने लगते और कभी बार-बार रोने की आवाज करते थे।

आप्रमे हाटे भिष्मर्याचते च पुनः पुनः॥

मायां कृत्वात्मनो रूपं देवस्तद्वन्मागतः॥ १७॥

कृत्वा गिरिमुतां गौरीं पर्वते देवः पिनाकश्च।

सा च पूर्ववहेषी देवदारुवनं गता॥ १८॥

(ऐसी माया रचकर) महादेव आश्रम में भिक्षुरूप में शूमते थे और बार-बार भिक्षा माँगने लगे। इस प्रकार अपना मायामय रूप बनाकर ने देव (शंकर) उस (देवदारु) वन में विचलने लगे। उन पिनाकधारी देव ने पर्वतपुत्री गौरी को अपने पार्श्वभाग में कर लिया था। वह देवेश्वरी पूर्व के समान ही देवदारु वन में महादेव के गयी थीं।

दृष्टा समागते देवं देव्या सह कपर्हिनम्।
प्रणेषुः शिरसा भूमौ तोष्यामासुरेष्वरम्॥१९॥
वैदिकैविविधैर्यज्ञैस्तोत्रैमहिष्मैः शुभैः।
अथर्वशिरसा चान्ये स्त्राईरर्घ्यभवम्॥२०॥

इस प्रकार जटाजूटधारी शंकर को देवी के साथ आया देखकर उन मुनियों ने भूमि में सिर रखकर ईश्वर को प्रणाम किया और स्नुति की। वे विविध वैदिक मन्त्रों, शुभ माहेश्वर मूर्त्तों, अथर्वशिरस् तथा अन्य स्त्रुत्यान्ती वेदमन्त्रों से शंकर की स्नुति करने लगे।

नमो देवाङ्गिदेवाय महादेवाय ते नमः।
ऋष्यकाय नपमस्तुत्यं त्रिशूलवरघारिणे॥२१॥
नमो दिव्यासम्भवे तुभ्यं विकृताय यिनाकिने।
सर्वप्रणातदेवाय स्वयमप्रणातात्पने॥२२॥
अन्तकानाकृते तुभ्यं सर्वसंहरणाय च।
नपोऽस्तु नृत्यशीलाय नमो भैरवरूपिणे॥२३॥
नरनारीश्वरीराय योगिनां गुरवे नमः।
नमो दानाय शांताय तापसाय हराय च॥२४॥
विपीषणाय रुद्राय नपस्ते कृतिवाससे।
नपस्ते लेलिहानाय श्रीकण्ठाय च ते नमः॥२५॥
अधोरघोररूपाय वापदेवाय वै नमः।
नमः कृनकमालाय देव्याः प्रियकराय च॥२६॥
गङ्गासत्तिलधाराय श्रोभवे परमेष्ठिने।
नमो योगाधिष्ठितये भूताधिष्ठितये नमः॥२७॥

देवों के आदिदेव को नमस्कार है। महादेव को नमस्कार है। ब्रेष्ट त्रिशूल धारण करने वाले, त्रिनेत्रधारी को नमस्कार है। दिगम्बर, (स्वेच्छा से) विकृत (रूप धारण करने वाले) तथा पिनाकधारी को नमस्कार है। समस्त प्रणतजनों के आश्रय तथा स्वयं निराश्रय (अप्रणत) को नमस्कार है। अन्त करने वाले (यम) का भी अन्त करने वाले और सबका संहार करने वाले आपको नमस्कार है। नृत्यपरायण और भैरवरूप आपको नमस्कार है। नर और नारी का शरीर धारण करने वाले एवं योगियों के गुरु आपको नमस्कार है।

दाना, शाना, तापस (विरक) तथा हर को नमस्कार है। अत्यन्त भीषण, मृगचर्मधारी रुद्र को नमस्कार है। लेलिहान (बार-बार जिह्वा से चाटने वाले) को को नमस्कार है, शितिकण्ठ (नीले कंठ वाले) को नमस्कार है। अधोर तथा घोर रूपवाले वामदेव को नमस्कार है। धूते की माला धारण करने वाले और देवी पार्वती का प्रिय करने वाले को नमस्कार है। गङ्गाजल की धारा वाले परमेष्ठी शम्भु को नमस्कार है। योगाधिष्ठित को नमस्कार है तथा ब्रह्माधिष्ठित को नमस्कार है।

प्राणाय च नमस्तुत्यं नमो भस्यांगधारिणे।
नपस्ते हृत्यवाहाय दंष्ट्रे हृत्यरेतसे॥२८॥
द्रह्मण्ड्यु शिरोहत्रे नपस्ते कालरूपिणे।
आगति ते न जानीमो गति नैव च नैव च॥२९॥

प्राणस्वरूप आपको नमस्कार है। भस्म का अङ्गराग लगाने वाले को नमस्कार। हृत्यवाह, दंष्ट्रे तथा बहिरेता आपको नमस्कार है। ब्रह्म के सिर का हरण करने वाले कालरूप को नमस्कार है। न तो हम आपके आगमन को जानते हैं और नहीं गमन को ही जानते हैं।

विश्वेश्वर महादेव योऽसि सोऽसि नमोस्तु ते।
नमः प्रपञ्चनाशाय दात्रे च शुभसंपदाम्॥३०॥
कणलयणये तुभ्यं नमो जुष्टतमाय ते।
नमः कनकपिङ्गाय वारिलिङ्गाय ते नमः॥३१॥

हे विश्वेश्वर! हे महादेव! आप जिस रूप में हैं, उसी रूप में आपको नमस्कार है। प्रमथ गणों के स्वामी तथा शुभ सम्पदा देने वाले को नमस्कार है। हाथ में कपाल धारण करने वाले तथा अत्यन्त सेवित आपको को नमस्कार है। सुवर्ण जैसे पिङ्गल और जलरूप लिङ्ग वाले आपको नमस्कार हैं।

नमो वह्न्यर्कलिङ्गाय ज्ञानलिङ्गाय ते नमः।
नमो भुजंगहाराय कर्णिकारप्रियाय च।
किरीटिने कुण्डलिने कालकालाय ते नमः॥३२॥
वामदेव महादेव देवदेव त्रिलोचन।
क्षम्यतां वल्लतं पोहात्त्वपेव शरणं हि नः॥३३॥

अग्नि, सूर्य तथा ज्ञानरूप लिङ्ग वाले आपको नमस्कार हैं। सर्पों की मालावाले और कनेर का पुष्प जिसको प्रिय है, ऐसे आपको नमस्कार है। किरीटी, कुण्डलधारी करने वाले तथा काल के भी काल आपको नमस्कार हैं। वामदेव! हे

महादेव ! हे देवाधिदेव ! हे क्रिलोचन ! मोहवश हमने जो किया, उसे आप क्षमा करें। हम सभी आपको शरण में हैं।

चरितानि विचित्राणि गुह्यानि गहनानि च।
द्राह्यादीनाङ्ग सर्वेषां दुर्बिज्ञेयो हि शंकरः॥३४॥
अज्ञानाहादि वा ज्ञानात्किञ्चिद्विकृते नः।
तत्सर्वं भगवानेव कुरुते योगमायाया॥३५॥
एवं सुत्वा महादेवं प्रविष्टैरनरात्मयिः।
ऊचुः प्रणाम्य गिरिशं पश्यामस्त्वा यथा पुरा॥३६॥

आपके चरित अद्भुत, गहन तथा गुह्य हैं। इसलिए शंकर! आप ब्रह्मा आदि सभी के लिये दुर्बिज्ञ हैं। जो कोई मनुष्य जानते हुए अथवा अज्ञानवश जो कुछ भी करता है, वह सब आप भगवान् ही अपने योगमाया से करते हैं। इस प्रकार अन्तरात्मा से ईश्वर युक्त हुए मुनियों ने महादेव को स्तुतिकर उनको प्रणाम किया और कहा—हम लोग आपको मूलरूप में देखना चाहते हैं।

तेषां संस्तवपाकार्ण्यं सोष्यः सोष्यविष्णुणः।
स्वयमेव एवं रूपं दर्शयामास शंकरः॥३७॥
तं ते दृष्ट्वा गिरिशं देव्या सह पिनाकिनम्।
यथापूर्वं स्थिता विश्रा: प्रणेमुर्दृष्टमानसाः॥३८॥
तत्से मुनयः सर्वे संस्तूप च महेश्वरम्।
भृवंगिरा वसिष्ठस्तु विश्वामित्रस्तवैव च॥३९॥
गौतमोऽत्रिः सुकेशाङ्ग पुलस्त्यः पुलहः ऋतुः।
परीचिः कश्यपश्चापि संवर्तकमहातपाः।
प्रणाम्य देवदेवेशमिदं वद्यनमद्वृत्वन्॥४०॥

उन महर्षियों की स्तुति को सुनकर चन्द्र का आभूतण धारण करने वाले शंकर ने अपने परम रूप का दर्शन कराया। उन पिनाकधारी गिरीश को देवी (पार्वती) के साथ पूर्वरूप में स्थित देखकर प्रसन्न—मन वाले ब्राह्मणों ने उन्हें प्रणाम किया। तदनन्तर भृगु, अंगिरा, वसिष्ठ तथा विश्वामित्र, गौतम, अत्रि, सुकेश, पुलस्त्य, पुलह, ऋतु, मरीचि, कश्यप तथा संवर्तक आदि महातपस्वी ऋषियों ने महेश्वर को स्तुति कर उन देवदेवेश को प्रणाम करके इस प्रकार कहा—

कथं त्वा देवदेवेश कर्मयोगेन वा प्रभो।
ज्ञानेन वाथ योगेन पूजयामः सदैव हि॥४१॥
केन वा देव मार्गेण संपूज्यो भगवानिह।
किं तत्सेव्यमसेव्यं वा सर्वपेतद्विवीहि नः॥४२॥
देवदेवेश। प्रभो! हम सब किस प्रकार से आपको सदा पूजा करें, कर्मयोग से या ज्ञानयोग से? हे देव, आप

भगवान् किस मार्ग से पूजने योग्य हैं? हम लोगों के लिये क्या सेवनीय है, क्या असेवनीय है, यह सब आप हमें कहें।

श्रीशिव उवाच

एतद्: संप्रवक्ष्यामि गूढं गहनमुनम्।
द्राह्याणा कथितं पूर्वं महादेवे यहर्षयः॥४३॥
श्रीशिव बोले— हे महर्षियों! मैं आप लोगों को यह उनम और गम्भीर रहस्य बताता हूँ। पूर्वकाल में ब्रह्माजी ने मुझ महादेव को बताया था।

सांख्ययोगाद्विद्या ज्ञेयं पुरुषाणां हि साधनम्।
योगेन सहितं सांख्यं पुरुषाणां विपुक्तिदम्॥४४॥
न केवलं हि योगेन दृश्यते पुरुषः परः।
ज्ञाननु केवलं सम्प्रगणवर्गफलप्रदम्॥४५॥
भवतः केवलं योगं समाक्षित्य विपुक्तये।
विहाय सांख्यं विषयलमकुर्वत परिश्रमम्॥४६॥
एतस्मात्कारणाद्विद्या नृणां केवलकर्मणाम्।
आगतोऽहमिमं देशं ज्ञाप्यन्योहसंभवम्॥४७॥
तस्माद्वद्विर्विमलं ज्ञानं कैवल्यसाधनम्।
ज्ञातव्यं हि प्रवत्तेन श्रोतव्यं दृश्यमेव च॥४८॥

मनुष्यों को यह मुक्ति का यह साधन सांख्य तथा योग इस प्रकार दो तरह से जानने योग्य है। वस्तुतः योग सहित सांख्य ही पुरुषों को अवश्य मुक्ति देने वाला है केवल योगमात्र से परमात्मा का दर्शन सम्भव नहीं है परन्तु यदि उस योग के साथ ज्ञान ही तथा वे दोनों मिलकर प्रत्येक मनुष्य को मोक्षरूप फल देने वाले होते हैं। योग का आश्रय लेकर विशेष मुक्ति हेतु परिश्रम में लगे हुए थे इसीलिए आप निष्फल हुए हैं इतना ही नहीं संसाररूपी बन्धन को प्राप्त कर चुके हैं इसलिए हे ब्राह्मणो! केवल कर्म करते हुए आपके मोह से उत्पन्न हुए अज्ञान को बताने के लिए ही मैं आपके इस प्रदेश में आया था और इसी कारण (उपदेश करता हूँ कि) आपको मोक्ष के साधन रूप निर्मल ज्ञान का ही आश्रय करके प्रयत्नपूर्वक उस परमेश्वर का ज्ञान अवश्य सुनना चाहिए और उसी के द्वारा अवश्य दर्शन किए जा सकते हैं।

एकः सर्वत्रगो ह्यात्मा केवलञ्जितमात्रकः।
आनन्दो निर्मलो नित्य एतद्वै सांख्यदर्शनम्॥४९॥
एतदेव परं ज्ञानमय मोक्षोऽनुगीयते।
एतत्कैवल्यमपलं द्राह्यभाव्यष्टि वर्णितः॥५०॥
आश्रित्य चैतत्परं तत्त्विष्टासत्यरायणाः।

पश्यन्ति मां महात्मानो यतयो विश्वपीष्ठरप्॥५१॥

आत्मा सर्वत्र ज्ञापक, विशुद्ध, चिन्मात्र, आनन्द, निर्मल, नित्य तथा एक हैं- यही सांख्य दर्शन है। यही परम ज्ञान है, इसी को यहीं मोक्ष कहा गया है। यही निर्मल मोक्ष है और यही शुद्ध ब्रह्मभाव बताया गया है। इस परम (ज्ञान) को आश्रय करके उसमें ही निष्ठा और उसी के परायण रहते हुए महात्मा तथा यतिजन मुझ विश्वरूप ईश्वर का दर्शन करते हैं।

एतत्तपरं ज्ञानं केवलं सत्त्विरञ्जनप्।

अहं हि वेदो भगवान्मप्य मूर्तिरियं शिवा॥५२॥

ब्रह्मनि साधनानोहं सिद्धये कवितानि तु।

तेषामप्यधिकं ज्ञानं मामकं द्विजपुष्ट्याः॥५३॥

यही वह सत्, निरञ्जन तथा अद्वितीय परम ज्ञान है। मैं ही भगवान् वेद अर्थात् जानने योग्य हूँ और यह शिवा भेदी ही मूर्ति है। श्रेष्ठ ब्राह्मणो! लोक में सिद्धि (मोक्ष) प्राप्ति के लिये अनेक साधन बताये गये हैं, किन्तु उनमें मेरे विषय का ज्ञान सर्वश्रेष्ठ (साधन) है।

ज्ञानयोगरताः शान्ता मामेव शरणं गताः।

ये हि मां भस्मनि सत् व्याप्तिं सततं हृदि॥५४॥

पद्मकितपरा नित्य यतयः क्षीणकल्पयाः।

नाशयाम्यचिरातेषां योरं संसारगद्धरप्॥५५॥

ज्ञानयोग में परायण, शान्त और मेरे ही शरण में आये हुए जो लोग शरीर पर भस्म लगाकर हृदय में निरन्तर भेरा ही ध्यान करते हैं। ये यतिजन नित्य मेरो परम भक्ति में तत्पर हैं, अतः पापों से रहित होते हैं, (इसलिए) उन लोगों के घोर संसार रूपी सागर को मैं शीघ्र ही नष्ट कर देता हूँ।

निर्मितं हि पद्या पूर्वं द्वातं पाशुपतं शुभम्।

गुह्यादगुह्यतर्पं सूक्ष्मं वेदसारं विमुक्तये॥५६॥

प्रशान्तः संयतपना भस्मोद्गुलितविग्रहः।

ब्रह्मचर्यरतो नमो द्वातं पाशुपतं चरेत्॥५७॥

मैंने मुक्ति के लिए पूर्व ही पाशुपत-ब्रत का निर्माण किया है। यह अतिशय गोपनीय, सूक्ष्म और वेदों का साररूप है। मनुष्य को प्रशान्त चित्त, मन को संयमित करके तथा भस्म से शरीर को धूसरित करके, ब्रह्मचर्यपरायण होते हुए नग्नावस्था में इस पाशुपत-ब्रत का पालन करना चाहिये।

यदा कौपीनवसनः स्यादेकवसनो मुनिः।

वेदाभ्यासरतो विद्वाभ्यायेत्पशुपतिं शिवप्॥५८॥

एष पाशुपतो योगः सेवनीयो मुमुक्षुभिः।

तस्मिन्स्वतंसु पठितं निष्कामैरिति हि श्रुतम्॥५९॥

बीतरागभयक्रोधा पञ्चया मापुषाश्रिताः।

बह्वोऽनेन योगेन पूता पद्मावमागताः॥६०॥

अथवा कौपीन या एक वस्त्र धारणकर विद्वान् मुनि को वेदाभ्यास में रत रहते हुए पशुपति शिव का सदा ध्यान करना चाहिये। यह पाशुपत योग मोक्ष चाहने वालों द्वारा सेवनीय है— ऐसा श्रुति का कथन है। राग, भय तथा क्रोध से रहित, भेरा ही आश्रय ग्रहण करने वाले और मुझ में ही मन वाले बहुत से (भक्तजन) इस योग के द्वारा पवित्र होकर मेरे स्वरूप को ग्रास हुए हैं।

अन्यानि चैव शास्त्राणि लोकेऽस्मिन्मोहनानि तु।

वेदवादविरुद्धानि पर्वैव कवितानि तु॥६१॥

वामे पाशुपतं सोमं नाकुलं धैर्य भैरवम्।

असेव्यमेतत्कथितं वेदवाहं तथेतरम्॥६२॥

इस संसार में मोह उत्पन्न करने वाले तथा वेदवाद के विरोधी अन्य भी शास्त्र हैं, जो मेरे द्वारा ही कहे गये हैं। इनमें जो वाम, पाशुपत, सोम, नाकुल तथा भैरव (मार्ग) तथा अन्य भी जो वेदवाहा हैं, वे सभी असेवनीय हैं।

वेदमूर्तिरहं विप्रा नान्यशास्त्रार्थविदिभिः।

ज्ञायते पत्स्वरूपं तु पुक्त्वा देवं सनातनम्॥६३॥

स्वापयव्यमिदं मार्गं पूजयत्वं पहेष्वरप्।

ततोऽविराहुरं ज्ञानपुत्पत्स्यति न संशयः॥६४॥

पर्य भक्तिश्च विपुला भवतामस्तु सत्तमाः।

ध्यानपात्रं हि साक्षिण्यं दास्यामि मुनिसत्तमाः॥६५॥

हे ब्राह्मणो! मैं वेदमूर्ति हूँ। अन्य शास्त्रों के अर्थ को जानने वाले लोग सनातन देव विष्णु का त्वाग कर भेर स्वरूप को नहीं जान सकते। अतः इस पाशुपत मार्ग को स्थापना करें, महेश्वर की पूजा करें। ऐसा करने से शीघ्र ही आप लोगों को उत्तम ज्ञान प्राप्त होगा, इसमें संशय नहीं है। श्रेष्ठजनो! आप सब को मुझमें विपुल भक्ति हो। हे श्रेष्ठ मुनियो! ध्यान करने मात्र से मैं आपको अपना सान्निध्य प्रदान करूँगा।

इत्युक्त्वा भगवान्सोमस्तत्रैवान्तर्हितोऽभवत्।

तेऽपि दास्त्वने स्वित्वा ब्रह्मर्थानि स्म शङ्करम्॥६६॥

ब्रह्मर्थरताः शान्ता ज्ञानयोगपरायणाः।

समेत्य ते महात्मानो मुनयो ब्रह्मवादिनः॥६७॥

विचकिरे बहून्वादान्वात्पज्ञानसमाप्त्यान्।

इतना कहकर भगवान् सोम (शंकर) वहाँ पर अन्तर्धान हो गये। वे महर्षि भी शान्तित, ब्रह्मचर्य-परायण तथा ज्ञानयोग-परायण होकर उसी दारुवन में शंकर की पूजा करने लगे। उन ब्रह्मवादी महात्मा मुनियों ने एकत्रित होकर अध्यात्मज्ञान-सम्बन्धी अनेक सिद्धान्तों को बनाया।

किमस्य जगतो मूलपत्त्वा चास्पाक्येय हि॥६८॥

कोऽपि स्यात्सर्वभावानां हेतुर्भूत एव च।

इत्येवं मन्यमानानां व्यानमार्गविलम्बिनाम्।

आविरासीन्महादेवी ततो गिरिवरात्मजा॥६९॥

कोटिसूर्यप्रतीकाशा ज्वालामालासमावृता।

स्वभार्भिर्निर्भलभिः सा पूरवनी नभस्तलम्॥७०॥

इस जगत् का मूल क्या है और हमारा अपना मूल क्या है? सभी भाव पदार्थों कोई हेतु होना चाहिए? वह इंकर ही हो सकता है। इस प्रकार मानने वाले तथा ध्यानमार्ग का अवलम्बन करने वाले उन महर्षियों के समक्ष श्रेष्ठ पर्वत (हिमालय) की पुत्री महादेवी पार्वती प्रकट हुई। वे करोड़ों सूर्य के समान ज्वालामालाओं से समावृत अपनी निर्मल कान्ति से आकाशमण्डल को आपूरित कर रही थीं।

तामन्वपश्यद्गिरिजापेयां

ज्वालासहस्रात्मरसशिखिष्टाम्।

प्रणेषुरेतामखिलेशपत्नी

जाननि चैतत्परमस्य वीजम्॥७१॥

हजारों ज्वालाओं के मध्य प्रतिष्ठित, अतुलनीय पार्वती जी के दर्शन किये। तब मुनियों ने उन सर्वेश्वर की पत्नी पार्वती को प्रणाम किया बयोंकि वे जानते हैं कि वे ही परमेश्वर की मूलशक्ति (वीज) हैं।

अस्माकेषा परमस्य पत्नी

गतिस्तथात्पा गगनापिण्डाना।

पश्यन्त्यथात्पानमिदं च कृत्स्नं

तस्यामर्थैते मुनयः प्रहृष्टाः॥७२॥

यही हमारे परमेश्वर शिव की पत्नी हैं, हमारी गति और आत्मा है। यही आकाश नाम से प्रसिद्ध हैं। इस प्रकार मानते हुए प्रसन्न भन वाले मुनिगण उन्हीं पार्वती में अपनी आत्मा तथा संपूर्ण जगत् को देखने लगे।

निराक्षितास्ते परमेश्वरन्या

तदन्तरे देवमशेषहेतुम्।

पश्यन्ति लभ्युं कविमीशितारं

स्त्रं बहनं पुरुषं पुराणम्॥७३॥

परमेश्वरपत्नी भी उन मुनियों को अच्छी प्रकार देखने लगी अर्थात् उन पर दृष्टि ढाली, तब उस बीच मुनियों ने जगत् के अशेष कारण शाश्वत, ज्ञानी, सब के नियन्ता, रुद्, महान् और पुराण पुरुष अपने परमेश्वर को बहां देखा।

आलोक्य देवीपथं देवमीशं

प्रणेषुरानन्दवापुश्चयम्।

ज्ञानं तदीशं भगवद्वासादा

दापिधर्मौ जन्मविनाशहेतुः॥७४॥

इस प्रकार देवी (पार्वती) तथा देव (शंकर) को देखकर उन्होंने (मुनियों ने) प्रणाम किया और अतिशय आनन्द प्राप्त किया। (तभी) उनमें भगवान् की कृपा से जन्म के विनाश के कारणरूप अर्थात् पुनर्जन्म न कराने वाले इंश्वर-सम्बन्धी ज्ञान प्रकट हुआ।

इयं या सा जगतो योनिरेका

सर्वात्मिका सर्वविद्यापिका च।

माहेश्वरी शक्तिसनादिसिद्धा

व्योपापिण्डानां दिवि राजतीव॥७५॥

(उन्होंने अनुभव किया कि) यही एक देवी जगत् की उत्पत्ति का मूल कारण, सर्वात्मिका, सब का नियन्त्रण करने वाली तथा अनादि काल से सिद्ध माहेश्वरी शक्ति है। यह योग्य नामवाली होने से मानो आकाश-सबके हृदयाकाश में प्रकाशित हो रही हैं।

अस्या महान् परमेष्ठी परस्ता-

माहेश्वरः शिव एकः स ऋः।

चकार विश्वं परशक्तिनिष्ठं

पायापथारुद्ध च देवदेवः॥७६॥

देवाभिदेव महान् परमेष्ठी, पर से भी पर, अद्वितीय रुद्र महेश्वर शिव ने इस परम माहेश्वरी शक्ति में स्थित अपनी माया का आश्रय ग्रहण कर विश्व की सृष्टि की।

एको देवः सर्वभूतेषु गृहो

मायी रुद्रः सकलो निष्कलम्।

स एव देवी न च तद्विभिन्न-

पेतञ्जला द्वाषृत्वं द्रवन्ति॥७७॥

वही एक देव सभी प्राणियों में गृदरूप से अवस्थित हैं। वे मायी (माया के नियन्ता) रुद्र सकल (साकार) तथा

निष्कल (निराकार) हैं। वे ही देवी (रूप) हैं, उनसे भिन्न अन्य कुछ भी नहीं है, ऐसा जानकर अमृतत्व को प्राप्त करता है।

अन्तहितोऽभूद्गणवान्महेशो
देव्या तथा सह देवाधिदेवः।
आराधयनि स्म तमादिदेव
वनौकसस्ते पुररेव रुद्रम्॥७८॥

तदनन्तर देवाधिदेव भगवान् महेश्वर महादेवी के साथ ही अन्तहित हो गये और पुनः बनवासी उन मुनिजन उस परम देव रुद्र की आराधना करने लग गये।

एतद्वः कथितं सर्वं देवदेवस्य चेष्टितम्।
देवदासु ने पूर्वी पुराणे यन्मया श्रुतम्॥७९॥
यः पठेद्वृण्याप्रित्यं मुख्यते सर्वपातकैः।
श्रावयेद्वा द्विजावानान्म याति परमां गतिम्॥८०॥

इस प्रकार पूर्व काल में देवदासु बन में घटित देवाधिदेव का जो वृत्तान्त मैने पुराणों में सुना था, वह आप लोगों को बता दिया। जो इसका नित्य इसका पाठ करता है या श्रवण करता है, वह सभी पापों से मुक्त हो जाता है और जो शान्तचित्त द्विजों को इसे सुनायेगा, वह परम गति को प्राप्त होगा।

इति श्रीकृष्णपुराणे उत्तरार्द्धे देवदासवग्रवेशो नाम
उत्तरवारिशोऽध्यायः॥३९॥

चत्वारिंशोऽध्यायः (नर्मदा नदी का माहात्म्य)

सूत उत्तरार्द्ध

ऐसा पुण्यतमा देवी देवगच्छर्दसेविता।
नर्मदालोकविद्युता तीर्थानामुत्तमा नदी॥१॥
तस्या: भृणुष्वं माहात्म्यं मार्कण्डेयन भाषितम्।
युधिष्ठिराय तु सुभं सर्वपापप्रणाशनम्॥२॥

सूतजो ने कहा—देवों तथा गन्धर्वों द्वारा सेवित यह पुण्यमयी देवी संसार में नर्मदा नाम से विख्यात है तथा नदीरूप में सभी तीर्थों में उत्तम तीर्थ है। महर्षि मार्कण्डेय ने इसके विषय में जो युधिष्ठिर को कहा है, वह सुभ (माहात्म्य) आप लोग सुनें। यह सभी पापों का नाशक है।

युधिष्ठिर उत्तरार्द्ध

श्रुतास्ते विविदा वर्षास्तत्प्रसादाम्बहामुने।
माहात्म्यं च प्रयागस्य तीर्थानि विविदानि च। ३॥
नर्मदा सर्वतीर्थानां मुख्या हि भवतेरिता।
तस्यास्तिवदानीं माहात्म्यं वक्तुमहस्यि सत्तम॥४॥

युधिष्ठिर बोले— हे महामुने! आपकी कृपा से मैने विविध धर्मों को सुना, साथ ही प्रयाग का माहात्म्य और अनेक तीर्थों को भी सुना है। आपने बताया कि सभी तीर्थों में नर्मदा मुख्य है, अतः हे श्रेष्ठ! इस समय आप उन्हीं का माहात्म्य मुझे बतलायें।

मार्कण्डेय उत्तरार्द्ध

नर्मदा सरिता श्रेष्ठा रुद्रदेहाद्विनिःसृता।
तारयेत्सर्वभूतानि स्थावराणि चराणि च॥५॥
नर्मदायास्तु माहात्म्यं पुराणे यन्मया श्रुतम्।
इदानीं तत्त्वव्याप्तिं शृणुवैकमनाः सुभम्॥६॥

मार्कण्डेय बोले— रुद्र के देह से निकली हुई नर्मदा सभी नदियों में श्रेष्ठ हैं। वह चर-अचर सभी प्राणियों का उद्धार करने वाली है। पुराणों में नर्मदा का जो माहात्म्य मैने सुना है, उसे अब बतलाता हूं, आप लोग एकाग्रमन होकर सुनें—

पुण्या कनखले गङ्गा कुरुक्षेत्रे सरस्वती।
प्राये या यदि वारये पुण्या सर्वत्र नर्मदा॥७॥
त्रिभिः सारस्वतं तोयं सामाहायामुनं जलम्।
सद्यः पुनाति गांगेयं दर्शनादेव नर्मदम्॥८॥

गङ्गा कनखल में तथा सरस्वती कुरुक्षेत्र में पवित्र हैं, किन्तु ग्राम अथवा अरण्य में सर्वत्र ही नर्मदा को पवित्र कहा गया है। सरस्वती का जल तीन दिनों तक, यमुना का जल सात दिनों तक तथा गङ्गा जल तत्काल स्नानपान से पवित्र करता है, किन्तु नर्मदा का जल तो दर्शन मात्र से ही पवित्र कर देता है।

कलिङ्गदेशपश्चाद्देवं पवतेऽमरकण्टके।
पुण्या त्रिपु त्रिलोकेणु रमणीया भनोरपा॥९॥
सदेवासुरगच्छाव्याघ्रयस्तु तपोधनाः।
तपस्तत्वा तु राजेन्द्र रिंद्वं तु परमा गताः॥१०॥

तत्र स्नान्वा नरो राजनियपस्तो जितेन्द्रियः।
उषोद्य रजनीमेका कुलानां तारयेच्छतम्॥११॥

कलिङ्ग देश के पीछे आधे भाग में अमरकण्टक पवते पर तीनों लोकों में पवित्र, रमणीय, भनोरप नर्मदा का उद्धम

स्वयल है। हे राजेन्द्र! वहाँ देवताओं सहित अमुरों, गन्धवों, छृष्णियों तथा तपस्वियों ने तप करके परम सिद्धि प्राप्त की है। राजन! मनुष्य वहाँ (नमंदा में) स्नान करके जितेन्द्रिय तथा नियम-परायण रहते हुए एक रात्रि उपवास करता है, तो वह अपने कुल को सौ पीढ़ियों को तार देता है।

योजनानां ज्ञातं साङ्गं श्रूयते सरिदुत्तमा।
विस्तारेण तु राजेन्द्र योजनद्वयमायता॥ १२॥
षष्ठितीर्थसहस्राणि षष्ठिकोट्यस्त्वैव च।
पर्वतस्य समन्वान्तु तिष्ठन्त्यमरकण्टके॥ १३॥
ब्रह्मचारी शुचिर्भूत्वा जितक्षोषो जितेन्द्रियः।
सर्वहिंसानिवृत्तस्तु सर्वभूतहिते रतः॥ १४॥
एवं शुद्धसमाचारो यस्तु प्राणान्परित्यजेत्।
तस्य पुण्यफलं राजवृक्षणुष्वाहितोऽनया॥ १५॥

राजेन्द्र! सुना जाता है कि वह उत्तम नदी सौ योजन से कुछ अधिक लम्बी तथा दो योजन चौड़े विस्तार में फैली है। अमरकण्टक तीर्थ में पर्वत के चारों ओर साठ करोड़ साठ हजार तीर्थ स्थित हैं। हे राजन्! जो ब्रह्मचारी पवित्र होकर ऋषि तथा इन्द्रियों पर विजय प्राप्त कर सभी प्रकार की हिंसाओं से सर्वथा निवृत्त हुआ, सभी प्राणियों के हित में लगा रहता है तथा ऐसे ही सभी पवित्र आचारों से सम्पन्न यहाँ प्राण त्याग करता है, उसे जो पुण्य फल प्राप्त होता है, उसे आप सावधान होकर सुनें।

शतं वर्षसहस्राणि स्वर्गं योदति पाण्डव।
अपारोगणसंकीर्णो दिव्यस्त्रीपरिवारितः॥ १६॥
दिव्यगच्छानुलिप्तश्च दिव्यपुष्पोपशोभितः।
क्रोडते दिव्यलोके तु विष्णुः सह योदते॥ १७॥

हे पाण्डव! वह पुरुष अप्सराओं के समूहों से संकोर्ण तथा चारों ओर दिव्य स्त्रियों से घिरा हुआ स्वर्ग में सौ हजार वर्षों तक आनन्द प्राप्त करता है। वह दिव्य गन्ध (चन्दन) से अनुलिप्त तथा दिव्य पुष्पों से सुशोभित होकर देवलोक में क्रोडा करता है और देवताओं के साथ आनन्द प्राप्त करता है।

ततः स्वर्गात्परिष्ठृष्टो राजा भवति धार्मिकः।
गृहं तु लभते त्रिसी वै नानारलसमन्वितम्॥ १८॥
स्त्रभैर्मणिमयै दिव्यैर्वैदूर्यैर्भूषितम्।
आलेख्यवाहनैः सुपूर्दीसीशतसमन्वितम्॥ १९॥
राजराजेश्वरः श्रीपान्तर्वस्त्रीजनवल्लभः।
जीवेद्वृद्धिशतं साङ्गं तत्र भोगसमन्वितः॥ २०॥

इसके बाद स्वर्ग से च्युत होने पर वह (जन्मान्तर में) धार्मिक राजा होता है और नाना प्रकार के रूपों से युक्त, दिव्य मणिमय स्तम्भों, हीरे एवं वैदूर्यमणि से विभूषित, उत्तम चित्रों तथा बाहनों से अलंकृत और दासी-दास से समन्वित भवन प्राप्त करता है। वह राजराजेश्वर श्रीसम्पत्र, सभी स्त्रियों में प्रियकर तथा भोगों से युक्त होकर वहाँ (पृथ्वी पर) सौ वर्ष से भी अधिक समय तक जीवित रहता है।

अग्निप्रवेशेऽत जले वाष्पवानशने कृते।

अनिवर्त्तिका गतिस्तस्य पवनस्याद्वरे यथा॥ २१॥

(इस तीर्थ में जाकर) अग्निप्रवेश अथवा जल में प्रवेश करने अथवा उपवास करने पर उसे (मृत्यु पश्चात) अपुनरागमन गति प्राप्त होती है, जैसे कि आकाश में पवन की गति (अपुनरावृत) होती है (इसका आशय यह है कि शास्त्रविहित तप के रूप में अग्निप्रवेश आदि तप इस तीर्थ में अक्षय पुण्य देने वाले होते हैं)।

षष्ठिये पर्वततटे सर्वपापविनाशनः।

हुदो जलेश्वरो नाम त्रिषु लोकेषु विश्रुतः॥ २२॥

तत्र पिण्डप्रदानेन सम्बोधापासनकर्मणा।

दशवर्षसहस्राणि तर्पिताः स्वर्णं संशयः॥ २३॥

उस पर्वत के पश्चिमी किनारे पर सभी पापों का नाश करने वाला और तीनों लोकों में प्रसिद्ध जलेश्वर नामका एक हृद (तालाब) है। वहाँ पिण्डप्रदान करने तथा संबोधापासन कर्म करने से दस (हजार) वर्ष तक पितर तुम रहते हैं, इसमें संदेह नहीं।

दक्षिणो नर्मदाकूले कपिलाख्या महानदी।

सरलार्जुनसञ्जन्ना नातिदूरे व्यवस्थिता॥ २४॥

सा तु पुण्या महाभागा त्रिषु लोकेषु विश्रुता।

तत्र कोटिशतं साङ्गं तीर्थानानु युधिष्ठिर॥ २५॥

तस्मिस्तीर्थे तु ये दृक्षाः पतिताः कालपर्ययात्।

नर्मदातोयसंस्पृष्टाते यान्ति परमां गतिम्॥ २६॥

नमंदा के दक्षिणी तट के समीप में ही कपिला नामक महानदी है, जो सरल तथा अजुंग के वृक्षों से घिरी हुई है। वह महाभागा पुण्यमयी नदी तीनों लोकों में विख्यात है। युधिष्ठिर! वहाँ सौ करोड़ से भी अधिक तीर्थ हैं। कालक्रम से जो दृक्ष उस तीर्थ में गिरते हैं, वे नमंदा के जल का स्पर्श करके परम गति को प्राप्त होते हैं।

द्वितीया तु महाभागा विशल्यकरणी शुभा।
तत्र तीर्थं नरः स्नात्वा विशल्यो भवति क्षणात्॥ २७॥
कपिला च विशल्या च श्रूयेते संरितुनमे।
ईश्वरेण पुरा प्रोक्ते लोकानां हितकाम्यया॥ २८॥
अनाशकन्तु यः कुर्यात्स्मिस्तीर्थं नराधिपा।
सर्वपापविशुद्धात्पा रुद्रलोके स गच्छति॥ २९॥
तत्र स्नात्वा नरो राजन्मध्यमेष्टफलं लभेत्।
ये वसन्त्युत्तरे कूले रुद्रलोके वसन्ति ते॥ ३०॥

अन्य महापुण्यदायी शुभ नदी विशल्यकरणी है, उस तीर्थ में स्नानकर मनुष्य तत्क्षण ही सभी ब्राह्मणों या दुःखों से रहित हो जाता है। हे राजश्रेष्ठ! यह आत्म क्षुति है कि कपिला तथा विशल्या नाम की दोनों नदियों प्राणियों का हित करने की इच्छा से ईश्वर द्वारा आदिष्ट है। हे नराधिपति! उस तीर्थ में जो (मरणप्रयत्न) अनशनब्रत करता है, वह सभी यात्रों से मुक्त होकर रुद्रलोक में जाता है। हे राजन्! वहाँ स्नानकर मनुष्य अक्षमेध का फल प्राप्त करता है और जो लोग नर्मदा के उत्तरी तट पर रहते हैं, वे रुद्रलोक में निवास करते हैं।

सरस्वत्याङ्गं गंगायां नर्मदायां युधिष्ठिरा।
सप्तं स्नानञ्च दानं च यथा मे शंकरोऽङ्गवीत्॥ ३१॥
परित्यजति यः प्राणान्पवतेऽपरकण्टके।
वर्षकोटिश्चां सात्रं रुद्रलोके यहीयते॥ ३२॥

हे युधिष्ठिर! गङ्गा, सरस्वती एवं नर्मदा में स्नान करने से और वहाँ दान देने से सम्पान फल मिलता है। जो अमरकण्टक पर्वत पर जाकर प्राण त्याग करता है, वह सौ करोड़ वर्षों से भी अधिक समय तक रुद्रलोक में पूजित होता है।

नर्मदायां जलं पुण्यं ऐनोर्मि सफलीकृतम्।
पवित्रं शिरसा शूल्वा सर्वपापैः प्रपृष्यते॥ ३३॥
नर्मदा सर्वतः पुण्या द्रहाहत्यापहारिणी।
अहोरात्रोपवासेन मुच्यते द्रहाहत्याया॥ ३४॥
नर्मदा का जल अति पवित्र तथा ऐन और तरङ्गों से सुशोभित है। उस पवित्र जल को मास्तक पर धारण करने पर मनुष्य सभी यात्रों से मुक्त हो जाता है। नर्मदा सभी प्रकार से पवित्र और द्रहाहत्या को दूर करने वाली है। वहाँ एक अहोरात्र उपवास करने से द्रहाहत्या के पाप से मुक्त हो जाता है।
जालेश्वरं तीर्थवरं सर्वपापप्रणाशनम्।
तत्र गत्वा नियमवान्सर्वकामाल्लभेत्रः॥ ३५॥

चन्द्रसूर्योपरागे च गत्वा ह्यमरकण्टकम्।
अष्टपेत्यादशगुणं पुण्यमानोति पानवः॥ ३६॥
वहाँ जलेश्वर नाम का श्रेष्ठ तीर्थ सभी यात्रों को नष्ट करने वाला है। इससे वहाँ जाकर नियमपूर्वक रहने वाला मनुष्य सभी कामनाओं को प्राप्त कर लेता है। चन्द्र तथा सूर्य ग्रहण के समय जो अमरकण्टक की यात्रा करता है, वह मनुष्य अक्षमेध यज्ञ से दस गुना अधिक पुण्य प्राप्त करता है।

एष पुण्यो गिरिखो देवगच्छवेवितः।
नानादुमलताकीर्णो नानापुण्योपशोभितः॥ ३७॥
तत्र सत्रिहितो राजन्देव्या सह महेश्वरः।
द्रहा विष्णुस्तथा रुद्रो विद्याधरगणैः सह॥ ३८॥
यह पुण्यप्रद श्रेष्ठ पर्वत (अमरकण्टक) देवताओं तथा गम्यध्यात्रों द्वारा सेवित, नाना प्रकार के वृक्षों और लताओं से व्याप एवं नाना प्रकार के पुष्पों से सुशोभित है। राजन्! यहाँ देवी पार्वती के साथ महेश्वर और विद्याधरगणों के साथ द्रहा, विष्णु तथा रुद्र भी स्थित होते हैं।

प्रदक्षिणं तु यः कुर्यात्पवतेऽपरकण्टके।
पौण्ड्रीकस्य यज्ञस्य फलं प्राप्नोति पानवः॥ ३९॥
कावेरी नाम विष्णुवाता नदी कल्पनाशिनी।
तत्र स्नात्वा महादेवपर्ययेद् वृषभध्वजम्॥
संगमे नर्मदायास्तु रुद्रलोके यहीयते॥ ४०॥

जो मनुष्य अमरकण्टक पर्वत की परिक्रमा करता है, वह पौण्ड्रीक यज्ञ का फल प्राप्त करता है। उसी तरह वहाँ कावेरी नाम की एक प्रसिद्ध नदी है, जो कल्पयों का नाश करने वाली है। उसमें स्नान करके तथा नर्मदा-कावेरी के संगम में स्नान करके जो वृषभध्वज महादेव की आराधना करता है, वह रुद्रलोक में प्रतिष्ठित होता है।

इति श्रीकूर्मपुराणे उत्तरार्द्धे मार्कण्डेययुधिष्ठिरसंवादे
नर्मदायाहत्यं नाम घल्वारिशोऽन्ध्यायः॥ ४०॥

एकचत्वारिंशोऽन्ध्यायः।
(नर्मदा नदी का माहात्म्य)

मार्कण्डेय उवाच

नर्मदा सरितां श्रेष्ठा सर्वपापविनाशिनी।
मुनिभिः कष्ठिता पूर्वमीश्वरेण स्वयम्भुवा॥ १॥
मार्कण्डेय ने कहा— नर्मदा नदी सभी नदियों में श्रेष्ठ तथा

समस्त पापों का नाश करने वाली है। यह बात पूर्वकाल में मुनियों तथा स्वयम्भु ईश्वर-ब्रह्मा ने कही है।

मुनिभिः संसुता ह्येषा नर्मदा प्रवरा नदी।
रुद्रग्रात्राद्विनिष्काना लोकानां हितकाम्याय॥ २॥

सर्वपापहरा नित्यं सर्वदेवनपस्कृता।
संसुता देवगच्छर्वरप्सरोभिस्त्वैव च॥ ३॥

यह श्रेष्ठ नर्मदा नदी मुनियों द्वारा प्रशंसित है। (क्योंकि) यह लोकों के हित की कामना से रुद्र के शरीर से उत्पन्न हुई है। यह नित्य सभी पापों को हरने वाली है, सभी देवों द्वारा नमस्कृत है और देवताओं, गन्धर्वों तथा अप्सराओं द्वारा अच्छी प्रकार स्तुत है।

उत्तरे चैव कूले च तीर्थं ग्रैलोक्यविश्रुते।
नामा भ्रद्रेश्वरं पुण्यं सर्वपापहरं मनुष्म्॥ ४॥

तत्र स्नात्वा नरो राजन्देवतैः सह योदते।

इस नर्मदा नदी के उत्तरी किनारा तीनों लोकों में विख्यात तीर्थरूप है, वहाँ भ्रद्रेश्वर नामक तीर्थ अति पवित्र, शुभ तथा सभी पापों का हरण करने वाला है। हे राजन्! वहाँ स्नान करके मनुष्य देवताओं के साथ आनन्दित होता है।

ततो गच्छेत राजेन्द्र विमलेश्वरमुत्पम्॥ ५॥

तत्र स्नात्वा नरो राजनोमहस्यफलं लभेत्।
राजेन्द्र! वहाँ से विमलेश्वर तीर्थ में जाना चाहिये। राजन्! वहाँ स्नान करके मनुष्य हजार गौओं के दान का फल प्राप्त करता है।

ततोऽङ्गतकेश्वरं गच्छेत्रियोतो नियताश्ननः॥ ६॥

सर्वपापविशुद्धात्मा रुद्रलोके महीयते।

तदनन्तर संयमपूर्वक नियत आहार करते हुए अङ्गारकेश्वर तीर्थ में जाना चाहिए। ऐसा करने से मनुष्य सभी पापों से छूटकर पवित्रात्मा होकर रुद्रलोक में प्रतिष्ठा प्राप्त करता है।

ततो गच्छेत राजेन्द्र केदारं नाम पुण्यदम्॥ ७॥

तत्र स्नात्वोदकं पीत्वा सर्वाक्षामानवानुयात्।
राजेन्द्र! इसके बाद पुण्यदायी केदार नामक तीर्थ में जाना चाहिये। वहाँ स्नान करके जल पान करने से सभी कामनाओं की प्राप्ति होती है।

निष्कलेशनतो गच्छेत्सर्वपापविनाशनम्॥ ८॥

तत्र स्नात्वा महाराज रुद्रलोके महीयते।

तदनन्तर निष्कलेश नामक तीर्थ में जाना चाहिये। वह सभी पापों का विनाश करने वाला है। हे महाराज! वहाँ स्नान करने से मनुष्य रुद्रलोक में पूजित होता है।

ततो गच्छेत राजेन्द्र वाणीर्थमनुत्पम्॥ ९॥

तत्र प्राणान्यरित्यज्य रुद्रलोकमवाप्नुयात्।
ततः पुष्करिणीं गच्छेत्सानं तत्र समाचरेत्॥ १०॥

तत्र स्नात्वा राजन् सिंहासनपतिर्भवेत्।
हे राजेन्द्र! तदनन्तर उत्तम वाणीर्थ में जाना चाहिये। वहाँ प्राणों का त्याग करने पर रुद्रलोक को प्राप्ति होती है। इसके बाद पुष्करिणी में जाकर वहाँ स्नान करना चाहिये। वहाँ स्नान करने मात्र से ही मनुष्य सिंहासन का अधिपति हो जाता है।

शक्तीर्थं ततो गच्छेत्कूले चैव तु दक्षिणे॥ ११॥

स्नात्पात्रो नरसत्र इन्द्रस्यार्द्धासनं लभेत्।

इसके पश्चात् (नर्मदा के) दक्षिणी तट पर स्थित शक्तीर्थ में जाना चाहिये। वहाँ भी स्नान करने वाला इन्द्र के अर्धासन को प्राप्त कर लेता है।

ततो गच्छेत राजेन्द्र शूलभेद इति श्रुतिः॥ १२॥

तत्र स्नात्वा च पीत्वा च गोसहस्रफलं लभेत्।

राजेन्द्र! वहाँ से शूलभेद नामक तीर्थ में जाना चाहिये, ऐसी मान्यता है। वहाँ स्नान करके जलपान कर लेने पर सहस्र गौ-दान का फल मिलता है।

उपोष्य रजनीपेकां स्नानं कृत्वा यथाविष्टि॥ १३॥

आराध्येन्महायोगं देवदेवं नरोऽप्मलः।
गोसहस्रफलं प्राप्य विष्णुलोकं स गच्छति॥ १४॥

वहाँ एक रात्रि उपवास करके तथा नियमपूर्वक स्नान करके पवित्र होकर मनुष्य को देवाधिदेव महायोगस्वरूप नारायण हरि की आराधना करनी चाहिये। इससे हजार गौओं के दान का फल प्राप्त कर मनुष्य विष्णुलोक में जाता है।

ऋषितीर्थं ततो गत्वा सर्वपापहरं त्रणाम्।
स्नात्पात्रो नरसत्र शिवलोके महीयते॥ १५॥

तदनन्तर मनुष्यों के समस्त पापों को हरने वाले ऋषितीर्थ में जाकर वहाँ केवल स्नान करने से ही मनुष्य शिवलोक में पूजित होता है।

नारदस्य तु तत्रैव तीर्थं परमशोभनम्।
स्नात्पात्रो नरसत्र गोसहस्रफलं भवेत्॥ १६॥

यत्र तत्त्वं तपः पूर्वं नारदेन सुर्विणा।
प्रीतसत्य ददौ योगं देवदेवो महेश्वरः॥ १७॥

वहाँ पर नारद जी का परम सुन्दर तीर्थ है। वहाँ भी स्नानमात्र से मनुष्य एक हजार गौ-दान का फल प्राप्त करता

है। पूर्वकाल में इसी तीर्थ में देवर्षि नारद ने तप किया था और इससे प्रसन्न होकर देवाधिदेव महेश्वर ने उन्हें योग प्रदान किया था।

**ब्रह्मणा निर्मितं लिङ्गं ब्रह्मेश्वरपिति श्रुतम्।
यत्र स्नात्वा नरो राजन्द्रव्यालोके महीयते॥ १८॥**

हे राजन्! ब्रह्मा के द्वारा स्थापित लिङ्गं ब्रह्मेश्वर नाम से प्रसिद्ध है। इस तीर्थ में स्नान करके मनुष्य ब्रह्मलोक में प्रतिष्ठा प्राप्त करता है।

**ऋणतीर्थं ततो गच्छेदणान्मुच्येन्नरो श्रुतम्।
वटेश्वरं ततो गच्छेत्यर्थासं जन्मनः फलम्॥ १९॥**

तदनन्तर ऋणतीर्थ की ओर जाना चाहिये। वहाँ जाने से मनुष्य अवश्य ही ऋणों से मुक्त हो जाता है। इसके बाद वटेश्वर तीर्थ में जाना चाहिये, जहाँ जीवन का पूर्ण फल मिलता है।

**भीमेश्वरं ततो गच्छेत्सर्वव्याधिविनाशनम्।
स्नातमात्रो नरसत्र सर्वदुःखैः प्रमुच्यते॥ २०॥**

तदुपरान्त समस्त व्याधियों का नाश करने वाले भीमेश्वर-तीर्थ में जाना चाहिये। वहाँ स्नान करने मात्र से ही मनुष्य सभी दुःखों से मुक्त हो जाता है।

**ततो गच्छेत राजेन्द्रं पिंगलेश्वरमुत्तमम्।
अहोरात्रोपवासेन त्रिरात्रफलमाप्नुयात्॥ २१॥**

तस्मिंस्तीर्थं तु राजेन्द्रं कपिलां यः प्रवच्छति। यावनि तस्या रोमाणि तदप्सूतिकुलेषु च॥ २२॥

तावदूर्धसहस्राणि रुद्रलोके महीयते। यस्तु प्राणपरित्यागं कुर्यात्तत्र नराधिप॥ २३॥

अद्युयं पोदते कालं यावद्यन्दिदिवाकरौ। नर्वदातटमाश्रित्य ये च तिष्ठुनि मानवाः॥ २४॥

ते मृताः स्वर्णमायानि सन्तः सुकृतिनो यथा। राजेन्द्र! इस तीर्थ के बाद उत्तम पिङ्गलेश्वर में जाना चाहिये। वहाँ एक दिन-रात का उपवास करने से त्रिरात्र (यज्ञ या उपवास) का फल प्राप्त होता है। उस तीर्थ में जो कपिला गौं का दान करता है, वह उस गौं तथा उसके कुल में उत्पन्न सन्तानों के शरीरों पर जितने रोम होते हैं, उन्हें हजार वर्ष पर्यन्त रुद्रलोक में प्रतिष्ठित होता है। हे नराधिप!

वहाँ जो प्राणों का त्याग करता है, वह जब तक सूर्य-चन्द्रमा है, तब तक अक्षय आनन्द प्राप्त करता है। जो मनुष्य

नर्मदा के तट का आश्रय ग्रहण कर बास करते हैं, वे मूल्य पञ्चात् स्वर्गं प्राप्त करते हैं, जैसे कि पुण्यवान् संत।

ततो दीपेश्वरं गच्छेदत्यासतीर्थं तपोवनम्॥ २५॥

निवर्त्तिं पुरा तत्र व्यासभीता महानदी।

हुंकारिता तु व्यासेन तत्क्षणेन ततो गता॥ २६॥

प्रदक्षिणानु यः कुर्यात्स्मितीर्थं युधिष्ठिर।

प्रीतसत्र भवेदत्यासो वाञ्छितं लभते फलम्॥ २७॥

तदनन्तर दीपेश्वर नामक व्यासतीर्थ में जाना चाहिए, जो उनके तपोवन में स्थित है। व्यासीन काल में वहाँ व्यासजी से भव्यभीत होकर महानदी (नर्मदा) लौट गई गयी थी और व्यास के द्वारा हुंकार किये जाने पर वहाँ से दक्षिण की ओर मूँढ गयी। हे युधिष्ठिर! उस तीर्थ में जो प्रदक्षिणा करता है, व्यासजी प्रसन्न होकर उसे वाञ्छित फल प्रदान करते हैं।

ततो गच्छेत राजेन्द्रं इक्षुनद्यास्तु संगमम्।

त्रैलोक्यविश्रुतं पुण्यं तत्र सन्निहितः शिवः॥ २८॥

तत्र स्नात्वा नरो राजन् गाणपत्यमवाप्नुयात्।

राजेन्द्र! तदनन्तर तीनों लोक में प्रख्यात एवं पवित्र इक्षुनदी के संगम पर जाना चाहिये, जहाँ सदा शिव का वास है। हे राजन्! वहाँ मनुष्य स्नानकर (शिव का) गाणपत्य-पद प्राप्त करता है।

स्कन्दतीर्थं ततो गच्छेत् सर्वपाणप्रणाशनम्॥ २९॥

आज्ञन्मनः कृतं पापं स्नातसत्र व्यपोहति।

तत्र देवा: सणन्त्वा भर्गात्पवापनुत्तमम्॥ ३०॥

उपासते प्रहात्यानं स्कन्दं शक्तिश्वरं प्रमुम्।

इसके पश्चात् स्कन्दतीर्थ में जाना चाहिए। यह तीर्थ समस्त पापों का नाश करने वाला है। वहाँ स्नान कर लेने पर संपूर्ण जन्म के पाप दूर हो जाते हैं। वहाँ गन्धवौं सहित देवगण शंकरजी के पुत्र, श्रेष्ठ महात्मा, शक्ति नामक अस्त्रधारी प्रभु स्कन्द की उपासना करते हैं।

ततो गच्छेदांगिरसं स्नानं तत्र सपाचरेत्॥ ३१॥

गो-सहस्रफलं प्राप्य रुद्रलोकं स गच्छति।

तदनन्तर आङ्गिरस तीर्थ में जाकर स्नान करना चाहिए। वहाँ स्नान करने वाला एक हजार गौं-दान का फल प्राप्त कर रुद्रलोक में जाता है।

आङ्गिरा यत्र देवेशं ब्रह्मपुत्रो वृक्षवज्रम्॥ ३२॥

तपसारात्र्य किञ्चेशं लक्ष्यवान्योगमुत्तमम्।

कुशतीर्थं ततो गच्छेत्सर्वप्रणाशनम्॥ ३३॥

तत्र स्नानं प्रकृत्यात् अश्रमेष्टफलं लभेत्।

वहाँ ब्रह्माजी के पुत्र (महर्षि) अङ्गिरा ने तपस्या के द्वारा देवेश बृषभधन्वज विशेषज्ञ की आशाधना करके उत्तम योग प्राप्त किया था। तदनन्तर समस्त पापों का नाश करने वाले कुशतीर्थ में जाना चाहिये। वहाँ स्नान करने से व्यक्ति अश्रमेष्ट यज्ञ का फल प्राप्त करता है।

कोटितीर्थं ततो गच्छेत्सर्वपापप्रणाशनम्॥ ३४॥

आज्ञन्यनः कृतं पापं स्नातसत्र व्यपोहाति।

इसके पश्चात् सर्वपापनाशक कोटितीर्थ में जाना चाहिये। वहाँ स्नान कर मनुष्य संपूर्ण जन्म के पापों को दूर कर लेता है।

चन्द्रभागा ततो गच्छेत्स्नानं तत्र समाचरेत्॥ ३५॥

स्नातमात्रो नरसत्र सोमलोके पर्हीयतो।

तदुपरान्तं चन्द्रभागा नदी में स्नान करना चाहिये। वहाँ स्नानमात्र से ही मनुष्य सोमलोक में महान् आदर प्राप्त करता है।

नर्मदादक्षिणे कूले सहृदेश्वरमुत्तमम्॥ ३६॥

तत्र स्नात्वा नरो राजन्सर्वद्यज्ञफलं लभेत्।

नर्मदाया उत्तरे कूले तीर्थं परमशोभनम्॥ ३७॥

आदित्यायतनं सर्वपीड्यरेण तु भाषितम्।

तत्र स्नात्वा तु राजेन्द्र दत्त्वा दाननु शक्तिः॥ ३८॥

तस्य तीर्थप्रभावेण लभते चाक्षयं फलम्।

दरिद्रा व्याधिता ये तु ये तु दुष्कृतकर्मिणः॥ ३९॥

मुच्यन्ते सर्वपापेभ्यः सूर्यलोकं प्रयान्ति च।

राजन्! नर्मदा के दक्षिणी तट पर उत्तम संगमेश्वर (तीर्थ) है। वहाँ स्नान करके मनुष्य सभी यज्ञों का फल प्राप्त कर लेता है। इसी तरह नर्मदा के उत्तरी तट पर आदित्यायन नामक तीर्थ है जिसे स्वयं ईश्वर ने भी रमणीय कहा है।

राजेन्द्र! वहाँ स्नानकर यथाशक्ति दान करने पर उस तीर्थ के प्रभाव से अक्षय फल मिलता है तथा जो लोग दरिद्र और व्याधियुक्त तथा जो दुष्ट कर्म करने वाले हैं, वे सभी पापों से मुक्त होकर सूर्यलोक को जाते हैं।

पश्चतीर्थं ततो गच्छेत्स्नानं तत्र समाचरेत्॥ ४०॥

स्नातमात्रो नरसत्र स्वर्गलोकमवानुयात्।

ततः पश्चिमतो गच्छेन्मास्ताशयमुत्तमम्॥ ४१॥

तत्र स्नात्वा तु राजेन्द्र शुचिर्भूत्वा समाहितः।

काङ्गनङ्ग यतोऽद्याद्याविभवविस्तरम्॥ ४२॥

पुष्पकेण विभानेन वायुलोकं स गच्छति।

तदनन्तर मातृतीर्थ में जाना चाहिए और वहाँ स्नान करना चाहिये। वहाँ स्नानमात्र से ही मनुष्य स्वर्गलोक प्राप्त कर लेता है। इसके पश्चात् पश्चिम की ओर स्थित श्रेष्ठ वायु के स्थान में जाना चाहिये। राजेन्द्र! वहाँ स्नान करके प्रयत्नपूर्वक पवित्र होकर अपनी वैभव के अनुकूल द्विज को स्वर्ण प्रदान करना चाहिये। ऐसा करने वाला मनुष्य पुष्पक-विभान के द्वारा वायुलोक में जाता है।

ततो गच्छेन्द्र राजेन्द्र अहल्यातीर्थमुत्तमम्।

स्नानमात्रादप्मरोभिर्मोदते कालमुत्तमम्॥ ४३॥

राजेन्द्र! तदनन्तर श्रेष्ठ अहल्यातीर्थ में जाना चाहिये। वहाँ स्नान मात्र से मनुष्य उत्तमकाल पर्यन्त अप्सराओं के साथ आनन्द करता है।

चैत्रमासे तु सप्तासे शुक्लपक्षे ऋयोदशी।

कामदेवदिने तस्मिन्श्रहल्यां पूजयेत्ततः॥ ४४॥

यत्र तत्र समुत्पद्मो नरोऽत्यर्थप्रियो भवेत्।

स्त्रीवल्लभो भवेच्छृंगान्कामदेव इवापरः॥ ४५॥

चैत्रमास में शुक्लपक्ष की ऋयोदशी जो कामदेव का दिन है, इस अहल्यातीर्थ में जो मनुष्य अहल्या को पूजा करता है, वह जहाँ कहाँ भी उत्पन्न हुआ हो, वह श्रेष्ठ तथा सबका प्रिय होता है और विशेषकर स्त्रियों को प्रिय लगने वाला, शोभायुक्त लक्ष्मीवान् तथा रूप से दूसरे कामदेव के समान हो जाता है।

सप्तद्वारा सप्तासा तीर्थं शक्रस्य विश्वुतम्।

स्नातमात्रो नरसत्र गोसहस्रफलं लभेत्॥ ४६॥

इसी उत्तम नदी के किनारे इन्द्र के प्रसिद्ध शक्रतीर्थ है। वहाँ आकर स्नान करके मनुष्य हजार गोदान का फल प्राप्त करता है।

सोमतीर्थं ततो गच्छेत्स्नानं तत्र समाचरेत्।

स्नातमात्रो नरसत्र सर्वपापैः प्रमुच्यते॥ ४७॥

सोमश्रेष्ठे तु राजेन्द्र पापक्षयकरं भवेत्।

त्रैलोक्यविश्रुतं राजन्सोमतीर्थं महाफलम्॥ ४८॥

तदनन्तर सोमतीर्थ में जाकर वहाँ स्नान करना चाहिये। केवल स्नानमात्र से ही मनुष्य सभी पापों से मुक्त हो जाता है। हे राजेन्द्र! जिस समय चन्द्रग्रहण हो उस समय (वहाँ स्नान करने से) विशेषकर पापों का क्षय करने वाला होता

है। हे राजन्! तीनों लोकों में विख्यात सोमतीर्थ महान् फल देने वाला है।

यसु चान्द्रायणद्वयात्ति तीर्थं सपाहितः।
सर्वपापविशुद्धात्मा सोमलोकं स गच्छति॥ ४९॥
अग्निप्रवेशं यः कुर्यात्सोमतीर्थं नराधिष्ठा।
जले चानशनं वापि नामौ पर्यो हि जायते॥ ५०॥

उस तीर्थ में जो एकाग्र-मन से चान्द्रायणद्रवत करता है, वह समस्त पापों से मुक्त विशुद्धात्मा होकर सोमलोक को जाता है। हे नराधिष्ठा! जो सोमतीर्थ में अग्निप्रवेश, जलप्रवेश अथवा अनशन करता है, वह मृत्यु पश्चात् पुनः उत्पन्न नहीं होता।

स्तम्भतीर्थं ततो गच्छेत्सनानं तत्र सपाचरेत्।
स्नातपात्रो नरसत्र सोमलोके प्रहीयते॥ ५१॥
तदनन्तर स्तम्भतीर्थं में जाकर वहाँ स्नान करना चाहिये। वहाँ स्नानमात्र से मनुष्य सोमलोक में प्रतिष्ठा प्राप्त करता है अर्थात् पूर्णित होता है।

ततो गच्छेत राजेन्द्र विष्णुतीर्थमनुजपम्।
योधीपुरामिति ख्यातं विष्णुस्यानपनुत्पम्॥ ५२॥
अमुरा योधितासत्र वासुदेवेन कोटिः।
तत्र तीर्थं समुत्पन्नं विष्णुतीर्थो भवेदिह॥ ५३॥
अहोरात्रोपवासेन द्राघहत्यां व्यपोहति।
राजेन्द्र! तदनन्तर परम उत्तम विष्णुतीर्थ में जाना चाहिये। वहाँ योधनोपर नामक विष्णु का श्रेष्ठ स्थान है। वहाँ वासुदेव के साथ करोड़ों अमुरों ने युद्ध किया था (और अमुरों का संहार किया था)। अतः वहाँ विष्णुतीर्थ उत्पन्न हुआ। जो मनुष्य उस तीर्थ का सेवन करता है, वह विष्णु के समान शोभासम्पन्न होता है। वहाँ एक अहोरात्र उपवास करने से ब्रह्महत्या दूर हो जाती है।

नर्मदादक्षिणो कूले तीर्थं परमशोभनम्॥ ५४॥
कामतीर्थमिति ख्यातं यत्र कामोऽर्थयेद्विष्टि।
तस्मिंस्तीर्थे नरः स्नात्वा उपवासपरायणः॥ ५५॥
कुमुमायुधरूपेण रुद्लोके प्रहीयते।
नर्मदा के दक्षिणो तट पर एक परम सुन्दर तीर्थ है, जो कामतीर्थ नाम से प्रसिद्ध है। वहाँ पर कामदेव ने शंकर की आराधना की थी। उस तीर्थ में स्नानकर जो उपवासपरायण रहता है, वह कामदेव के समान रूपवान् होकर रुद्लोक में प्रतिष्ठा प्राप्त करता है।

ततो गच्छेत राजेन्द्र द्राघतीर्थमनुजपम्॥ ५६॥

उमाहकमिति ख्यातं तत्र सन्तर्पयतिर्णू।

पौर्णिमास्यामगावास्यां श्राद्धद्वयाद्याविष्ठि॥ ५७॥

गजरूपा शिला तत्र तोयमध्ये व्यवस्थिता।

तस्मिंस्तु दापयेत्पिण्डान्वैशाखे तु सपाहितः॥ ५८॥

स्नात्वा सपाहितपना दम्भपात्सर्ववर्जितः।

तृष्णनि पितरस्तस्य यावत्तिष्ठति मेदिनी॥ ५९॥

राजेन्द्र! तदनन्तर उत्तम द्राघतीर्थ में जाना चाहिये। वह तीर्थ 'उमाहक' इस नाम से प्रसिद्ध है। वहाँ पितरों का तर्पण करना चाहिये। पूर्णिमा तथा अमावास्या को विधिपूर्वक श्राद्ध करना चाहिये। वहाँ जल के मध्य हाथी के आकार की गजशिला स्थित है। उस शिला पर भी वैशाख मास की पूर्णिमा को स्नान के अनन्तर दम्भ तथा मात्सर्य से रहित होकर एकाग्रचित से पिण्डदान करना चाहिये। इससे पिण्डदाता के पितर जब तक पृथ्वी रहती है, तब तक तृष्ण रहते हैं।

विश्वेश्वरं ततो गच्छेत्सनानं तत्र सपाचरेत्।

स्नातपात्रो नरसत्र गाणपत्यपदं लभेत्॥ ६०॥

ततो गच्छेत राजेन्द्र लिङ्गे यत्र जनादेनः।

तत्र स्नात्वा नरो भक्त्या विष्णुलोके प्रहीयते॥ ६१॥

इसके बाद विश्वेश्वर तीर्थ में जाकर वहाँ स्नान करना चाहिये। वहाँ स्नानमात्र करने से मनुष्य, शिव का गाणपत्य पद प्राप्त करता है। राजेन्द्र! तदनन्तर जहाँ जनादेन स्वयं लिङ्ग रूप में प्रतिष्ठित हैं, उस तीर्थ में जाना चाहिये। राजेन्द्र! वहाँ स्नान करने से विष्णुलोक में आदर प्राप्त करता है।

यत्र नारायणो देवो मुखीनां भावितात्मनाम्।

स्वात्मानं दर्शयामास लिङ्गं तत्परमं पदम्॥ ६२॥

यहाँ पर नारायण देव ने भक्तिपूर्ण मन वाले मुनियों को अपना स्वरूप का लिङ्गरूप में दर्शन कराया था। इस कारण यह लिङ्ग तीर्थ परम पद विष्णुभास ही है।

अकोल्लनु ततो गच्छेत्सर्वपापविनाशनम्।

स्नानं दामस्तु तत्रैव द्राघाणामाष्ट भोजनम्॥ ६३॥

पिण्डप्रदानस्तु कृतं प्रेत्यानन्तफलप्रदम्।

त्रियस्वकेन तोयेन यजुरुं श्रपयेद्विजः॥ ६४॥

अकोल्लम्बूले दद्यात् पिण्डाष्टैव यथाविष्ठि।

तारिताः पितरस्तेन तृष्णन्यायन्दत्तारकम्॥ ६५॥

तदनन्तर समग्र पापों का नष्ट करने वाले अकोल्ल तीर्थ में जाना चाहिये। वहाँ पर किया गया स्नान, दान, आह्वाण-भोजन तथा पिण्डदान परलोक में अनन्त फल देने वाला होता है। जो ब्रैयम्बक (ब्राम्बक)¹ मन्त्र के द्वारा जल से चह पकाकर उससे अंकोल (वृक्ष) के मूल में यथाविधि पिण्डदान करता है, उसके द्वारा तारे गये पितर जब तक चन्द्रमा तथा तारे वर्तमान हैं, तब तक तृप्त रहते हैं।

ततो गच्छेत राजेन्द्र तापसेष्वरपुत्रम्।

तत्र स्नात्वा तु राजेन्द्र पापनुयात्तपासः फलम्॥६६॥

राजेन्द्र! तदनन्तर उत्तम तापसेश्वर (तीर्थ में) जाना चाहिये। राजेन्द्र! वहाँ स्नानमात्र करने से मनुष्य तपस्या का फल प्राप्त करता है।

शुक्लतीर्थं ततो गच्छेत्सर्वपापविनाशनम्।

नास्ति तेन सप्तनीर्थं नर्मदायां युधिष्ठिर॥६७॥

दर्शनात्पर्यनात्स्व स्नानादानानात्पो जपात्।

होमाच्योपवासाच्च शुक्लतीर्थं महफलम्॥६८॥

योजननत्स्मृते क्षेत्रे देवगन्धर्वसेवितम्।

शुक्लतीर्थमिति ख्यातं सर्वपापविनाशनम्॥६९॥

इसके पश्चात् सभी पापों का नाश करने वाले शुक्लतीर्थ में जाना चाहिये। हे युधिष्ठिर! नर्मदा में उसके समान कोई भी तीर्थ नहीं है। उस शुक्लतीर्थ में दर्शन करने, स्नान करने तथा वहाँ स्नान, दान, तप, जप, होम और उपवास करने से महान् फल को प्राप्ति होती है। इसका क्षेत्रफल एक योजन (चार कोश) का है। शुक्लतीर्थ इस नाम से विख्यात यह तीर्थ देवताओं तथा गन्धर्वों से सेवित है और समस्त पापों का नाश करने वाला है।

पादपाशेण दृष्टेन ब्रह्महत्यां व्यपोहति।

देव्या सह सदा भर्तस्तत्र तिष्ठति शङ्कुरः॥७०॥

कृष्णपक्षे चतुर्दश्यां वैशाख्ये भासि सुव्रत।

लोकात्प्रकाशिनिक्षयं तत्र सञ्चिह्नो हरः॥७१॥

देवदानवगच्छार्याः सिद्धविद्याश्चारामस्या।

गणाभ्युपासरसो नागास्तत्र तिष्ठन्ति पुङ्क्षाः॥७२॥

यहाँ पर (वट) वृक्ष के अग्रभाग को भी देखने से ब्रह्महत्या दूर हो जाती है, (क्योंकि) वहाँ देवो (पावर्ती)

के साथ शंकर सदा निवास करते हैं। सुन्द्रत! वैशाख मास में कृष्णपक्ष की चतुर्दशी को वे हर अपने निजधाम से आकर वहाँ विराजमान होते हैं। (इतना ही नहीं) वहाँ श्रेष्ठ देवगण, दानव, गन्धर्व, सिद्ध, विद्याधर, अप्सराओं के समूह तथा नाग भी आते हैं।

राजितं हि यथा वस्त्रं शुक्लं भवति वारिणा।

आजन्मजनितं पापं शुक्लतीर्थं व्यपोहति॥७३॥

स्नानं दानं तपः श्राद्धमनन्तं तत्र दृश्यते॥७४॥

शुक्लतीर्थात्परं तीर्थं न भविष्यति पावनम्।

पूर्वं वयसि कर्मणि कृत्वा पापानि शानवः।

अहोरात्रोपवासेन शुक्लतीर्थं व्यपोहति॥७५॥

कार्तिकस्य तु मासस्य कृष्णपक्षे चतुर्दशी।

घृतेन स्नापयेद्वपुषोष्य परमेश्वरम्॥७६॥

एकविशत्कुलोपेतो न च्यवेदीश्वरालयात्।

तपसा ब्रह्मचर्येण यज्ञदनिन वा पुनः॥७७॥

न तो गतिमवानोति शुक्लतीर्थं तु यां लभेत्।

जिस प्रकार कोई वस्त्र (दाग-धब्बे से) रंजित हो, वह जल से (धोये जाने पर) स्वच्छ (मलरहित) हो जाता है, उसी प्रकार शुक्लतीर्थ में स्नान करने से जन्म से लेकर अब तक किये सब पाप दूर हो जाते हैं। वहाँ किया गया स्नान, दान, तप तथा श्राद्ध अक्षय फल देने वाला है। शुक्लतीर्थ-सा परम तीर्थ न कोई हुआ है, न होगा। मनुष्य पूर्व अवस्था में किये सब पापों को शुक्लतीर्थ में एक दिन-रात के उपवास से दूर कर देता है। कार्तिक मास में कृष्णपक्ष की चतुर्दशी को उपवास रखकर परमेश्वर को घृत से स्नान कराना चाहिए। ऐसा करने से वह इक्कीस पीढ़ियों के साथ ईश्वर के लोक में वास करता हुआ कभी भी च्युत नहीं होता। शुक्लतीर्थ में जो गति प्राप्त होती है, वह तपस्या, ब्रह्मचर्य, यज्ञ अथवा दान से प्राप्त नहीं होती।

शुक्लतीर्थं महातीर्थपृथिविद्वनियेवितम्॥७८॥

तत्र स्नात्वा नरो राजन्यनर्जन्म न विन्दति।

अयने वा चतुर्दश्यां संक्रान्ती विषुवे तदाः॥७९॥

स्नात्वा तु सोपवासः सन्विजितात्मा समाहितः।

दानं दद्याद्याशक्ति श्रीयतो हरिशङ्करौ॥८०॥

एततीर्थप्रभावेण सर्वं भवति चाक्षयम्।

शृणियों तथा सिद्धों से सेवित शुक्लतीर्थ महान् तीर्थ है। राजन्! वहाँ स्नान करके मनुष्य पुनर्जन्म को प्राप्त नहीं करता। वहाँ अयन, चतुर्दशी, संक्रान्ति तथा विषुव (योग)

1. 'त्रियम्बकेन तोयेन' अर्थात् नर्मदा के जल से-ऐसा भी अर्थ कुछ लोग करते हैं।

में यथाशक्ति दान देना चाहिये। इससे विष्णु तथा शिव दोनों प्रसन्न होते हैं। इस तीर्थ के प्रभाव से सब कुछ अक्षय होता है।

अनाथं दुर्गतं विप्रं नाशवन्नमथापि वा॥८१॥
उद्ग्रहयति चस्तीर्थं तस्य पुण्यफलं शृणु।
यावत्स्रोमसंख्या तु तद्वसुतिकुलेषु च॥८२॥
तावद्वर्षसहस्राणि रुद्गलोके महायते।

इस तीर्थ में जो किसी अनाथ, दुर्गति को प्राप्त अथवा धनिक ब्राह्मण का भी विवाह कराता है, उससे जो पुण्यफल प्राप्त होता है, उसे सुनो— उसके शरीर में तथा उसके कुल की संतानों के शरीर में जितने रोम होते हैं, उतने हजार वर्षों तक वह रुद्गलोक में प्रतिष्ठा प्राप्त करता है।

ततो गच्छेत राजेन्द्रं यमतीर्थमनुत्तमम्॥८३॥
कृष्णपक्षे चतुर्दश्या माघमासे युधिष्ठिर।
स्नानं कृत्वा नक्षत्रोजी न पश्येद्योनिसङ्कृटम्॥८४॥

राजेन्द्र! तदनन्तर परम उत्तम यमतीर्थ में जाना चाहिये। हे युधिष्ठिर! माघमास में कृष्णपक्ष की चतुर्दशी को इस यमतीर्थ में स्नान करके जो केवल रात्रि में भोजन करता है, वह गर्भ के संकट को कभी नहीं देखता है।

ततो गच्छेत राजेन्द्रं एरण्डीतीर्थपुत्तमम्।
संगमे तु नरः स्नात्वा उपवासपरायणः॥८५॥
ब्राह्मणं भोजयेदेकं क्षोटिभर्वति भोजिताः।
एरण्डीसङ्कृते स्नात्वा भक्तिभावानु रञ्जितः॥८६॥
मृतिकां शिरसि स्थाप्य अवगाह्य च तज्जलम्।
नर्पदोदकसंपित्रं पुष्यते सर्वकिञ्चित्पैः॥८७॥

राजेन्द्र! तदुपरान्त श्रेष्ठ एरण्डीतीर्थ में जाना चाहिये। वहाँ पर संगम में स्नान कर उपवासपरायण रहते हुए जो एक ब्राह्मण को भोजन कराता है, तो उसे करोड़ों (ब्राह्मणों) को भोजन कराने का फल मिलता है। एरण्डी-संगम में स्नान करके भक्तिभाव से परिपूर्ण होकर वहाँ की मिट्टी मस्तक में लगाकर जो नर्मदा के जल से मिश्रित उस (एरण्डी-संगम) के जल में स्नान करता है, वह मनुष्य सभी पार्षों से मुक्त हो जाता है।

ततो गच्छेत राजेन्द्रं तीर्थकुल्लोलकेश्वरम्।
गंगावतरते तत्र दिने पुण्ये न संशयः॥८८॥
तत्र स्नात्वा च पीत्वा च दत्त्वा चैव यशाविद्या।
सर्वपापविनिर्मुक्तो द्रुह्गलोके महायते॥८९॥

हे राजेन्द्र! इसके पश्चात् कल्लोलकेश्वर तीर्थ में जाना चाहिये। वहाँ पुण्य (पर्व) दिन में निषिद्ध रूप से गङ्गा अवतारित होती है। वहाँ स्नान, आचमन और विधिपूर्वक दान देने से मनुष्य सभी पार्षों से मुक्त होकर द्रुह्गलोक में प्रतिष्ठा प्राप्त करता है।

नन्दितीर्थं ततो गच्छेत्तत्र स्नानं सप्ताचरेत्।
प्रीयते तत्र नन्दीशः सोपलोके महीयते॥९०॥

तदनन्तर नन्दितीर्थ में जाकर स्नान करना चाहिये। ऐसा करने वाला नन्दीश्वर को प्रसन्न करता है और वह सोपलोक में महान् आदर प्राप्त करता है।

ततो गच्छेत राजेन्द्रं तीर्थं त्वनरकं शुभम्।
तत्र स्नात्वा नरो राजन्नरकं नैव पश्यति॥९१॥
तस्मिस्तीर्थं तु राजेन्द्रं स्वान्यस्थीनि विनिष्क्रियेत्।
स्वरक्षाङ्गायते लोके धनभोगसम्बन्धितः॥९२॥

हे राजेन्द्र! इसके आगे शुभ अनरक नामक तीर्थ में जाना चाहिये। राजन्! वहाँ स्नान करके मनुष्य कभी नरक को नहीं देखता। राजेन्द्र! उस शुभतीर्थ में अपने सम्बन्धियों का अस्थियों का विसर्जन करना चाहिए। ऐसा करने से वह जन्मान्तर में दिव्य रूपवान् एवं विविध धन-भोगों से सम्पन्न होता है।

ततो गच्छेत राजेन्द्रं कपिलतीर्थमनुत्तमम्।
तत्र स्नात्वा नरो राजनो सहस्रफलं लभेत्॥९३॥
ज्येष्ठासे तु सप्तासे चतुर्दश्यां विशेषतः।
तत्रोपेत्य नरो भक्त्या दत्त्वा दीपं धृतेन तु॥९४॥
धृतेन स्नापयेदुदूरं ततो वै श्रीफलं लभेत्।
पष्टापरणसंयुक्तो कपिलां वै प्रदापयेत्॥९५॥
सर्वाभरणसंयुक्तः सर्वदिवनपस्कृतः।
शिवतुल्यबलो भूल्वा शिववत्कीड़े सदा॥९६॥

हे राजेन्द्र! तदनन्तर उत्तम कपिलतीर्थ में जाना चाहिये। राजन्! वहाँ स्नानकर व्यक्ति हजार गोदान का फल प्राप्त करता है। ज्येष्ठ मास आने पर विशेषतः चतुर्दशी तिथि को वहाँ उपवास कर मनुष्य को भक्तिपूर्वक धृत का दीप-दान करना चाहिये। धृत से ही रुद्र का अभिषेक करना चाहिये, धृतयुक्त श्रीफल का हवन करना चाहिये और धंटा तथा आभरणों से सम्पन्न कपिला गौ का दान करना चाहिये। इससे मनुष्य सभी अलंकारों से युक्त, सभी देवताओं के लिये वन्दनोय और शिव के समान तुल्य शक्तिशाली होकर

चिरकाल तक शिव के समान कोडा करता है अर्थात् लोक में आनन्द अनुभव करता है।

अह्मारकदिने प्राप्ते चतुर्थानु विशेषतः।
स्नापयित्वा शिवं दद्याहोप्यस्तु भोजनम्॥ १८॥
सर्वदिवसमायुक्तो विपाने सर्वकामिके।
गत्वा शक्रस्थ भवने शक्रेण सह मोदतो॥ १८॥
ततः स्वर्गात्परिद्विष्टो धृतिपात्रोगवान्मवेत्।

मंगलवार को विशेष रूप से चतुर्थी पड़ने पर यहाँ शिव का अभिषेक कर द्वादशी को भोजन कराना चाहिये। ऐसा करने वाले मनुष्य सभी भोगों से युक्त होकर अपनी इच्छा से सर्वत्र अप्रतिहतगति एवं सभी प्रकार की सुविधाओं से परिपूर्ण विमानों के द्वारा इन्द्र के भवन में जाकर इन्द्र के साथ आनन्द भोग करते हैं। (वहाँ अवधि पूर्ण होने पर) स्वर्ग से च्युत होकर इस लोक में भी धनवान् और भोगवान् बनता है।

अह्मारकनवप्यानु अमावस्यां तदैव च। १९॥
स्नापयेत्तत्र यत्नेन रूपवान्सुभगो भवेत्।
और भी, यदि मंगलवार को नवमी तिथि हो, अथवा अमावस्या हो, तो उस दिन भी वहाँ प्रयत्नपूर्वक शिवाभिषेक करने से व्यक्ति रूपवान् तथा सौभाग्यशाली होता है।
ततो गच्छेत राजेन्द्र गणेश्वरमनुनमप्म्॥ १००॥
श्रावणे मासि सप्तामे कृष्णपक्षे चतुर्दशी।
स्नातमात्रो नरस्तत्र रुद्रलोके महीयते॥ १०१॥

पितॄणां तर्पणं कृत्वा मुच्यते स ऋणत्रयात्।
हे राजेन्द्र! तदनन्तर सर्वोत्तम गणेश्वर (तीर्थ) में जाना चाहिये। श्रावण मास आने पर कृष्णपक्ष की चतुर्दशी को वहाँ स्नानमात्र करने से मनुष्य रुद्रलोक में प्रतिष्ठित होता है और पितरों का तर्पण करने से तीनों (देव, ऋषि, मनुष्य) ऋणों से मुक्त हो जाता है।

गणेश्वरसपीपे तु गंगावदनमुत्तमम्॥ १०२॥
अकामो वा सकामो वा तत्र स्नात्वा तु यामवः।
आजम्भनितैः पापैर्युच्यते नात्र संशयः॥ १०३॥
गणेश्वरतीर्थ के समीप श्रेष्ठ गङ्गावदन नामक तीर्थ है। वहाँ मनुष्य सकाम या निष्कामभाव से स्नान करता है, वह जन्म भर के किये हुए पापों से मुक्त हो जाता है, इसमें संशय नहीं है।

तस्य वै पश्चिमे भागे सपीपे नातिदूरतः।

दशासुपेषिकं तीर्थं त्रिषु लोकेषु विश्रुतम्॥ १०४॥

उषोष्य रजनीभेका मासि भाद्रपदे शुभे।
अमावस्यां हरं स्नाप्य पूजयेद्वैष्णवजम्॥ १०५॥
काञ्छनेन विपानेन किञ्चुणीजालमालिना।
गत्वा रुद्रपुरं रथ्य रुद्रेण सह मोदते॥ १०६॥

पूर्वोक्त तीर्थ के पहिमी भाग में अति समीप में ही तीनों लोकों में विलयात दशासुपेषिक नामक तीर्थ है। वहाँ शुभ भाद्रपद मास की अमावस्या को एक रात्रि का उपवास कर स्नानपूर्वक जो वृषभध्वज का पूजन करता है, वह किंकिणी के समूह से अलंकृत सोने के विमान से रमणीय रुद्रपुर में जाता है और वहाँ रुद्र के साथ आनन्दानुभव करता है।

सर्वत्र सर्वदिवसे स्नानं तत्र सपाद्यरेत्।
पितॄणां तर्पणं कृत्वा चाञ्छुपेषफलं लभेत्॥ १०७॥

उसी तीर्थ में मनुष्य सर्वकाल सभी दिनों में स्नान करता है और पितरों का तर्पण करता है, तो उसे असमेध यह का फल प्राप्त होता है।

इति श्रीकृष्णपुराणे उत्तरार्द्धे नर्तदामाहात्म्ये
एकचत्वारिंशोऽध्यायः॥ ४१॥

द्विचत्वारिंशोऽध्यायः

(नर्तदा नदी के तीर्थों का माहात्म्य)

मार्कण्डेय उवाच

ततो गच्छेत राजेन्द्र भृगुतीर्थपनुत्तमम्।
तत्र देवो भृगुः पूर्वं रुद्रपाराष्यपत्पुरा॥ १॥
दर्शनात्मस्य देवस्य सद्गुः पापान्त्रमुच्यते।
एतक्षेत्रं सुविपुलं सर्वपापप्रणाशनम्॥ २॥

ऋषि मार्कण्डेय बोले— हे राजेन्द्र! पूर्वोक्त तीर्थों के अनन्तर सर्वोत्तम भृगुतीर्थ में जाना चाहिये। प्राचीन काल में यहाँ महर्षि भृगु ने भगवान् रुद्र की आराधना की थी। इसलिए वहाँ स्थित रुद्रदेव के दर्शन करने से तत्काल पाप से मुक्ति हो जाती है। यह क्षेत्र अतिशय विशाल तथा सभी पापों को नष्ट करने वाला है।

तत्र स्नात्वा दिवं यान्ति ये मृतास्तेऽपुनर्भवाः।
उपानही तथा सुप्तं देयमन्तर्ज्ञ काञ्छनम्॥ ३॥
भोजनं च यथाशक्ति तस्याव्यक्षयमुच्यते।
क्षरनि सर्वदानानि यज्ञदानं तपः क्रिया॥ ४॥

अक्षयं तत्पस्तं भृगुतीर्थे युधिष्ठिर।

यहाँ (नर्मदा में) स्नान कर मनुष्य मरणोपरान्त स्वर्ग को जाते हैं और उनका युनर्वन्म नहीं होता। इस भृगुतीर्थ में जाकर मनुष्य को दो पादुकाएँ तथा सोने का दान, या अन्न का दान करना चाहिये। यथाशक्ति भोजन भी करना चाहिये। यह सब अनन्त फल देने वाला कहा गया है। हे युधिष्ठिर! सभी प्रकार के दान, वज्र, तप तथा कर्म क्षीण हो जाते हैं परन्तु भृगुतीर्थ में किया हुआ तप अक्षय होता है।

तत्सैव तपसोयेण रुद्रेण विपुराणिणा॥५॥

साक्षियं तत्र कथितं भृगुतीर्थे युधिष्ठिर।

हे युधिष्ठिर! उन्हीं (महार्षि भृगु) की उग्र तपस्या से प्रसन्न होकर त्रिपुरारि रुद्र ने भृगुतीर्थ में स्वयं अपना साक्षिय कहा था अर्थात् सदैव शिव का वहाँ वास रहेगा।

ततो गच्छेत राजेन्द्र गौतमेश्वरमुत्तमम्॥६॥

यत्त्रारात्य त्रिशूलाङ्कू गौतमः सिद्धिमापदान्।

तत्र स्नात्वा नरो रावशुण्वासपरायणः॥७॥

कांचनेन विषानेन द्रुद्धालोके मर्हीयते।

राजेन्द्र! तदनन्तर उत्तम गौतमेश्वर (तीर्थ) में जाना चाहिये। वहाँ त्रिशूलधारी भगवान् शंकर की आराधना करके महार्षि गौतम ने सिद्धि प्राप्त की थी। हे राजेन्द्र! वहाँ (गौतमेश्वर तीर्थ में) स्नानकर उपवासपरायण होकर मनुष्य सोने के विमान द्वारा ब्रह्मलोक जाता है तथा वहाँ पूजित होता है।

वृषोत्सर्गं ततो गच्छेच्छाभृतं पदमानुयात्॥८॥

न जाननि नरा भूढा विष्णोर्मायाविमोहिताः।

तुपरान्त मनुष्य को (नर्मदा के तट पर स्थित) वृषोत्सर्ग-तीर्थ जाना चाहिए। यह शाक्त पद (मोक्ष) प्राप्त करता है। विष्णु की माया से मोहित मूढ़ व्यक्ति इस तीर्थ के प्रभाव को नहीं जानते।

धौतपापं ततो गच्छेद्वौतं यत्र वृषेण तु॥९॥

नर्पदायां स्थितं राजन्सर्वपातकनाशनम्।

तत्र तीर्थे नरः स्नात्वा ब्रह्महत्यां व्योहतिः॥१०॥

तत्र तीर्थे तु राजेन्द्र प्राणत्वागे करोति यः।

चतुर्भुजस्तिनेत्रश्च हरतुल्यवलो भवेत्॥११॥

वसेत्कल्प्यायुतं सात्रं शिवतुल्यपराक्रमः।

कालेन महता जातः पृथिव्यापेकराह भवेत्॥१२॥

इसके पश्चात् 'धौतपाप' नामक तीर्थ में जाना चाहिये,

जहाँ स्वयं वृषनामधारी भगवान् धर्म ने अपना पाप धोया था। हे राजेन्द्र! यह तीर्थ भी नर्मदा तट पर स्थित है और सभी पापों का नाश करने वाला है। उस तीर्थ में स्नानकर मनुष्य ब्रह्महत्या से मुक्त हो जाता है। और भी, हे राजेन्द्र! उस तीर्थ में जो मृत्यु समय अपने ग्राणों का त्याग करता है, वह चार भुजावाला, तीन नेत्रों वाला और शंकर के समान बलशाली हो जाता है। शिव के समान पराक्रमी होकर वह दस हजार कल्पों से भी अधिक समय तक शिवलोक में निवास करता है और बहुत समय के बाद वह पृथ्वी पर एक चक्रवर्ती राजा बनता है।

ततो गच्छेत राजेन्द्र हस्ततीर्थमनुत्तमम्।

तत्र स्नात्वा नरो राजद्वालोके मर्हीयते॥१३॥

ततो गच्छेत राजेन्द्र यत्र सिद्धो जनार्दनः।

वराहतीर्थमाञ्चातं विष्णुलोकगतिप्रदम्॥१४॥

हे राजेन्द्र! उसके बाद श्रेष्ठ हस्ततीर्थ में जाना चाहिये। राजेन्द्र! वहाँ स्नान करके मनुष्य ब्रह्मलोक में महान् प्रतिष्ठा प्राप्त करता है। राजेन्द्र! उसके बाद विष्णुलोक को गति देने वाले वराहतीर्थ नाम से प्रसिद्ध तीर्थ में जाना चाहिये, जहाँ जनार्दन ने सिद्धि प्राप्त की थी।

ततो गच्छेत राजेन्द्र चन्द्रतीर्थमनुत्तमम्।

पौर्णमास्या विशेषेण स्नानं तत्र समाचरेत्॥१५॥

स्नातमात्रो नरस्तत्र पृथिव्यापेकराह भवेत्।

राजेन्द्र! तदनन्तर श्रेष्ठ चन्द्रतीर्थ में जाना चाहिये। वहाँ विशेषरूप से पूर्णिमा के दिन स्नान करना चाहिये। वहाँ केवल स्नान करने से ही व्यक्ति चन्द्रलोक में पूजित होता है। राजेन्द्र! इसके पश्चात् अल्युतम कन्यातीर्थ में जाना चाहिये। वहाँ (किसी मास की) शुक्लपक्ष की तृतीया को स्नान करना चाहिये। वहाँ स्नानमात्र करने से व्यक्ति पृथ्वी में एकमात्र सप्ताह रहता है।

देवतीर्थं ततो गच्छेत्सर्वतीर्थमस्फृतम्॥१६॥

तत्र स्नात्वा च राजेन्द्र देवतैः सह मोदते।

तदनन्तर सभी देवताओं से वन्दित देवतीर्थ में जाना चाहिये। राजेन्द्र! वहाँ स्नान करके मनुष्य देवताओं के साथ आनन्द प्राप्त करता है।

ततो गच्छेत राजेन्द्र लक्ष्मितीर्थमनुत्तमम्॥१७॥

यतत्र दीयते दानं सर्वं कोटिगुणं भवेत्।

ततो गच्छेत राजेन्द्र तीर्थं पैतामहं शुभम्॥१८॥

यतत्र दीयते श्राद्धं सर्वं तस्याक्षं भवेत्।
सावित्रीतीर्थमासाद्य यस्तु प्राणान्परित्यजेत्॥ ११॥
विष्णुय सर्वपापानि ब्रह्मलोके महीयते।

राजेन्द्र! तदनन्तर श्रेष्ठ शंखितीर्थ में जाना चाहिये। वहाँ जो कुछ दान दिया जाता है, वह सब करोड़ गुना फलवाला हो जाता है। राजेन्द्र! शुभ पैतामह तीर्थ में भी जाना चाहिये। वहाँ जो श्राद्ध किया जाता है, वह अक्षय (फलवाला) हो जाता है। सावित्रीतीर्थ में पहुँचकर जो प्राणों का परित्याग करता है, वह सभी पापों को धोकर ब्रह्मलोक में महिमा प्राप्त करता है।

मनोहरनु तत्रैव तीर्थं परमशोभनम्॥ २०॥
तत्र स्नात्वा नरो राजन्मूलोके महीयते।
ततो गच्छेत राजेन्द्र कन्यातीर्थमनुज्ञम्॥ २१॥
स्नात्वा तत्र नरो राजन्मूलपापैः प्रमुच्यते।
शुक्लपक्षे तृतीयायां स्नानमात्रं समाचरेत्॥ २२॥
स्नातपात्रो नरसत्र पृथिव्यामेकराद् भवेत्।

वहाँ पर मनोहर नामक परम सुन्दर तीर्थ है। राजन्! वहाँ स्नानकर राजेन्द्र! मनुष्य रुद्रलोक में प्रतिष्ठित होता है। तदनन्तर उत्तम कन्यातीर्थ में जाना चाहिये। राजन्! वहाँ स्नान करके मनुष्य सब पापों से मुक्त हो जाता है। शुक्लपक्ष की तृतीया में केवल स्नान करना चाहिए। स्नान करने मात्र से ही मनुष्य पृथ्वी पर एकछत्र राजा हो जाता है।

सर्गविन्दुं ततो गच्छेत्तीर्थं देवनप्रस्कृतम्॥ २३॥
तत्र स्नात्वा नरो राजन्मूर्तिं वै न पश्यति।
अप्सरेशं ततो गच्छेत्सनानं तत्र समाचरेत्॥ २४॥
ऋडते नाकलोकस्यो हृष्परोगिः स पोदते।

तदुपरान्त देवताओं से नमस्कृत स्वर्गविन्दु नामक तीर्थ में जाना चाहिये। हे राजन्! वहाँ स्नान करने से मनुष्य कभी भी दुर्गति को नहीं देखता। इसके बाद अप्सरेश-तीर्थ में जाये और वहाँ स्नान करें। इससे वह स्वर्गलोक में रहते हुए ऋडा करता है और अप्सराओं के साथ आनन्द भोगता है।

ततो गच्छेत राजेन्द्र भारभूतिमनुज्ञम्॥ २५॥
उपोषितो यजतेशं रुद्रलोके महीयते।
अस्मिस्तीर्थं मृतो राजनाणपत्यमवानुयात्॥ २६॥
कार्तिके पासि देवेशपर्वदेवतार्तीपतिम्।
अक्षमेष्यादृशगुणं प्रवदन्ति मनीषिणः॥ २७॥
हे राजेन्द्र! तदनन्तर उत्तम भारभूति नामक तीर्थ में जाना

चाहिये। वहाँ उपवास करते हुए ईश्वर की आराधना करने से मनुष्य रुद्रलोक में प्रतिष्ठित होता है। राजन्! इस तीर्थ में मृत्यु पाने वाला शिव के गाणपत्य-पद को प्राप्त करता है। (यहाँ) कार्तिक मास में पार्वतीपति देवताओं के ईश शंकर की पूजा करनी चाहिये। इसका फल मनीषी लोग अक्षमेष्य के फल से भी दस गुना अधिक बताते हैं।

वृषभं यः प्रयच्छेत तत्र कुन्दनुसप्त्रम्।
वृषयुक्तेन यानेन रुद्रलोकं स गच्छति॥ २८॥

जो व्यक्ति यहाँ कुन्दपुष्य तथा इन्दु (चन्द्रमा) के समान श्वेतवर्णवाले वृषभ का दान करता है, वह बैलों से जोते हुए वाहन पर चढ़कर रुद्रलोक में जाता है।

एततीर्थं सप्तासाद्य यस्तु प्राणान् परित्यजेत्।
सर्वपापविनिर्मुक्तो रुद्रलोकं स गच्छति॥ २९॥
जलप्रवेशं यः कुर्यात्स्मिस्तीर्थं नराधिप।
हंसयुक्तेन यानेन स्वर्गलोकं स गच्छति॥ ३०॥

इस तीर्थ में पहुँचकर जो अपने प्राणों का त्याग करता है, वह सभी पापों से मुक्त होकर रुद्रलोक में जाता है। हे नराधिप! इस तीर्थ में जो जल में प्रवेश करता है (और प्राण त्यागता है), वह हंसों से युक्त वाहन पर विराजमान होकर स्वर्गलोक जाता है।

एरण्डी तर्षदोदायास्तु सहृष्टं लोकविश्रुतम्।
तत्र तीर्थं महापुण्यं सर्वपापश्चानम्॥ ३१॥
उपवासकृतो भूत्वा नित्यं द्रवतपरायणः।
तत्र स्नात्वा तु राजेन्द्र मृच्यते द्रव्यहत्याः॥ ३२॥

एरण्डी तथा नर्मदा का संगम स्थल लोक में विख्यात है। यह संगमरूपी तीर्थ महापुण्यमय और सभी पापों को नष्ट करने वाला है। इससिले, वहाँ उपवास करके नित्य द्रवतपरायण होना चाहिए। वहाँ स्नान करने वाला व्यक्ति द्रव्यहत्या के पाप से मुक्त हो जाता है।

ततो गच्छेत राजेन्द्र नर्मदोदायिसङ्गमम्।
जमदग्निपति ख्यातं सिद्धो यत्र जनार्दनः॥ ३३॥
तत्र स्नात्वा नरो राजन्मूर्तिदायिसंगमे।
त्रिगुणञ्जामृष्येष्य फलं प्राप्नोति मानवः॥ ३४॥

राजेन्द्र! तदनन्तर नर्मदा और सागर के संगम-स्थल में जाना चाहिये जो जमदग्नि तीर्थ रूप में विख्यात है। जहाँ जनार्दन विष्णु सिद्ध हुए थे। राजन्! वहाँ नर्मदा तथा सागर के संगम में स्नान करने से मनुष्य अक्षमेष्य से भी अधिक तीन गुना फल प्राप्त करता है।

ततो गच्छेत राजेन्द्र पिंगलेश्वरमुत्तमम्।
तत्र स्नात्या नरो राजन्ध्राह्लोके महीयते॥ ३५॥
तत्रोपवासं यः कृत्वा पश्येत पिंगलेश्वरम्।
सप्तमजन्मकृतं पापं हित्वा याति शिवालयम्॥ ३६॥
राजेन्द्र! इन सके बाद उत्तम पिंगलेश्वर तीर्थ में जाना चाहिये। राजन्! वहाँ स्नान करके मनुष्य ब्रह्मलोक में पूजित होता है। जो वहाँ उपवास करके पिंगलेश्वर का दर्शन करता है, वह सात जन्मों में किये पापों से मुक्त होकर शिवलोक में जाता है।

ततो गच्छेत राजेन्द्र अलितीर्थमनुत्तमम्।
उपोष्य रजनीभेदां नियतो नियताशनः॥ ३७॥
अस्य तीर्थस्य माहात्म्यानुच्यते ब्रह्महत्याया।
राजेन्द्र! वहाँ से उत्तम अलिका-तीर्थ में जाना चाहिये। वहाँ एक रात्रि उपवास करके संयत रहते हुए नियमपूर्वक सात्त्विक आहार करने से इस तीर्थ के माहात्म्य के कारण ब्रह्महत्या (के पाप) से मुक्त हो जाता है।
एतानि तत्र संक्षेपाद्याधान्यात्कवितानि च॥ ३८॥
न शक्या विसागद्वं संख्या तीर्थेषु पाण्डव।
हे पाण्डुपुत्र! मैंने जो ये तीर्थ कहे हैं वे संक्षेप में खास-खास ही बताये हैं। विस्तारपूर्वक इन नर्मदा-तीर्थों की संख्या का वर्णन नहीं किया जा सकता।

एषा पवित्रा विपुला नदी त्रैलोक्यविश्रुता॥ ३९॥
नर्मदा सरिता श्रेष्ठा महादेवस्य वल्लभा।
मनसा संस्मरेद्यस्तु नर्मदा वै युधिष्ठिर॥ ४०॥
चान्द्रायणशतं सात्रै लपते नात्र संशयः।
यह पवित्र तथा स्वच्छ जलवाली नर्मदा नदी तीनों लोकों में विख्यात है। नर्मदा सभी नदियों में श्रेष्ठ है और महादेव को अतिप्रिय है। युधिष्ठिर! जो मन से भी नर्मदा का स्मरण करता है, वह सौ चान्द्रायण ब्रत करने से भी अधिक फल प्राप्त करता है, इसमें संशय नहीं है।

अश्रहथानाः पुरुषा नास्तिक्यं घोरमात्रिताः॥ ४१॥
पतन्ति नरके घोर इत्याह परमेश्वरः।
नर्मदां सेवते नित्यं स्वयं देवो महेश्वरः।
तेन पुण्या नदी ज्ञेया ब्रह्महत्यापहारिणी॥ ४२॥
परन्तु जो श्रद्धाविहीन तथा घोर नास्तिकता का आश्रय लेते हैं वे भीषण नरक में गिरते हैं, ऐसा परमेश्वर शंकर ने कहा है। यह भी कि स्वयं देव महेश्वर सदा नर्मदा का सेवन

करते हैं, अतः इस पवित्र नदी को पुण्यकारक जानना चाहिए जो ब्रह्महत्या जैसे पापों को दूर करने वाली है।

इति श्रीकूर्मपुराणे उत्तरार्द्धे नर्मदाप्राहात्म्ये
ब्रह्मत्वारिशोऽध्यायः॥ ४२॥

त्रिचत्वारिशोऽध्यायः
(नर्मदा नदी के तीर्थों का माहात्म्य)

सूत उवाच

इदं त्रैलोक्यविख्यातं तीर्थं नैषिषमुत्तमम्।
महादेवप्रियतरं महापातकनाशनम्॥ १॥
महादेवं दिदक्षुणापूर्णीणां परमेष्ठिना।
ब्रह्मणा निर्मितं स्थानं तपस्तमुं हिंजोत्पाः॥ २॥
सूतजी ने कहा— तीनों लोकों में विख्यात यह उत्तम नैषिष नामक तीर्थ महादेव को परम प्रिय तथा महापातकों को नष्ट करने वाला है। हिंजोत्पाः! ब्रह्मजी ने इस स्थान का निर्माण महादेव का दर्शन करने की इच्छा बाले उन ऋषियों के लिये की है, जो वहाँ तपस्या करना चाहते हैं।

परीचयोऽत्र ये विप्रा वसिष्ठः क्रतवस्तवा।
भृगवोऽह्मिरमः पूर्वं ब्रह्माणं कमलोद्धवम्॥ ३॥
समेत्य सर्ववरदं चतुर्मूर्तिं चतुर्मुखम्।
पृष्ठान्ति प्रणिषत्यैनं विश्वकर्माणमव्यव्याप्॥ ४॥
ब्राह्मणो! यहाँ पर पूर्व काल में भरीचि, अत्रि, वसिष्ठ, क्रतु, भृगु तथा अंगिरा के वंश में उत्पन्न जो ऋषिगण थे, उन्होंने सभी प्रकार का वर देने वाले, कमलोद्धव, चतुर्मूर्ति, चतुर्मुख, अव्यय, विश्वकर्मा ब्रह्मा को प्रणाम कर उनसे पूछा—

पटकुलीया ऊः

भगवन्देवमीशानं तपेदैकं कर्पदिनम्।
केनोपायेन पश्यामो द्वृहि देव नपस्तव॥ ५॥
पटकुलोत्पत्र ऋषियों ने पूछा— हे भगवन्! हे देव! हम किस उपाय से अद्वितीय तेजस्वी, कपर्दी, ईशान देव का दर्शन करें (यह बताने की कृपा करें)।

ब्रह्मोवाच

सत्रं सहस्रमासञ्च वाह्मनोदोषवर्जिताः।
देशङ्ग वः प्रवस्थामि चस्मिन्देशे चरिष्यथ॥ ६॥

मुक्त्वा मनोपयं चक्रं संस्पृष्टा तानुवाच ह।

क्षिप्तेतन्मया चक्रमनुवजत मा चिरम्॥७॥

ब्रह्मा ने कहा— आप सब बाणी तथा मन के दोषों से रहित होकर हजार यज्ञविशेष-सत्र सम्पन्न करें। मैं वह स्थान आप लोगों को बताता हूँ, जहाँ आप यज्ञ करेंगे। ऐसा कहकर ब्रह्माजी ने एक मनोमय चक्र का निर्माण करके उन (ऋषियों) से कहा— मेरे द्वारा छोड़े गये इस चक्र का आप लोग शोध रही पीछा करें।

यत्रास्य नेमि: शीर्यंत स देशस्तपसः शुभः।

ततो मुपोच तद्ब्रं ते च तत्समनुवजन्॥८॥

तस्य वै वजतः क्षिप्रं यत्र नेमिरशीर्यं।

नैमिषं तत् स्मृतं नामा पुण्यं सर्वत्र पूजितम्॥९॥

सिद्धचारणसंपूर्णं यज्ञगव्यर्वसेवितम्।

स्वानं भगवतः शशोरेतत्रैभिषमुत्तम्॥१०॥

जिस स्थान पर इस (चक्र) की नेमि शीर्ण होगी (गिरकर टूटेगी) वहाँ स्थान तपस्या एवं यज्ञ करने का शुभ स्थान होगा। तब ब्रह्मा ने उस (मनोमय) चक्र को छोड़ा और ऋषि भी उस चक्र के पीछे-पीछे जाने लगे। शोध गति से जा रहे उस चक्र की नेमि जहाँ (शीर्ण हुई) गिरी, वह स्थल नैमित्त नाम से प्रसिद्ध हुआ। वह पवित्र तथा सर्वत्र पूजित हुआ। सिद्धों तथा चारणों से परिपूर्ण, यक्षों-गन्धर्वों से सेवित यह उत्तम नैमिष भगवान् शम्भु का स्थान है।

अत्र देवाः सगच्छार्वाः सथक्षोरगराक्षसाः।

तपसस्त्वा पुरा देवा लेभिरे प्रवरान्वरान्॥११॥

इमं देशं सप्तश्रित्य पट्टकुलीयाः सप्ताहिताः।

सद्वेणारव्यं देवेशं दृष्टवनो महेश्वरम्॥१२॥

प्राचीन काल में यहाँ पर तपस्या करके देवताओं, गन्धर्वों, यक्षों, नागों और राक्षसों ने श्रेष्ठ वरों को प्राप्त किया था। पूर्वोक्त (मरीचि आदि छ) कुलों के ऋषियों ने इस देश में रहते हुए एकाग्रतापूर्वक यज्ञानुषान द्वारा देवेश की आराधना कर महेश्वर का दर्शन किया था।

अत्रदानं तपस्तां श्राद्यागादिकङ्ग यत्।

एकैकं नाशवेत्पाणं सप्तजन्मकृतं तथा॥१३॥

द्विजो! यहाँ पर किया गया अत्रदान, तप, श्राद्य-याग आदि कोई भी शुभ कर्म अकेले ही सात जन्मों के पापों को नह कर देता है।

अत्र पूर्वं स भगवान् वीणां सत्रमासताम्।

स वै श्रोवाच ब्रह्माण्डं पुराणं ब्रह्मावितम्॥१४॥

अत्र देवो महादेवो स्त्राण्या किल विश्वदृक्।

रपतेऽद्यापि भगवान्द्रमयैः परिवारितः॥१५॥

यहीं पर प्राचीन काल में यज्ञ करके बैठे हुए उन ऋषियों को भगवान् शंकर ने ब्रह्म-परमेश्वर की भावना से भावित ब्रह्माण्ड पुराण को सुनाया था। आज भी वहाँ विश्व की सृष्टि करने वाले भगवान् महादेव प्रमथगणों के परिवार से युक्त होकर स्त्रीणी के साथ रमण करते हैं।

अत्र प्राणान् परित्यज्य नियमेन द्विजातयः।

ब्रह्मलोकं गमिष्यन्ति यत्र गत्वा न जायते॥१६॥

इस क्षेत्र में नियमपूर्वक यहाँ वास करते हुए द्विजाति के लोग ग्राणों का त्याग करते हैं, वे उस ब्रह्मलोक में जाते हैं, जहाँ जाकर पुनः जन्म नहीं लेना पड़ता।

अन्यथा तीर्थप्रवर्त जायेश्वरमित्रुतम्।

जज्ञाप रुद्रपनिशं यत्र नन्दी महागणः॥१७॥

प्रीतसत्यं महादेवो देव्या सह पिनाकशृक्।

ददावात्मसमानत्वं मृत्युवञ्चनमेव च॥१८॥

एक दूसरा तीर्थों में श्रेष्ठ तीर्थ है, जो जायेश्वर नाम से प्रसिद्ध है, जहाँ महान् गण नन्दी निरन्तर रुद्रस्तोत्र का जप करते रहते थे। इससे प्रसन्न होकर पिनाकपाणि रुद्र-महादेव देवों के साथ प्रत्यक्ष हुए थे और उन्होंने नन्दी को अपनी समानता तथा मृत्यु से रहितत्व का वर प्रदान किया था।

अभूदृषिः स धर्मात्मा शिलादो नाम धर्मवित्।

आराध्यन्महादेवं प्रसादार्थं वृक्षवजम्॥१९॥

तस्य वर्षसहस्रान्ते तथामानस्य विश्वशृक्।

शर्वः सोमो गणद्वतो वरदोऽसीत्यभावता॥२०॥

(इस नन्दी के ग्रादुभाँव की कथा इस प्रकार है) शिलाद नाम के एक धर्मज्ञ धर्मात्मा ऋषि हुए, उन्होंने पुत्र प्राप्ति के लिये (इसी क्षेत्र में) वृषभध्वज महादेव की आराधना की। ऐसा तप करते हुए उनके हजार वर्ष व्यतीत हो गये। तब अन्न में वे विश्वभर्ता शर्व शिव ने अपने गणों के साथ वहाँ प्रकट होकर 'मैं वर दूँगा' ऐसा कहा।

स वद्वे वरमीशानं वरेण्यं गिरिजापतिम्।

अयोनिजं मृतुहीनं यत्वे पुत्रं त्वया समप्॥२१॥

तथास्तिवत्याह भगवान्देव्या सह महेश्वरः।

पश्यतस्तस्य विप्रर्वेन्द्रद्वानं गतो हरः॥२२॥

उस (शिलाद ऋषि) ने भी वरेण्य गिरिजापति ईशान से वर मांगा कि मुझे आप मृत्यु से रहित अपने ही समान

अयोनिज युत्र प्रदान करें। देवी पार्वती के साथ भगवान् महेश्वर ने 'ऐसा ही हो' कहा और उन विश्रिति के देखते-देखते वे अन्तर्धान हो गये।

ततो युयोज तां भूमि शिलादो धर्मवित्तमः।
चकर्ष लांगलेनोर्वीं भित्त्वादृश्यत शोभनः॥ २३॥
संवर्तकोऽनलप्रख्यः कुमारः प्रहसन्निवा।
रूपलावण्यसम्प्रसोजसा भासयन्दिशः॥ २४॥
कुमारतुल्योऽप्रतिमो मेघगम्भीरया गिरा।
शिलादं तातु ततोति प्राह नन्दी पुनः पुनः॥ २५॥
तं दृष्टा नन्दनं जातं शिलादः परिष्वक्ष्ये।
मुनीनां दर्शयामास तत्रामनिवासिनाम्॥ २६॥

तदनन्तर धर्मवेता शिलाद ने उस भूमि को चक्र करने की इच्छा से हल द्वारा जोता। पृथ्वी का भेदन करने पर उन्होंने संवर्तक नामक अग्नि के समान, रूप तथा लावण्य से सम्पन्न और अपने तेज से दिशाओं को प्रकाशित करने वाले, हँसते हुए एक सुन्दर कुमार को देखा। वह कुमार कर्तिकेय के समान अनुपम था, उसने मेघ-सदृश गम्भीर वाणी में शिलाद को बार-बार 'तात' 'तात' ऐसा कहा, अतः वह 'नन्दी' (आनन्द देने वाला) इस नाम से विख्यात हुआ। उस आनन्ददायी पुत्र को आविर्भूत देखकर शिलाद ने उसका आलिङ्गन किया और उस आश्रम में रहने वाले मुनियों को उसे दिखाया।

जातकर्मदिकाः सर्वाः कियास्तस्य चकार ह।
उपनीय यथाशास्त्रं वेदमध्यापयत् स्वयम्॥ २७॥
अथीतवेदो भगवान्नन्दी मतिमनुनमाम्।
चक्रं महेश्वरं दृष्ट्य जेये मृत्युनिव प्रभुम्॥ २८॥

अनन्तर इष्टिपुरुष नन्दी के जातकर्म आदि सभी संस्कार किये और शास्त्रविधि से उपनयन-संस्कार कर वेद पढ़ाया। वेदाध्ययन के अनन्तर भगवान् नन्दी ने एक उत्तम विचार किया कि प्रभु महेश्वर का दर्शनकर मैं मृत्यु को जीतूँगा।

स गत्वा सागरं पुण्ययेकात्रः श्रद्धाव्यन्वितः।
जाजाप रुद्रपनिशः महेशासक्त्यामासः॥ २९॥
तस्य कोट्याङ्गं पूर्णायां शङ्कुरो भक्तवत्सलः।
आगतः सर्वसगणो वरदोऽस्मीत्यापात॥ ३०॥

ऐसा निष्ठय करके वे सागर के पवित्र तट पर जाकर एकाग्र तथा श्रद्धायुक्त होकर निरन्तर महेश्वर में मन को आसक्त करके रुद्रस्तोत्र का जप करना प्रारम्भ कर दिया।

उनके द्वारा एक करोड़ जप की संख्या पूर्ण होने पर भक्तवत्सल शंकर ने अपने गणों तथा पार्वती के साथ वहाँ आये और बोले- 'मैं वर देने के लिए तत्पर हूँ'।

स वदे पुनरेवेशं जपेयं कोटिपीश्वरम्।
भवदाह महादेव देहीति परमेश्वरम्॥ ३१॥
एवमस्तिविति संप्रोच्य देवोऽप्यनस्यीयत।

तब नन्दी ने (वर माँगते हुए) कहा— महादेव ! मैं पुनः ईश्वर का एक करोड़ जप करना चाहता हूँ, आप मुझे उतनी ही आयु मुझे प्राप्त हो, ऐसा वरदान दें। तब विश्वात्मा शंकर 'ऐसा ही हो' कहकर देवी पार्वती सहित अन्तर्धान हो गये।

जजाप कोटि भगवान् भूयस्तद्गतपानसः॥ ३२॥
द्वितीयायाङ्गं कोट्यां वै पूर्णायाङ्गं वृषभ्यजः।
आगत्य वरदोऽस्मीति प्राह भूतगणैर्वृतः॥ ३३॥
तृतीयाङ्गुमुपिच्छामि कोटि भूयोऽपि शङ्कुर।
तथास्तिवत्याह विश्वात्मा देव्या चांतस्यीयत॥ ३४॥
कोटित्रयेऽथ सम्पूर्णं देवः प्रीतमनभृशम्।
आगत्य वरदोऽस्मीति प्राह भूतगणैर्वृतः॥ ३५॥

तब पुनः भगवान् नन्दी ने शिवजी में मन एकाग्र करते हुए एक करोड़ की संख्या में जप किया। दो करोड़ जप पूरे हो जाने पर पुनः भूतगणों से आवृत वृषभ्यज (शंकर) ने वहाँ आकर 'मैं वह प्रदान करता हूँ' ऐसा कहा। (तब नन्दी ने कहा—) प्रभु शंकर ! मैं पुनः तीसरी बार एक करोड़ जप करना चाहता हूँ। 'ऐसा ही हो' कहकर विश्वात्मा देव पुनः अन्तर्धान हो गये। तीन करोड़ जप पूरा होने पर भूतगणों के साथ, अत्यन्त प्रसन्न मन होकर, देव (शंकर) ने वहाँ आकर कहा— 'मैं वर दूँगा'।

जपेयं कोटिपन्थां वै भूयोऽपि तत्वं तेजसा।
इत्पुक्ते भगवानाह न जपत्य त्वया पुनः॥ ३६॥
अपरो जरया त्वत्तो मम पार्श्वे गतः सदा।
महागणपतिर्देव्याः पुत्रो भव महेश्वरः॥ ३७॥
योगेश्वरो महायोगी गणानामैश्वरेश्वरः।
सर्वलोकाधिपः श्रीमान् सर्वज्ञमयो हितः॥ ३८॥

(नन्दी ने कहा—) मैं आपके तेज से पुनः करोड़ की संख्या में जप करना चाहता हूँ। ऐसा कहे जाने पर भगवान् ने कहा— अब तुम्हें आगे जप नहीं करने की आवश्यकता नहीं है। तुम अब वृद्धावस्था से रहित और मृत्यु रहित होकर सदा मेरे समीप में स्थित रहोगे। तुम देवी (पार्वती) के पुत्र,

मेरे गणों के अधिपति एवं महान् ईश्वर होओगे। तुम योगीश्वर, महायोगी, गणों के ईश्वरों के भी ईश्वर, सभी लोकों के अधिपति, श्रीमान् सर्वज्ञ और मेरी शक्ति से युक्त रहोगे।

ज्ञानं तप्रामकं दिव्यं हस्तामलकसंज्ञितम्।

आभूतसंस्तवस्थायो ततो यास्यसि तत्पदम्॥ ३१॥

मेरा जो दिव्य ज्ञान है, वह तुम्हें हाथ में रखे औंवले की तरह स्पष्ट दिखाई देगा। तुम महाप्रलय के समय तक इसी रूप में रिश्वत रहोगे और उसके बाद उस मोक्षपद को प्राप्त करोगे।

एतदुक्तवा महादेवो गणानाहृय शङ्करः।

अधिषेकेण युक्तेन नन्दीश्वरमयोजयत्॥ ४०॥

उद्घात्यामास च तं स्वयमेव पिनाकश्चक्।

परुताञ्जु शुभां कन्यां स्वयमेति च विष्णुताम्॥ ४१॥

इतना कह कर महादेव शंकर ने अपने गणों को बुलाकर उस नन्दीश्वर को गणों के अधिपति के पद पर अधिषेक-विधि से नियुक्त किया। पिनाकधारी शंकर ने स्वयं ही बायुदेव की शुभ कन्या ‘सुयशा’ का उसके साथ इनका विवाह कर दिया।

एतज्ञायेश्वरं स्थानं देवदेवस्य शूलिनः।

यत्र तत्र पृतो पत्त्वा रुद्रलोके महीयते॥ ४२॥

देवाधिदेव शूली शंकर का यह स्थान जायेश्वर (नन्दी द्वारा जप करके सिद्धि प्राप्त किया हुआ स्थान) नाम से विलगता है। यहाँ जहाँ कहाँ भी मनुष्य शरीर त्याग करता है, वह रुद्रलोक में प्रतिष्ठा प्राप्त करता है।

इति श्रीकृष्णपुराणे उत्तरार्द्धे जायेश्वरमाहात्म्ये
क्रियत्वारिंशोऽध्यायः॥ ४३॥

चतुश्छत्वारिंशोऽध्यायः

(तीर्थों का माहात्म्य)

सूत उत्ताप

अन्यद्व तीर्थप्रवरं जायेश्वरसमीपतः।

नामा यज्ञनदं पुण्यं सर्वपापाणाशनम्॥ १॥

त्रिग्रात्रमुषितसत्र पूजयिता महेश्वरम्।

सर्वपापविशुद्धात्मा रुद्रलोके महीयते॥ २॥

सूतजी ने कहा—जायेश्वर के समीप में ही यज्ञनद नामका एक दूसरा श्रेष्ठ तीर्थ है, जो पवित्र तथा सभी पापों का नाश

करने वाला है। वहाँ तीन रात्रिपर्वत उपवास कर महेश्वर को पूजा करने से मनुष्य सभी पापों से मुक्त हो जाता है तथा विशुद्ध आत्मावाला होकर रुद्रलोक में प्रतिष्ठित होता है।

अन्यद्व तीर्थप्रवरं शक्तस्याभिततेजसः।

महाभैरवमित्युक्तं महापातकानशनम्॥ ३॥

तीर्थानाङ्ग परं तीर्थं वितस्ता परमा नदी।

सर्वपापहरा पुण्या स्वयमेव गिरीन्द्रज्ञा॥ ४॥

अमित तेजस्वी इन्द्र का एक दूसरा श्रेष्ठ तीर्थ है जो महाभैरव नाम से कहा गया है, वह महापातकों का विनाश करने वाला है। वितस्ता नामक श्रेष्ठ नदी तीर्थों में श्रेष्ठ तीर्थ है, वह सभी पापों को हरने वाली, पवित्र और साक्षात् पार्वतीरूप ही है।

तीर्थं पञ्चतयो नामं शंभोरमिततेजसः।

यत्र देवायिदेवेन चक्रार्थं पूजितो भवः॥ ५॥

पिण्डदानादिकं तत्र प्रेत्यानन्दसुखप्रदम्।

मृतस्तत्रात्य नियमादव्यालोके महीयते॥ ६॥

अमित तेजस्वी शंभु का पञ्चतप नामका एक तीर्थ है, जहाँ देवों के आदिदेव (विष्णु) ने चक्र-प्राप्ति के लिये शंकर की पूजा की थी। उस तीर्थ में किया गया पिण्डदानादि कर्म परलोक में आनन्द सुख देने वाला होता है। वहाँ रहकर नियम-ब्रत करने से यथासमय मृत्यु के बाद मनुष्य व्रायलोक में पूजित होता है।

कायावरोहणं नामं महादेवालयं शुभम्।

यत्र माहेश्वरा धर्मा मुनिभिः संप्रवत्तिताः॥ ७॥

श्राद्धं दानं तपो होमं उपवासस्ताक्षयः।

परित्यजिति यः प्राणानरुद्रलोकं स गच्छति॥ ८॥

इसके अतिरिक्त कायावरोहण नाम का महादेव का एक शुभ स्थान (तीर्थ) है, जहाँ मुनियों ने महेश्वर-संबन्धी धर्मों का प्रवर्तन किया था। वहाँ किया गया श्राद्ध, दान, तप, होम तथा उपवास अक्षय (फल प्रदान करने वाला) होता है। वहाँ जो प्राण त्याग करता है, वह रुद्रलोक में जाता है।

अन्यद्व तीर्थप्रवरं कन्यातीर्थमनुतप्तम्।

तत्र गत्वा त्यजेत्वाणांत्लोकान् प्राज्ञोति शाश्वतान्॥ ९॥

एक दूसरा श्रेष्ठ तीर्थ कन्यातीर्थ नाम से विलगता है। वहाँ जाकर जो प्राणों का त्याग करता है, वह शाश्वत लोकों को प्राप्त करता है।

जापदान्यस्य च शुभं रामस्याक्षित्वाकर्मणः।

तत्र स्नात्वा तीर्थवरे गोसहस्रफलं लभेत्॥ १०॥
महाकालमिति ख्यातं तीर्थं लोकेषु विश्वतम्।
गत्वा प्राणान् परित्यज्य गाणपत्यमवाप्नुयात्॥ ११॥
गुह्यादगुह्यतमं तीर्थं नकुलीश्वरमुत्तमम्।
तत्र सत्रिहितः श्रीमान् भगवान्नकुलीश्वरः॥ १२॥

जगदग्नि के पुत्र अविलक्षकर्मा परशुराम का भी एक शुभ तीर्थ है। उस तीर्थ-श्रेष्ठ में स्नान करने से हजार गोदान का फल प्राप्त होता है। एक अन्य महाकाल नाम से विख्यात तीर्थ तीनों लोकों में प्रसिद्ध है। वहाँ जाकर प्राणों का परित्याग करने से शिवगणों का अधिष्ठितत्व पद प्राप्त होता है। (वहाँ) श्रेष्ठ नकुलीश्वर तीर्थ गुह्यस्थानों में भी अत्यन्त गुह्य है। वहाँ श्रीमान् भगवान् नकुलीश्वर विराजमान रहते हैं।

हिमवच्छिन्नारे रथ्ये गंगाद्वारे सुशोभते।
देव्या सह महादेवो नित्यं शिष्टैष्टु समृतः॥ १३॥
तत्र स्नात्वा महादेवं पूजयित्वा वृक्षवज्रम्।
सर्वपापैविशुद्धेते भूतस्तज्ज्ञानमाप्नुयात्॥ १४॥

हिमालय के रमणीय शिखर पर स्थित अल्पन्त सुन्दर गङ्गाद्वार नामक तीर्थ है, वहाँ शिल्पों से घिरे हुए महादेव देवी के साथ नित्य निवास करते हैं। वहाँ स्नानकर वृथभृथज महादेव की पूजा करने से मनुष्य सभी पापों से मुक्त हो जाता है और मृत्यु के बाद परम ज्ञान प्राप्त करता है।

अन्यद्य देवदेवस्य स्थानं पुण्यतमं शुभम्।
भीमेश्वरपिति ख्यातं गत्वा मुक्तिं पापकम्॥ १५॥
तथान्यशुण्डवेगायाः सर्वेदः पापनाशनः।
तत्र स्नात्वा च पीत्वा च मुच्यते ब्रह्महत्याः॥ १६॥

देवाधिदेव (शंकर) का एक दूसरा शुभ तथा पवित्रतम स्थान है जो भीमेश्वर इस नाम से विख्यात है। वहाँ जाने से व्यक्ति पाप से मुक्त हो जाता है। इसी प्रकार चण्डवेगा नदी का संगम भी है, जो पापों का नाश करने वाला है। वहाँ स्नान करने तथा जल का पान करने से मनुष्य ब्रह्महत्या से मुक्त हो जाता है।

सर्वेषामपि दीतेषां तीर्थानां परपा पुरी।
नामा वाराणसी दिव्या कोटिकोट्ययुतायिका॥ १७॥
तस्याः पुरस्तान्माहात्म्यं भाषितं वो भया त्विह।
नान्यत्र लभते मुक्ति योगेनाप्येकजन्मना॥ १८॥

इन उपर्युक्त सभी तीर्थों में श्रेष्ठ वाराणसी नाम की नगरी अति दिव्य होने से कोटिगुना अधिक तीर्थों से युक्त है। इस

कारण पूर्व में मैंने आप लोगों से उसके माहात्म्य का वर्णन भी किया था। क्योंकि अन्य तीर्थ में योग के द्वारा एक जन्म में मुक्ति नहीं मिलती है।

एते प्राणान्यतः प्रोक्ता देशाः पापहरा नृणाम्।
गत्वा संक्षालयेत्यापं जन्मान्तरशतैरपि॥ १९॥
यः स्वयमान् परित्यज्य तीर्थसेवा करोति हि।
न तस्य फलते तीर्थमिह लोके परत्र च॥ २०॥

उपर्युक्त जो मुख्य-मुख्य तीर्थ बताये गये हैं वे सभी मनुष्यों के पापों को हरने वाले हैं। वहाँ जाकर सैकड़ों जन्मों में किये पापों को धो देना चाहिये। परन्तु (यह अच्छी प्रकार जान लें कि) जो अपने धर्मों का परित्याग कर तीर्थों का सेवन करता है, उसके लिये कोई भी तीर्थ न तो इस लोक में फलदायी होता है, न परलोक में।

प्रायश्चित्ती च विधुरस्तथा चायावरो गृही।
प्रकुर्यातीर्थसेवो यश्चान्यस्तादृशो जनः॥ २१॥
सहानिर्वा सपलोको गच्छेत्तीर्थानि यत्वतः।
सर्वपापविनिर्मुक्तो यथोक्तां गतिमाप्नुयात्॥ २२॥
ऋणानि त्रीण्यपाकुर्यात्कुर्वन्वा तीर्थसेवनम्।
विद्याय वृत्तिं पुराणां भार्या तेषु विद्याय च॥ २३॥

जो ग्रायश्चित्ती हो, पक्षी से रहित विधुर हो तथा जिनके द्वारा पाप हो गया है ऐसे गृहस्थ एवं इसी प्रकार के जो अन्य लोग हैं, उन्हें (पक्षात्पापूर्वक यथाशास्त्र) तीर्थों का सेवन करना चाहिये। और भी जो अग्निहोत्री हो, उसे अग्नि को साथ लेकर तथा पक्षी के साथ सावधानीपूर्वक तीर्थों में भ्रमण करना चाहिये। ऐसा करने से मनुष्य समस्त पापों से मुक्त होकर उत्तम गति को प्राप्त करता है। अथवा मनुष्य को अपने तीनों ऋणों (देव, पितृ, मनुष्य) से मुक्त होने के बाद पुत्रों के लिये जीविका-सम्बन्धी वृत्ति की व्यवस्था कर और उन्हों अपनी पक्षी को सौंपकर तीर्थ का सेवन करना चाहिये।

प्रायश्चित्तप्रसङ्गेन तीर्थमाहात्म्यमीरितम्।
यः पठेच्छणुयाद्वापि सर्वपापैः प्रमुच्यते॥ २४॥

इस प्रकार यहाँ प्रायश्चित्त के प्रसंगवश तीर्थों का माहात्म्य कहा गया है। इसका जो पाठ करता है अथवा सुनता है, वह सभी पापों से मुक्त हो जाता है।

इति श्रीकूर्मपुराणे उत्तराद्देवं तीर्थमाहात्म्यं नाम
चतुर्थात्मार्दिशोऽव्यावः॥ ४४॥

पञ्चचत्वारिंशोऽध्यायः
(सृष्टि के प्रलय का वर्णन)

सूत उवाच

एतदाकर्ण्य विज्ञानं नारायणमुखेरितम्।
कूर्मरूपरं देवं प्रपञ्चुमुनयः प्रभुम्॥ १॥

सूतजी ने कहा—नारायण के मुख से कहे गये इस विशिष्ट ज्ञान को सुनकर पुनः मुनियों ने दिल्य कूर्मरूपथारी भगवान् से पूछा—

मुनय ऊः:

कथितो भवता थर्मो मोक्षज्ञानं सविस्तरम्।
लोकानां सर्वविस्तारो वंशो मन्वन्तराणि च॥ २॥
इदानीं देवदेवेश प्रलयं बुर्महर्मसि।
भूतानां भूतप्रव्येश यथा पूर्वं त्वयोदितम्॥ ३॥

मुनियों ने कहा—आपने वर्णाक्रम थर्म, मोक्षसंबन्धी ज्ञान, लोकों की सृष्टि और मन्वन्तर के विषय में विस्तार पूर्वक बताया है। अब हे भूत और भविष्य के ईश्वर! आप प्राणी पदार्थों का जो प्रलय पहले जिस क्रम से कह चुके हैं, वह पुनः कहो।

सूत उवाच

श्रुत्वा तेषां तदा वाक्यं भगवान् कूर्मरूपष्वक्।
व्याजहार महायोगी भूतानां प्रतिसङ्घरम्॥ ४॥

सूतजी बोले—उन ऋषियों का वचन सुनने के पश्चात् कूर्मरूपथारी महायोगी भगवान् ने भूतों के प्रलय के विषय में कहना प्रारम्भ किया।

कूर्म उवाच

नित्यो नैमित्तिकश्चैव प्राकृतोऽत्यनिकसत्या।
चतुर्द्वार्यं पुराणोऽस्मिन् प्रोच्यते प्रतिसङ्घरः॥ ५॥

योऽयं सन्दृश्यते नित्यं लोके भूतक्षयस्तिव्वह।
नित्यः संकीर्त्यते नामा मुनिभिः प्रतिसङ्घरः॥ ६॥

व्रह्मनैमित्तिको नाम कल्पाने यो भविष्यति।
ब्रैलोक्यव्यास्य कथितः प्रतिसर्गो मनीषिभिः॥ ७॥

महदायं विशेषानं यदा संयाति संक्षयम्।
प्राकृतः प्रतिसर्गोऽयं प्रोच्यते कालचिनकैः॥ ८॥

ज्ञानादात्यनिकः प्रोक्तो योगिनः परमात्मनि।
प्रलयः प्रतिसर्गोऽयं कालचिननापर्वैर्हित्यैः॥ ९॥

कूर्मरूपी ईश्वर ने कहा—इस पुराण में नित्य, नैमित्तिक, प्राकृत तथा आत्यनिक—इस प्रकार चार प्रकार का प्रतिसंचर (प्रलय) कहा गया है। लोक में यहाँ जो प्राणियों का नित्य क्षय दिखलायी देता है, उसे मुनियों ने नित्य-प्रलय कहा है। कल्पान में ब्रह्मा (को निद्रा) के निमित्त से होने वाली तीनों लोकों के प्रतिसर्ग-प्रलय को विद्वानों ने (नैमित्तिक प्रलय) कहा है। भहतत्व से लेकर विशेषपर्यन्त समस्त तत्त्वों का जो क्षय हो जाता है, उसे कालचिनकों ने प्राकृत प्रतिसर्ग कहा है और ज्ञान द्वारा योगियों का परमात्मा में लय हो जाता है, उसे कालचिनकों ने आत्यनिक प्रलय कहा है।

आत्यनिकस्तु कथितः प्रलयो ज्ञानसाधनः।
नैमित्तिकपिदानीं वः कथयिष्ये समाप्ततः॥ १०॥

यहाँ साधनसहित आत्यनिक प्रलय अर्थात् मोक्ष का वर्णन किया गया है। अब मैं संक्षेप में आप लोकों को नैमित्तिक प्रलय के विषय में बतलाऊँगा।

चतुर्वृहसंहस्रान्ते सम्प्राप्ते प्रतिसङ्घरे।
स्वात्मसंस्था: प्रजाः कर्तुं प्रतिपेदे प्रजापतिः॥ ११॥

ततोऽभवत्वनावृष्टिस्तीक्ष्णा सा शतवार्षिकी।
भूतक्षयकरी घोरा सर्वभूतक्षयकरी॥ १२॥

ततो यात्यन्त्यसाराणि सत्त्वानि पृथिवीपते।
तानि चाये प्रलीयन्ते भूमित्वपुष्पयानि च॥ १३॥

चार हजार वर्षों का अन्त हो जाने पर प्रलय काल आने पर प्रजापति ब्रह्मा ने समस्त प्रजाओं को अपने अन्दर स्थिर करने का मन बनाया। उस के बाद सौ वर्षों तक तीव्र अनावृष्टि चलती रही अर्थात् सूखा पड़ा। इसने प्राणी मात्र नष्ट कर दिया क्योंकि यह अनावृष्टि समस्त भूतों के लिए नाशकारक होती है। इसलिए इस पृथ्वी पर जो प्राणी कम शक्ति वाले होते हैं, वे तो सबसे पहले नष्ट हो जाते हैं, और पृथ्वी रुप बन जाते हैं।

सप्तरश्मिरयो भूत्वा समुत्तिष्ठदिवाकरः।
अमहारश्मिर्वति पिबन्नप्यो गपस्तिष्ठिः॥ १४॥

तस्य ते रश्मयः सप्त पिबन्नप्यु महार्णवे।
तेनाहारेण ता दीप्त्वा सप्तमूर्या भवन्त्युता॥ १५॥

इसके बाद सूर्य भी सात किरणों से युक्त होकर उदित होता हुआ असह किरणों वाला हो जाता है। वह अपनी किरणों से पृथ्वी के अन्दर विद्यमान जल को पीने लगता है।

इस प्रकार सूर्य की सात किरणें महासागर के मध्य स्थित जल को सोख लेती हैं और उस आहार के माध्यम से वे सूर्य वास्तव में सात संख्या बाले बन जाते हैं।

ततस्ते रश्मयः सप्त शोषयित्वा चतुर्दिशम्।
चतुर्लोकपिं सर्वं दहनि शिखिनो यथा॥ १६॥
व्यापुवनश्च ते दीपा ऊर्जव्यापः स्वरशिपमिः।
दीप्यन्ते भास्कराः सप्त युगानामिग्रदीपिताः॥ १७॥
ते सूर्या वारिणा दीपा बहुसाहस्रशमयः।
खं सपावृत्य तिष्ठन्ति प्रदहनो वसुन्धरम्॥ १८॥

इस प्रकार सप्तसंख्यक सूर्य की किरणें चारों दिशाओं को सूखा कर चारों लोकों को अग्नि के समान जलाने लगती हैं। वह सातों सूर्य अपनी किरणों द्वारा पृथ्वी के ऊर्ध्व और निम्न भाग को व्याप करके प्रलय काल की अग्नि के समान एक साथ भयानक रूप से प्रदीप होने लगते हैं। इस प्रकार जल द्वारा प्रदीप हुए वे सूर्य अपनी किरणों द्वारा अनेक हजारों की संख्या में होकर आकाश को अच्छी प्रकार आच्छादित करके सम्पूर्ण पृथ्वी को ज्वलित करते हुए स्थित रहते हैं।

ततस्तेषां प्रतापेन दह्यामाना वसुन्धरा।
माद्विनद्युष्वद्वीपा निःस्नेहा सम्प्रद्यते॥ १९॥
दीपामिः सन्तापिष्ठु रशिपिर्वै समन्ततः।
अष्ट्योदर्घव्या लग्नाभिसिर्यक् चैव सप्तावृतम्॥ २०॥

इसके पश्चात् उन सूर्यों के अतिशय ताप के कारण जलती हुई यह वसुन्धरा पर्वतों, नदियाँ, समुद्र तथा द्वीपों सहित सर्वथा जल से रहित हो जाती है। क्योंकि सूर्य की प्रदीप किरणें चारों ओर से समावृत होने से ऊपर-नीचे संलग्न होती हैं और इसी कारण टेढ़े-मेढ़े (तिर्यक) प्रदेश भी आच्छादित हो जाते हैं।

सूर्याग्निना प्रमृष्टानां संसृष्टानां परस्परम्।
एकत्वपुष्पयातानामेकज्वालं भवत्युता॥ २१॥
सर्वलोकश्रणाश्च ऽसोऽग्निर्भूत्वा तु पण्डिती।
चतुर्लोकपिं सर्वं निर्हत्याशु तेजसाः॥ २२॥
ततः प्रलीने सर्वस्मिन्द्वाह्वपे स्थावरे तथा।
निर्वृक्षा निर्मृणा भूमिः कूर्मपृष्ठा प्रकाशते॥ २३॥
अप्वरीशमिवाभाति सर्वमापूरितं जगत्।
सर्वमेव तदर्थिर्वै पूर्णं जाज्वल्यते पुनः॥ २४॥

इस तरह सूर्यरूप अग्नि के द्वारा प्रकृष्टरूप से शुद्ध और परस्पर संसृष्ट संसार के समस्त पदार्थ एक ज्वाला के रूप में मैनों एक ही हो जाते हैं। सभी लोकों को नष्ट करने वाली यह प्रलयाग्नि एक मण्डल के आकार में होकर अपने ही तेज से इस सम्पूर्ण चतुर्लोक को दग्ध करने लगती है। तब सम्पूर्ण स्वावर एवं जंगम पदार्थों के लीन हो जाने पर वृक्षों तथा दृणों से रहित यह भूमि कद्युए की पीठरूप में प्रकाशित होती है। (किरणों से) व्याप समस्त जगत् अप्वरीप (जलती हुई कड़ाही) के सदृश वर्णवाला दिखलायी देता है। उन ज्वालाओं के द्वारा सभी कुछ पूर्णरूप से प्रज्वलित होने लगता है।

पाताले यानि सन्त्वानि महोदयिगतानि च।
ततस्तानि प्रलीयते भूमित्वमुपयाति च॥ २५॥
द्वीपांशु पर्वतांशुव वर्षाण्यथ महोदयीन्।
तान् सर्वान् भस्मसाद्यकै समात्पा पावकः प्रभुः॥ २६॥
समुद्रेष्यो नदीप्यश्च आपः शुक्ष्मां सर्वेशः।
पिवन्नपः समिद्वोऽग्निः पृथिवीमाश्रितो ज्वलन्॥ २७॥

उसी प्रकार पाताल में और महासागर में जो प्राणीसमुदाय रहते हैं, वे भी प्रलय को प्राप्तकर पृथ्वीत्व को प्राप्त कर लेते हैं। इस प्रकार सात रूप वाले प्रभु अग्निदेव सभी द्वीप, पर्वत, खंड, बड़े-बड़े समुद्र आदि सभी को भस्मीभूत कर देते हैं। इस प्रकार समुद्र, नदियाँ तथा पाताल आदि के संपूर्ण जल को पान करते हुए यह अतिशय प्रज्वलित अग्नि के बल एक पृथ्वी का आश्रय लेकर जलता रहता है।

ततः संवर्तकः शैलानतिकम्य महासत्या।
लोकान्दहति दीपात्पा मारुतेयो विजृम्भितः॥ २८॥

तदनन्तर वह प्रलय काल के महान् संवर्तक नाम के बादल हवा के तेज से प्रदीप होकर, पर्वतों को लाँघ कर, सारे संसार को जलाने लगता है।

स दद्वा पृथिवीं देवो रसातलपशोषयत्।
अथसतालपृथिवीं दद्वा दिवपूर्वं दहिष्यति॥ २९॥

वह दीप्यमान प्रलयाग्नि पृथ्वी को जलाकर पाताल को भी सोख लेता है। उसके बाद पृथ्वी के निचले भाग को जलाकर, आकाश के ऊपरी भाग को जलाने लगेगा।

योजनानां ज्ञातनीह सहस्राप्ययुतानि च।
उत्तिष्ठन्ति शिखासातस्य वह्नेः संवर्तकस्य तु॥ ३०॥

इस संवर्तकरूपी महाप्रलयाग्नि की लपटें एक लाख और दस हजार योजन तक ऊपर उठती हैं।

गच्छार्थु पिशाचांशु सद्यक्षोरगराक्षसान्।

तदा दहत्यसौ दीपः कालरुद्रप्रणोदितः॥ ३६॥

भगवान् काल रुद्र के द्वारा प्रेरित ये धधकती हुई ज्वलाएँ, ऊपर की ओर उठती हुई गच्छ, पिशाच, यक्ष, नाग और राक्षसों को जलाने लगती हैं।

भूलोकञ्जु भुवलोकं प्रहल्लोकं तथैव च।

दहेदशेषं कालाम्पिः कालाविष्टतुः स्वयम्॥ ३७॥

इस प्रकार स्वयं काल ने ही शरीर धारण किया हो, ऐसा प्रलयाग्नि भूः, भुवः, स्वः और महत् लोक को पूर्णरूप से जला डालता है।

व्यासेष्वेतेषु लोकेषु तिर्यगूर्ध्वमध्याग्निना।

ततेजः समनुशास्य कृत्स्नं जगदिदं शनैः॥ ३८॥

अतो गृहमिदं सर्वं तदेवैकं प्रकाशते।

जब वह प्रलयाग्नि चारों लोकों में व्यास होकर तिर्यक् और ऊपर सभी ओर फैलकर धीरे-धीरे उसका तेज इस पूरे संसार को प्राप्त कर लेता है। तब यह सब एक साथ मिलकर, एक द्वालारूप में प्रकाशित होने लगता है।

ततो गजकुलाकारास्तडिदिः समलंकता॥ ३९॥

अनिष्टनि तदा व्योमि घोरा: संवर्तका घना॥

इसके बाद बड़े-बड़े हाथियों के समूह की भाँति घने, और घोर संवर्तक नामके प्रलयकालीन मेघ, विद्युत् पुङ्गों से अलंकृत होकर, गरजते हुए आकाश में चढ़ आते हैं।

केचिद्ग्रीलोत्पलश्यामा: केचित्कुमुदसत्रिभाः॥ ३५॥

धूमद्वर्णास्तिथा केचिकेचितीताः पयोधरा।

केचिद्वासभवर्णास्तु लाक्षारसनिभा: परे॥ ३६॥

उन मेघों में, कुछ नीलकम्बल के समान श्यामवर्ण के दिलाई पड़ते हैं, कुछ कुमुदिनी पुष्प के समान सफेद, कुछ धूमवर्ण के, कुछ पीले रंग के, कुछ गधे के समान धूसर और कुछ लाख के समान लाल रंग के दिखाई देते हैं।

महुकुन्दनिभाष्टान्ये जात्यञ्जनिभासत्या।

पनः शिलाभाष्टु परे कणोत्सदृशाः परे॥ ३७॥

कुछ शंख और कुन्द पुष्प के समान अत्यन्त शुभ्र, कुछ अञ्जन के समान गाढ़े नीले रंग के, कुछ पनःशिला (मैनसिल) के समान और कुछ कबूतर के समान, रंग बाले बादल दिखाई देते हैं।

इन्द्रगोपनिभा: केचिद्विरितालनिभासत्या।

इन्द्रघाषनिभा: केचिदुत्तिष्ठनि घना दिवि॥ ३८॥

उसमें कुछ इन्द्रगोप (बरसाती कोडे) के समान लाल रंग के, तो कुछ हरिताल (पोले रंग का धातु विशेष) और कुछ इन्द्रधनुष के समान सतरंगी बादल होते हैं।

केचित्पर्वतसंकाशा: केचिद्वजकुलोपमाः।

कृतांगारनिभृष्णान्ये च केचिन्मीनकुलोद्वहाः॥ ३९॥

कुछ पर्वताकार के, कुछ हाथियों के झुण्ड के आकार वाले, कुछ कृटांगार (प्रासाद का सबसे ऊपर बना हुआ कमरा) के समान और कुछ बादल मछली के झुण्ड के आकार के लगते हैं।

बहुरूपा घोररूपा घोरस्वरनिनादिनः।

तदा जलयगः सर्वे पूर्यनि नभस्तलम्॥ ४०॥

अनेक रूप और भयानक रूप वाले बादल, भयंकर गर्जना करते हैं, तब वे पूरे आकाश मण्डल को आपूरित कर देते हैं।

ततस्ते जलदा घोरा राविणो भास्करात्पजाः।

सप्तया संवृतात्पानं तपर्यन्श शम्यनि ते॥ ४१॥

तत्पञ्चात् वे सूर्य की सन्तान होने से घोर गर्जना करने वाले बादल जल बरसते हैं और सात रूपों अपने को संबृत किये हुए प्रलयाग्नि को शान्त करते हैं।

ततस्ते जलदा वर्ष मुञ्चतीह महीषवत्।

सुधोरमशिवं वर्ष नाशयन्ति च पावकम्॥ ४२॥

वे बादल अतिशय घोर गर्जना के साथ बरसते हुए उस भयंकर, अमंगलकारी अग्नि को नष्ट करते हैं।

अतिवृद्धं तदात्पर्वपव्यसा पूर्यते जगत्।

अद्वितेऽम्बोऽपिभूतत्वादग्निः प्रविशत्यपः॥ ४३॥

नष्टे चाम्बौ वर्षशैः पयोदाः क्षयमध्यवाः।

प्लावयन्तो जगत्सर्वं महाबलपरिष्वर्वैः॥ ४४॥

धारापिः पूर्यनीदं नोषपानाः स्वयम्भुवा।

अत्यन्तसमिलीषाम्बु येला इव महोदयैः॥ ४५॥

इस प्रकार अतिशय बरसते हुए बादलों ने जल से सारे संसार को आप्लावित कर दिया। इस प्रकार सम्पूर्ण जगत् में सौं वर्षों तक सैकड़ों धाराओं के साथ बरसते हुए जल से अपना तेज शान्त हो जाने से पराभूत हुआ वह अग्नि उसी जल में प्रवेश कर जाता है। इस प्रकार ऋहाजी द्वारा प्रेरित बादल दिखाई देते हैं।

में ने जलधाराओं से संसार को परिपूर्ण कर दिया जैसे बढ़ी हुई जलराशि से समुद्र का किनारा ढूब जाता है।

सादिद्वीपा ततः पूच्ची जलैः सञ्जाद्यते शनैः।

आदित्यशिष्यभिः पीतं जलमधेषु तिङ्गति॥४६॥

धीर-धीर पर्वतों तथा द्वीपों वाली पृथ्वी जल से ढक जाती है और सूर्य की रशियों द्वारा गृहीत वह जल बादलों में स्थित रहता है।

पुनः पतित तदधूषौ पूर्वने तेन शार्णवाः।

ततः समुद्राः स्वां वेलापतिकलानास्तु कृत्सशः॥४७॥

पर्वताष्टु विलीयने मही चाप्मु निष्पत्तिः।

पुनः वह जल पृथ्वी पर गिरता है और उससे समुद्र इन्हें आपूरित हो जाते हैं, कि सर्वत्र अपने तटों का अतिक्रमण कर वे जलमय हो जाते हैं, पर्वत जल में बिलीन हो जाते हैं और पृथ्वी भी जल में ढूब जाती है।

तस्मिन्नेकार्णवे घोरे नष्टे स्थावरजंगमे॥४८॥

योगनिन्द्रां समास्थाय भेते देवः प्रजापातिः।

सप्तस्त स्थावर और जंगम नष्ट हो जाने के बाद उस घोर एकरूप समुद्र में भगवान् ब्रह्मा, योगनिन्द्रा का आश्रय लेकर सो जाते हैं।

चतुर्युगसहस्रान्ते कल्पमाहुर्मनीषिणः॥४९॥

वाराहो वर्तते कल्पो यस्य विसार ईरितिः।

चार हजार युगों तक के समय को विद्वान् कल्प कहते हैं। इस समय वाराह कल्प चल रहा है, जिसके विसार को मैंने कहा है।

असंख्यातास्था कल्प्या ब्रह्मविष्णुशिवात्मकाः॥५०॥

कथिता हि पुराणेषु पुनिषिः कालचिन्तकैः।

कालचिन्तक ऋषियों ने पुराणों में असंख्य कल्प कहे हैं, वे सभी कल्प ब्रह्मा, विष्णु और शिवमय होते हैं।

सात्त्विकेष्व एत्युपास्त्वा गोपतिर्द्विष्णो मुखम्।

तामसेषु हरस्योक्ते राजसेषु प्रजापतेः।

उनमें जो सात्त्विक कल्प हैं, वहां विष्णु का माहात्म्य अधिक कहा गया है, तामस कल्प में शिव का और राजस कल्पों में ब्रह्मा का माहात्म्य अधिक है।

योऽयं प्रवत्तते कल्पो वाराहः सात्त्विको मतः॥५२॥

अन्ये च सात्त्विकाः कल्प्या मम तेषु परिश्रहः।

यह जो कल्प अभी चल रहा है, यह वाराह कल्प है, जो

सात्त्विक माना गया है। अन्य जो सात्त्विक कल्प हैं, जिसमें मेरा परिश्रह (अधिकार) स्वीकार किया है।

व्यानं तपसत्वा ज्ञाने तत्त्वा ते योगिनः परम्॥५३॥

आराध्य तत्त्वं गिरिशं यान्ति तत्परमप्यदम्।

इन्हीं सारे कल्पों में योगिगण ध्यान, तप और ज्ञान प्राप्त करके, शिव तथा मेरी आराधना करके, अतिशय श्रेष्ठ पद (मोक्ष) को प्राप्त करते हैं।

सोऽहं तत्त्वं सापास्थाय मायी मायामयीं स्वयम्॥५४॥

एकार्णवे जगत्यस्मिन्योगनिद्रां द्राजामि तु।

वही मैं स्वयं मायावी होने से मायामय तत्त्व को अच्छी प्रकार आश्रय करके, प्रलयकाल में एक समुद्ररूप हुए इस जगत् में योगनिद्रा को प्राप्त करता हूँ।

यां पश्यन्ति प्रहात्पानः सुषिकत्वे महर्षयः॥५५॥

जनलोके वर्तमानास्तापसा योगचक्षुषाः।

अहं पुराणः पुरुषो भूर्भुवःप्रभवो विषुः॥५६॥

सहस्रवरणः श्रीमान् सहस्राक्षः सहस्रपात्।

पन्त्रोऽहं ब्राह्मणा गावः कुशोऽव समित्यो हाहम्॥५७॥

प्रोक्षणीयं स्वयम्भूतं सोमो ब्रतमयास्यहम्।

संवर्तको महानात्मा पवित्रं परमं यज्ञः॥५८॥

मेरे इसी सुषुप्ति-काल में, जनलोक में बास करने वाले महात्मा सप्तश्चतुर्विंशति, अपने तपोबल से, योगरूपों चक्षुओं द्वारा मुझे देखते हैं। मैं ही पुराण पुरुष हूँ, भूः, भुवः का उत्पत्ति स्थान, सर्वत्र व्याप्त, हजारों चरणों, नेत्रों और हजारों गतिवाला, सौन्दर्यवान् हूँ। (यज्ञ में) मैं ही मन्त्र, अग्नि, गौ, कुश और समिधारूप हूँ। मैं ही प्रोक्षण का पात्र, सोम और ब्रत स्वरूप हूँ। मैं ही संवर्तक—प्रलयकाल, महान् आत्मा, पवित्र और परम श्रेष्ठ यज्ञ हूँ।

पैषाण्यं प्रभुर्गोप्ता गोपतिर्द्विष्णो मुखम्।

अवन्तस्तारको योगी गतिर्गतिमतां वरः॥५९॥

मैं ही बुद्धि, प्रभु, रक्षक, गोपति, ब्रह्मा का मुखरूप हूँ। मैं अनन्त, सब को मुक्ति देने वाला और योगी हूँ। मैं ही गति और गतिमानों में श्रेष्ठ हूँ।

हंसः प्राणोऽथ कपिलो विश्वमूर्तिः सनातनः।

क्षेत्रज्ञः प्रकृतिः कालो जगद्वैजप्यामृतम्॥६०॥

पाता पिता महादेवो भर्तो ह्यन्यो न विद्यते।

हंस, प्राण, कपिल, विश्वमूर्ति परमात्मा, सनातन, जीवात्मा, प्रकृति, काल, संसार का मूल कारण, अमृत,

माता, पिता और महादेव— सब कुछ मैं ही हूँ। मुझसे पृथक् कुछ भी नहीं है।

आदित्यवर्णो भूवनस्य गोपा
नारायणः पुरुषो योगमूर्तिः॥

तं पश्यन्तो यतयो योगनिष्ठः
ज्ञात्वात्मानं पपत तत्त्वं द्रुजन्ति॥ ६ १॥

वहो मैं नारायण सूर्य के समान वर्ण वाला, संसार का रक्षक, योगमूर्ति हूँ। योगनिष्ठ संन्यासी भेरे इसी स्वरूप को देखते हैं और आत्मतत्त्व को साक्षात् करने के बाद वे मेरा यह तत्त्व जान लेते हैं अर्थात् मोक्ष पा जाते हैं।

इति श्रीकूर्मपुराणे उत्तरार्द्धं व्यासगीतामु
पचत्वारिंशोऽव्यायः॥ ४५॥

पट्टचत्वारिंशोऽव्यायः

(प्रलयादि का वर्णन)

कूर्म उत्तराच

अतः परं प्रबद्ध्यापि प्रतिसर्गमनुत्तमम्।

प्राकृतं तत्पाप्तासेन शृणुष्व गदतो पम्॥ १॥

कूर्मरूपधारी भगवान् ने कहा— अब मैं उत्तम प्रतिसर्ग, जो प्राकृत प्रलय है, उसका संशेष में वर्णन करूँगा। उसे आप सब मुझसे श्रवण करें।

गते परार्द्धद्वितये काले लोकप्रकालनः।

कालाभिर्भस्मसाकर्तुं चरते चाखिलं जगत्॥ २॥

स्वात्मन्यात्मानपावेश्य भूत्वा देवो महेश्वरः।

दहेदशेषं द्राह्याण्डं सदेवासुरमानुषम्॥ ३॥

तपाविश्य महादेवो भगवान्तीललोहितः।

करोति लोकसंहारं भीषणं रूपमात्रितः॥ ४॥

प्रविश्य मण्डलं सौरं कूल्वाऽसौ वह्या पुनः।

निर्देहत्याखिलं लोकं सप्तसप्तसिस्त्वलण्डकः॥ ५॥

द्वितीय परार्थ (अर्थात् द्राह्यानी की आयु का द्वितीय अर्थभाग का समय) के बीत जाने पर समस्त लोकों को ग्रसित करने वाला कालरूप कालाभिनि सम्पूर्ण जगत् को भस्मसात् करने के लिए घूमता रहता है। महेश्वर देव अपने स्वरूप में स्वयं को प्रवेश करकर देवताओं, असुरों तथा मनुष्यों से युक्त सम्पूर्ण द्राह्याण्ड को दाख करने लगते हैं। भगवान् नीललोहित महादेव भयानक रूप धारणकर उस

अग्नि में प्रविष्ट होकर अर्थात् महाकालरूप होकर लोक का संहार करते हैं। सौर-मण्डल में प्रविष्ट होकर उसे पुनः अनेक रूपवाला बनाकर सात-सात किरणों वाले सूर्यरूपधारी वे महेश्वर सम्पूर्ण विश्व को दाख करते हैं।

स दक्ष्वा सकले विश्वपत्ते द्राह्यशिरो महत्।

देवतानां शरीरेषु क्षिपत्यखिलदाहकम्॥ ६॥

दग्धेष्वाशेषदेवेषु देवी गिरिवरात्मजा।

एषा सा साक्षिणी शम्भोस्तिष्ठते वैदिकी श्रुतिः॥ ७॥

संपूर्ण विश्व को दाख करके वे महेश्वर देवताओं के शरीर पर सभी को जलाने में समर्थ द्राह्यशिर नामक महान् अस्त्र को छोड़ते हैं। सम्पूर्ण देवताओं के दाख हो जाने पर श्रेष्ठ पर्वत हिमालय की पुत्री देवी पार्वती अकेली ही साक्षी के रूप में उन (शिव) के पास स्थित रहती है—ऐसी वैदिकी श्रुति है।

शिरं कपालैर्देवानां कृतस्वावरभूषणः।

आदित्यचन्द्रादिगौः पूरयन्व्योपमण्डलम्॥ ८॥

सहस्रनयनो देवः सहस्राश्च इतीश्वरः।

सहस्रहस्तचरणः सहस्रार्चिर्महामुजः॥ ९॥

दंष्ट्राकरात्लवदनः प्रदीपानल्लोचनः।

त्रिशूलकृतिवसनो योगमैश्वरमास्तिः॥ १०॥

पीत्वा तत्परमानन्दं प्रभूतममृतं स्वयम्।

करोति ताण्डवं देवीमालोक्य परमेश्वरः॥ ११॥

वे शिव देवताओं के मस्तक के कपाल से निर्मित माला को आभूषणरूप में धारण करते हैं, सूर्य चन्द्र आदि के समुदाय से आकाश को भर देते हैं। सहस्रनेत्रवाले, हजारों आकृतिवाले, हजारों हाथ-पैरवाले, हजारों किरणों से युक्त, दिक्काल दंष्ट्र (दाढ़ों) के कारण भर्यकर मुखों वाले, प्रदीप अग्नि के समान नेत्रों वाले, त्रिशूली, मृगचर्मरूपी बस्त्र धारण करने वाले वे देव महेश्वर ऐहायोग में स्थित हो जाते हैं और भगवती पार्वती को देखते हुए परमानन्दमय अमृत का पानकर स्वयं ताण्डव नृत्य करते हैं।

पीत्वा नृत्यामृतं देवी भर्तुः परमंगलम्।

योगामास्वाय देवस्य देहमायाति शूलिनः॥ १२॥

स भुक्त्वा ताण्डवरसं स्वेच्छयैव पिनाकशूक्।

ज्योतिः स्वभावं भगवान्दग्धा द्राह्याण्डमण्डलम्॥ १३॥

संस्थितेष्व देवेषु द्राह्या विष्णुः पिनाकशूक्।

गुणैरशेषैः पृथिवी विलयं याति वारिषु॥ १४॥

स वारि तत्त्वं सगुणं प्रसते हव्यवाहनः।

तेजः स्वगुणसंयुक्त वायौ संयाति संक्षयम्॥ १५॥

अपने पति के नृत्यरूपी अमृत का पानकर परम मंगलमयी देवी (पार्वती) योग का आश्रय लेकर शूलधारी शिव के शरीर में प्रवेश कर जाती हैं। फिर ब्रह्माण्डमंल को दाख करके पिनाकपाणि भगवान् (शिव) अपनी इच्छा से ही ताण्डव नृत्य का रस छोड़कर ज्योतिःस्वरूप अपने शान्तभाव में स्थित हो जाते हैं। ब्रह्मा, विष्णु तथा पिनाकी शिव के इस प्रकार स्थित हो जाने पर अपने सम्पूर्ण गुणों के साथ पृथ्वी जल में विलीन हो जाती है। अपने गुणों सहित उस जल-तत्त्व को हव्यवाहन अग्नि ग्रहण कर लेता है और अपने गुणोंसहित वह तेज (अग्नि) वायु में विलीन हो जाता है।

**आकाशे सगुणो वायुः प्रलयः याति विश्वभूत्।
भूतादौ च तथाकाशे लीयते गुणसंयुतः॥ १६॥**
**इन्द्रियाणि च सर्वाणि तैजसे वाति संक्षयम्।
वैकारिको देवगणैः प्रलयं याति सत्तमाः॥ १७॥**
त्रिविष्णुयमहंकारो महति प्रलये द्रुजेत्।

तदनन्तर विष्णु का भरण-पोषण करने वाला गुणों सहित वह वायु आकाश (तत्त्व) में लीन हो जाता है और अपने गुणसहित वह आकाश भूतादि अर्थात् तामस अहंकार में लय को प्राप्त करता है। हे उत्तम ऋषिगण! सभी इन्द्रियों तैजस अर्थात् राजस अहंकार में क्षय को प्राप्त करता है। और (इन्द्रियों के अधिकाता) देवगण वैकारिक अर्थात् सात्त्विक अहंकार में विलीन हो जाते हैं। वैकारिक, तैजस, तथा भूतादि (तामस) नामक तीन प्रकार का अहंकार महतत्त्व में लीन हो जाता है।

महान्तरेषिः महिते द्रुहाणपितौजसम्॥ १८॥
अव्यक्तझुगतो योनिः संहरेदेकमव्ययम्।
एवं संहत्य भूतानि तत्त्वानि च महेश्वरः॥ १९॥
वियोजयति चान्योऽन्यं प्रथानं पुरुष्यपरप्।
प्रथानपुंसोरजयोरेष संहार ईरितः॥ २०॥
महेश्वरेच्छाजनितो न स्वयं विद्धते लयः।

तदनन्तर सभी तत्त्वों के साथ अमित तेजस्वी उस ब्रह्मारूप महतत्त्व को जगत् के उत्पत्ति स्थान, अव्यक्त, अप्रकाशित, तथा अनिवाशी मूल तत्त्व प्रकृति अपने में लय कर लेती है। इस प्रकार सभी प्राणी पदार्थों तथा सभी तत्त्वों के संहार के बाद वे महेश्वर प्रधान तत्त्व मूल प्रकृति तथा

पुरुष इन दोनों तत्त्वों को एक-दूसरे से अलग करते हैं। यही पृथग्नत्व दोनों का लय या संहार कहा जाता है। वे दोनों तत्त्व तो वस्तुतः अजन्मा ही हैं तथा अविनाशी ही हैं अतएव उन दोनों का वियोग या मेल महेश्वर की इच्छा से होता है। स्वयं उनका लय नहीं होता है।

गुणसाम्यं तदव्यत्कं प्रकृतिः परिगीयते॥ २१॥

प्रथानं जगतो योनिर्यात्तत्त्वमचेतनम्।

कूटस्थश्चिन्मयो हात्मा केवलं पञ्चविंशकः॥ २२॥

गीयते मुनिभिः साक्षी महानेष पितामहः।

गुणों की समानता या साम्यावस्था ही प्रकृति कही जाती है। इसी का 'प्रधान' नाम भी है। यह जगत् का उत्पत्ति स्थान और माय तत्त्व होने से अजड़ है परन्तु जो आत्मा है वह कूटस्थ अथवा सर्वकाल एक ही स्वरूप वाला है अथवा परिणाम आदि से रहित होने के कारण चैतन्यमय, एकरूप तथा पञ्चीसवें तत्त्वरूप है। यही आत्मा महान् पितामह साक्षीरूप से सब कुछ प्रत्यक्ष देखता है, ऐसा मुनिगण कहते हैं।

एवं संहारशक्तिः शक्तिपहिश्वरी ध्रुवा॥ २३॥

प्रथानादौ विशेषानो देहे रुद्र इति श्रुतिः।

योगिनामय सर्वेषां ज्ञानविन्यसत्त्वेतसाम्॥ २४॥

आत्मानिकहैव लयं विद्यातीह शंकरः।

इस प्रकार पूर्वोक्त जो संहार शक्ति कही गई है, वही ध्रुवा और सर्वकाल स्थिर रहने वाली है। यह 'माहेश्वरी' शक्ति है। यह प्रधान या प्रकृति से लेकर विशेष तक के सभी पदार्थों को जलाती है, वही रुद्र नाम से विख्यात है—ऐसा श्रुतिवचन है। वे रुद्र ही सभी योगियों तथा ज्ञानियों का भी इस कल्प में संहार करते हैं, यही आत्मानिक लय है।

इत्येष भगवान्स्त्रः संहारं कुरुते वशी॥ २५॥

स्वापिका मोहिनी शक्तिर्गायण इति श्रुतिः।

हिरण्यगर्भं भगवान्द्वाग्नसदसदात्पक्षम्॥ २६॥

सुजेदशेषं प्रकृतसत्त्वमयः पञ्चविंशकः।

इस प्रकार वे भगवान् रुद्र सर्व को वश में करते हुए सबका संहार करते हैं, उनकी जो शक्ति है, वह सब को स्थिर करने वाली, मोहित करने वाली, नारायणी और नारायणरूप है, ऐसा वेद स्वयं कहते हैं। उसी तरह भगवान् हिरण्यगर्भ ब्रह्मा सत्—असत् स्वरूप समस्त जगत् को प्रकृति द्वारा उत्पन्न करते हैं, और वे प्रकृतिरूप होकर पञ्चीसवें तत्त्व कहे जाते हैं।

सर्वज्ञः^१ सर्वगः शान्ताः स्वात्मन्येव व्यवस्थिताः।
शक्तयो ब्रह्मविष्णवीशा भुक्तिपुक्तिफलप्रदाः॥ २७॥
सर्वेश्वराः सर्ववश्याः शास्त्रानननभोगिनः।
एकमेवाक्षरं तत्त्वं पुष्पश्चानेष्वरात्मकम्॥ २८॥
अन्याङ्गु शक्तयो दिव्यानन्त्र सनि सहस्रशः।
इत्येते विविधैर्यज्ञैः शक्त्यादित्याद्योऽप्यराः।
एकैकस्याः सहस्राणि देहानां वै शतानि च॥ २९॥
कथ्यन्ते चैव माहात्म्याच्छक्तिरेकैव निर्णया।

इस प्रकार वे ब्रह्मा, विष्णु और महेश नामकी तीनों शक्तियाँ सर्वज्ञ, सर्वगमी, सर्वव्यापक और शान्तरूप हो अपने ही आत्मा में स्थित रहती हैं और भोग तथा मोक्षरूप फल देने वाली हैं, इतना ही नहीं वे तीनों देव सबके ईश्वर सबको बांधने वाले शाश्वत और अनन्त भोगों से पूर्ण हैं। वही अक्षर अविनाशी तत्त्व होने से पुरुष प्रधान-प्रकृति तथा ईश्वररूप है। इसके अतिरिक्त हजारों दिव्य शक्तियाँ उसी आत्मरूप में अवस्थित हैं। वे इन्द्रादि देवों के रूप में विविध यज्ञों द्वारा पूजित होती हैं। उन एक-एक शक्ति के सैकड़ों तथा हजारों शरीर भले ही रहे जाते हों, परन्तु देव-माहात्म्य से निर्णय शक्ति एक ही मानी जाती है।

तां शक्ति स्वयमास्थाय स्वयं देवो महेश्वरः॥ ३०॥
करोति विविधादेहान्दृश्यते चैव लीलया।
इज्यते सर्ववज्ञेषु द्वाहाणीर्वेदवादिपिः॥ ३१॥
सर्वाकामप्रदो रुद्रं इत्येष वैदिकी श्रुतिः।

देव महेश्वर इसी शक्ति की सहायता से लीला पूर्वक विभिन्न शरीरों की रचना करते हैं और उस का विलय भी करते हैं। वेदवादी ब्राह्मणों द्वारा सम्पादित होने वाले सभी यज्ञों में समस्त कामनाओं को पूर्ण करने वाले भगवान् रुद्र की पूजा की जाती है, ऐसो वेदश्रुति है।

सर्वासामेव शक्तीनां ब्रह्मविष्णुमहेश्वराः॥ ३२॥
प्राण्यान्येन स्मृताः देवाः शक्तयः परमात्मनः।
आप्यः परस्ताद्गवान् परमात्मा सनातनः॥ ३३॥
गीयते सर्वमायात्मा शूलपाणिमहेश्वरः।
एनपेके बदन्त्यग्निं नारायणमधारे॥ ३४॥
इनपेके ऐरे प्राणं द्वाहाणामपरे जगुः।

ब्रह्मा, विष्णु और महेश्वर रूपों परमात्माओं की शक्तियाँ सभी शक्तियों में प्रधान मानी गई हैं। इस से भी आगे

१. यहाँ दुर्बलः पाठ है, जो अनुचित जान पड़ता है।

सनातन परमात्मा त्रिशूल धारण करने वाले सबके आत्मस्वरूप भगवान् महेश्वर स्वतंत्र हैं ऐसा कहा जाता है। इन में कुछ लोग अग्नि को परमात्मा कहते हैं तो कोई नारायण को, इन्द्र को, कोई प्राण को या कोई ब्रह्मा को परमात्मा कहता है।

ब्रह्मविष्णविवरणाः सर्वे देवास्तर्याप्यः॥ ३५॥
एकस्तैवाय स्त्रस्य भेदात्ते परिकीर्तिताः।
यं यं भेदं समाक्षित्य यजनि परमेश्वरम्॥ ३६॥
तत्तदूपं समास्थाय प्रददाति फलं शिवः।

ब्रह्मा, विष्णु अग्नि, आदि सभी देव समस्त ऋषिगण एक ही रुद्र के भेद रूप हैं ऐसा कहा गया है। साधक जिस-जिस रूप का आश्रय करके परमेश्वर का यजन करता है, भगवान् शिव उस रूप को धारण करके उसे फल प्रदान करते हैं।

तस्मादेकतरं भेदं समाक्षित्यापि शाश्वतम्॥ ३७॥
आराध्यमहादेवं वाति तत्परं पदम्।
किन्तु देवं प्राप्तेवं सर्वशक्तिं सनातनम्॥ ३८॥
आराध्येह गिरिशं सगुणं वाय निर्णयम्।

इसलिए इन सब रूपों में किसी एक रूप को आक्षित करके शाश्वत-सनातन महादेव की पूजा करने से मनुष्य श्रेष्ठ पद को प्राप्त करता है, किन्तु सर्वशक्ति सम्पन्न सनातन हिमालय पर्वत पर रहने वाले महादेव के ही सगुण एवम् निर्णय रूप की आराधना करनी चाहिए।

प्रया प्रोक्ता हि भवतां योगः प्रागेव निर्णयः॥ ३९॥
आरस्युसु सगुणं पूजयेत्परमेश्वरम्।
पिनाकिनं त्रियनं जटिलं कृत्तिवाससम्॥ ४०॥
स्वप्नार्थं वा सहस्राक्षिनयेष्टदिक्षी श्रुतिः।

मैंने पहले आप लोगों को निर्णय योग के विषय में बताया है। परन्तु जो लोग, स्वर्गालोक में जाना चाहते हैं, उन्होंने सगुण महेश्वर को ही उपासना करनी चाहिए। वेदों में कहा गया है कि, त्रिशूलधारी, त्रिनेत्र, जटाधारी तथा व्याघ्र चमंधारी सुवर्ण को आभा वाले और हजारों किरणों से युक्त महादेव का ध्यान करना चाहिए।

एष योगः समुद्दिष्टः सर्वाज्ञो मुनिपुण्यवाः॥ ४१॥
अत्राप्यशक्तोऽथ हरं विश्वं द्वाहाणपर्येत्।
हे मुनिश्रेष्ठो! इस प्रकार, सर्वीज योग आप लोगों को बताया। ऐसे ध्यान लगाने में असमर्थ व्यक्ति को महेश्वर, विष्णु और ब्रह्मा की अर्चना करनी चाहिए।

अथ देवसर्वोः स्यात्प्रापि मुनिपूज्वा:॥४२॥
ततो वाव्यग्निशक्तादीन् पूजयेदक्षिंयुतः।
हे मुनिश्रेष्ठों इसमें भी असमर्थ होने पर, वायु अग्नि और
इन्द्रादि देवताओं की, भक्तिभाव से पूजा करना चाहिए।
तस्मात्सर्वान् परित्यज्य देवान् ब्रह्मपुरोगमान्॥४३॥
आराध्येद्विरूपाक्षमादिमध्यानं संस्थितम्।
भक्तियोगसमायुक्तः स्वर्वर्णनिरतः शुचिः॥४४॥
तादृशं रूपमास्थाय आसाहात्यनिकं शिवम्।
अथवा ब्रह्मादि अन्य देवताओं का परित्याग करके, आदि
मध्य और अन्त में स्थित, सनातन महादेव की आराधना
करनी चाहिए। अपने धर्मों का पालन करते हुए, शुद्ध होकर
भक्तियोग के माध्यम से व्यक्ति जिस देवता की पूजा करता
है, शिव उसी देवता का रूप धरकर, उसके पास आते हैं।
एष योगः सपुद्दिष्टः सदीजोऽत्यन्ताधावनः॥४५॥
यशाविधि प्रकुर्वाणः प्राप्नुयादैश्वरप्यदम्।
इस प्रकार सदीजयोग का व्याख्यान किया गया, इसका
विधिपूर्वक एकाग्रचित से पालन करने से अपरत्य को प्राप्ति
है।
द्वे चान्ये भावने शुद्धे प्रागुक्ते भवतामिह॥४६॥
अथापि कवितो योगो निर्वैजश्च सदीजकः।
पहले जो अन्य दो प्रकार की शुद्ध भावनाएँ आप लोगों
को कही हैं, ये उन भावनाओं में भी निर्वैज और सदीज
योग के विषय में बताया गया है।
ज्ञानं ततुकं निर्वैजं पूर्वे हि भवतां मया॥४७॥
विष्णु रुद्रं विरचिष्ठ सदीजे साधयेद्युधः।
अथ वाव्यादिकान्देवान् तत्परो नियतात्मवान्॥४८॥
पूजयेत्पुरुषं विष्णु चतुर्मूर्तिरं हरिम्।
अनादिनियनं देवं वासुदेवं सनातनम्॥४९॥
नारायणं जगदोनिपाकाशं परमं पदम्।
(तत्त्व)ज्ञान ही निर्वैज योग कहा गया है जिसे मैंने आप
लोगों को पूर्व में कहा है। सदीज समाधि के लिए विष्णु रुद्र
और ब्रह्म की आराधना विद्वान् को करनी चाहिये, अथवा
वायु आदि देवताओं की पूजा एकाग्रचित होकर करनी
चाहिये, अथवा चतुर्मूर्तु भूतिधारी पुरुषरूप भगवान् विष्णु
को पूजा करनी चाहिए जो आदि और अन्त से रहित दिव्य
स्वरूप वासुदेव नाम वाले सनातन नारायण संसार की
उत्पत्ति के कारण, आकाश रूप और परम पद को धारण
करने वाले हैं।

तल्लिङ्गारी नियतं ब्रह्मकस्तदुपक्रयः॥५०॥
एष एव विधिर्या स्वधावने चान्तिमे पतः।
इत्येतत्कवितं ज्ञानं भावनासंश्रयम्परम्॥५१॥
इन्द्रद्वयाय मुनये कवितं पन्मया पुरा।
अव्यक्तात्मकमेवेदं चेतनाचेतनं जगत्॥५२॥
तदौष्ठरं परं ब्रह्म तस्माद्ब्रह्मपरं जगत्।
उसे वैष्णव लिंग अर्थात् चिह्न (तिलक) धारण करना
चाहिये और नियम परायण होकर वासुदेव का भक्त होकर
उनका आश्रय करना चाहिये। यही विधि ब्रह्म की अन्तिम
भावना में मान्य है इस प्रकार उस भावना का जिसमें अच्छी
प्रकार आश्रय हो ऐसा श्रेष्ठ ज्ञान मैंने तुम्हें बताया है। इसी
ज्ञान को पूर्व काल में इन्द्रद्वय नाम के मुनि ने भी कहा था
तदपि यह चेतन, अचेतन सम्पूर्ण रूप से केवल अव्यक्त
माया रूप ही है, और उस का ईश्वर परब्रह्म परमात्मा ही है,
इसलिए यह जगत् ब्रह्मपर परमात्मा का स्वरूप ही है।

सूत उवाच

एतावदुक्तवा भगवान्विरसाम जनार्दनः।
तुष्टुपुर्वनयो विष्णु शुक्रेण सह पाषवम्॥५३॥
सूत योले— इतना कहकर कूर्मरूपधारी भगवान् विष्णु
चुप हो गये, उस समय इन्द्र के साथ सभी देव तथा
मुनिगण उस माधव विष्णु की स्तुति करने लगे।

मनुष ऊचुः

नमस्ते कूर्मरूपाय विष्णवे परमात्मने।
नारायणाय विष्णुय वासुदेवाय ते नमः॥५४॥
नमो नमस्ते कृष्णाय गोविन्दाय नमो नमः।
माधवाय च ते नित्यं नमो यज्ञेश्वराय च॥५५॥
मुनियों ने कहा—कूर्मरूपधारी परमात्मा विष्णु को
नमस्कार है। विलक्षण नारायण वासुदेव! आपको नमस्कार
है। कृष्ण को वार-वार नमस्कार है। गोविन्द को वारम्बार
नमस्कार है। माधव को नमस्कार है। यज्ञेश्वर को नमस्कार
है।

सहस्रशिरसे तुष्ट्यं सहस्राक्षाय ते नमः।
नमः सहस्राहस्त्राय सहस्रवरणाय च॥५६॥
अ॒० नमो ज्ञानरूपाय विष्णवे परमात्मने।
आनन्दाय नमस्तुष्ट्यं मायातीताय ते नमः॥५७॥
नमो गृदशरीराय निर्मुणाय नमोऽस्तु ते।

पुरुषाय पुराणाय सत्तामात्रस्वरूपिणो॥५८॥
नमः सांख्याय योगाय केवलाय नमोऽस्तु ते।
धर्मज्ञानभिगम्याय निष्कलाय नमोऽस्तु ते॥५९॥
नमस्ते योगतत्त्वाय पहायोगेश्वराय च।
परावराणां प्रभवे वेदवेद्याय ते नमः॥६०॥

हजारों सिरवाले तथा हजारों नेत्रवाले आपको नमस्कार हैं। हजारों हथा तथा हजारों परमात्मा को नमस्कार है। आनन्दरूप आपको नमस्कार है। आप मायातीत को नमस्कार है। गृह (रहस्यमय) शरीरवाले आपको नमस्कार है। आप निर्जुण को नमस्कार है। पुराणपूरुष तथा सत्तामात्र स्वरूप वाले आपको नमस्कार है। सांख्य तथा योगरूप आपको नमस्कार है। अद्वितीय (तत्त्वरूप) आपको नमस्कार है। धर्म तथा ज्ञान द्वारा प्राप्त होने वाले आपको तथा निष्कल आपको बार-बार नमस्कार है। व्योमतत्त्व रूप महायोगेश्वर को नमस्कार है। पर तथा अबर पदार्थों को उत्पन्न करने वाले वेद द्वारा वेद आपको नमस्कार है।

नमो बुद्धाय शुद्धाय नमो युक्ताय हेतवे।
नमो नमो नमस्तुभ्यं पादिने वेदसे नमः॥६१॥

ज्ञानस्वरूप, शुद्ध(निराकार) स्वरूप आपको नमस्कार है। योगयुक्त तथा (जगत् के) हेतुरूप को नमस्कार है। आपको बार-बार नमस्कार है। मायाती (माया के नियन्त्रक) वेदा (विश्व-प्रपञ्च के स्त्रष्टा) को नमस्कार है।

नमोऽस्तु ते वराहाय नारीसिंहाय ते नमः।
वापनाय नमस्तुभ्यं हृषीकेशाय ते नमः॥६२॥
स्वर्गाणवर्गदानाय नमोऽप्रतिहतात्मने।
नमो योगाधिगम्याय योगिने योगदायिने॥६३॥
देवानां पतये तुम्हे देवार्तिशमनाय ते।

आपके वराहरूप को नमस्कार है। नरसिंह रूपधारी को नमस्कार है। बामनरूप आपको नमस्कार है। आप हृषीकेश (इन्द्रिय के ईश) को नमस्कार है। कालरुद को नमस्कार है। कालरूप आपको नमस्कार है। स्वर्गा तथा अपवर्ग प्रदान करने वाले और अप्रतिहत आत्मा (शाक्त अद्वितीय) को नमस्कार है। योगाधिगम्य, योगी और योगदाता को नमस्कार है। देवताओं के स्वामी तथा देवताओं के कष का शमन करने वाले आपको नमस्कार है।

भगवंस्वत्त्वसादेन सर्वसंसारनाशनम्॥६४॥
अस्माभिर्विदितं ज्ञानं यज्ञात्वामृतमश्नुते।

भगवन्! आपके अनुग्रह से सम्पूर्ण संसार का नाश करना वाले ज्ञान को हम ने जान लिया है। जिसे जानकर मनुष्य अमृतत्व को प्राप्त कर लेता है।

श्रुताङ्ग विविधा धर्म वंशा मन्वन्तराणि च॥६५॥

सर्गष्ठ प्रतिसर्गष्ठ द्रव्याण्डस्यास्य विस्तरः।

त्वं हि सर्वजगत्साक्षी विश्वो नारायणः परः॥६६॥

त्रातुर्महस्यनन्तात्मा त्वायेव शरणहुताः।

हमने विविध प्रकार के धर्म, वंश, मन्वन्तर आदि को सुना है तथा इस द्रव्याण्ड के सर्व और प्रतिसर्ग को भी विस्तारपूर्वक सुना है। आप ही सम्पूर्ण जगत् के साक्षी, विश्वरूप, परमात्मा नारायण हैं। आप ही अनन्तात्मा हैं, हम आपकी शरण में आते हैं। आप ही इस जगत् से मुक्ति दिलाने के योग्य हैं।

सूत उच्चाच

एतद्वः कृषिं विप्रा भोगपोशप्रदायकम्॥६७॥

कौर्म पुराणप्रिखिलं यज्ञगाद गदाधरः।

सूत ने कहा—हे द्राहाणो! भोग और मुक्तिदायक इस कूर्म पुराण को पूर्ण रूप से आप को कहा है, जिसे गदाधर विष्णु ने स्वयं कहा था।

अस्मिन् पुराणे लक्ष्याम्नु सम्पदः कृषिः पुरा॥६८॥

मोहायाशेषभूतानां वासुदेवेन योजितः।

प्रजापतीनां सर्गास्तु वर्णवर्षाङ्गा वृत्तयः॥६९॥

धर्मार्थकामपोक्षाणां यथावल्लक्षणं शुभम्।

इस पुराण में सर्वप्रथम प्राणियों के अज्ञान हेतु भगवान् विष्णु द्वारा रचित लक्ष्मी की उत्पत्ति का वर्णन है। सभी प्राणियों को मोहित करने के लिए यह लक्ष्मी जन्म का विषय द्वुद्धिमान् वासुदेव ने योजित किया था। इसी प्रकार इस कूर्म पुराण में प्रजापतीयों का सर्व, वर्णों के धर्म, प्रत्येक वर्णों की वृत्तियाँ अर्थात् आजीविका कही गई हैं, इसी प्रकार धर्म-अर्थ-काम-मोक्ष का शुभ लक्षण भी यथावत् कहा गया है।

पिताप्रहस्य विष्णोऽनु महेशस्य च शीमतः॥७०॥

एकत्वञ्च पृथक्त्वञ्च विशेषोपवर्णितः।

भक्तानां लक्षणाण्नोक्तं सामाचारञ्च भोजनम्॥७१॥

वर्णश्रिपाणां कृषिं यथावदिह लक्षणम्।

आदिसर्गसत्तः एषादण्डावरणसप्तकम्॥७२॥

हिरण्यगर्भः सर्गष्ठ कीर्तिंतो मुनिपुङ्क्षवा।

उसी प्रकार विष्णु का तथा ब्रह्मान् महेश्वर का एकत्व, भिन्नत्व तथा विशेष भेद भी दर्शाया गया है। उसे प्रकार भक्तों का लक्षण तथा अत्यन्त उत्तम योग आचार भी इस पुराण में वर्णित है इस के बाद आदि सर्व और ब्रह्माण्ड के सात आवरण इस पुराण में कहे गये हैं। अनन्तर हे मुनिश्रेष्ठो! हिरण्यगर्भ, ब्रह्मा का सर्व भी इस पुराण में वर्णित है।

कालः ऊप्रकथनं माहात्म्यञ्चेष्वरस्य च॥७३॥

ब्रह्मणः गायनज्ञाप्यु नामनिर्वचनं तथा।

वशाहवपुषो भूयो भूमेष्टद्वरणं पुनः॥७४॥

मुख्यादिसर्वकथनं मुनिसर्वसत्त्वापरः।

व्याख्यातो रुद्रसर्वश्च व्याख्यसर्वश्च तापसः॥७५॥

धर्मस्य च प्रजासर्वस्तामसात्पूर्वभेद तु।

ब्रह्मविष्णोर्विवादः स्यादनन्देष्टप्रयेशनम्॥७६॥

पशोदद्वत्वं देवस्य योहस्तस्य च धीमतः।

दर्शनश्च महेशस्य माहात्म्यं विष्णुरेतितम्॥७७॥

दिव्यदृष्टिप्रदानं च ब्रह्मणः परमेष्ठिना।

संसदो देवदेवस्य ब्रह्मणा परमेष्ठिना॥७८॥

प्रसदो गिरिशस्यात् वरदानं तथैव च।

संवादो विष्णुना सादृशं शङ्करस्य महात्म्यः॥७९॥

वरदानं तथा पूर्वमनदीनं पिनाकिनः।

इसके पश्चात् इस पुराण में काल की संख्या का कथन, ईश्वर का माहात्म्य, परमात्मा का जलशायी होना, उनके नाम का निर्वचन, ब्रह्ममूर्ति धारण करके पृथ्वी का समुद्र के जल से उड़ार करना वर्णित है। ब्रह्मा और विष्णु का विवाद तथा परस्पर एक दूसरे के देह में प्रवेश, ब्रह्मा का कमल से उत्पन्न होना, ज्ञानी ब्रह्मा का अज्ञान और महेश्वर का दर्शन प्राप्त करना विष्णु के द्वारा वर्णित महेश्वर माहात्म्य, परमश्रेष्ठो ब्रह्मा को दिव्यदृष्टि दान, परमेष्ठो ब्रह्मा के द्वारा की गई देवाधिदेव की स्तुति, महादेव का प्रसन्न होना और वरदान देना, विष्णु के साथ शंकर का कथोपकथन महेश्वर का वरदान और अन्तर्धान होना भी वर्णित है।

वृश्च कथितो विष्णा मधुकैटभयोः पुरा॥८०॥

अवतारोऽय देवस्य ब्रह्मणो नाभिष्कृतात्।

एकोमावश्य देवेन ब्रह्मणा कथितः पुरा॥८१॥

विषोहो ब्रह्मणङ्गाय संज्ञानात् होरेततः।

हे विष्णो! इसमें प्राचीन काल में हुए मधुकैटभ के वध का तथा देव (विष्णु) के नाभिकमल से ब्रह्मा के अवतार का

वर्णन हुआ है। तदनन्तर विष्णु से देव ब्रह्मा के एकीभाव को कहा गया है और ब्रह्मा का घोहित होना तदनन्तर हरि से चेतना-प्राप्ति को बताया गया है।

तण्डुरणमाख्यातं देवदेवस्य धीमतः॥८२॥

प्रादुर्भावो महेशस्य ललाटात्कथितसततः।

रुद्राणां कथिता सुषिर्वृह्मणः प्रतिषेधनम्॥८३॥

भूतिष्ठ देवदेवस्य वरदानोपदेशकौ।

अनदार्ढनङ्ग देवस्य तण्डुर्याण्डजस्य च॥८४॥

दर्शने देवदेवस्य नरनारीशरीरता।

देव्या विभाषकथनं देवदेवात्पिनाकिनः॥८५॥

देव्याच्छ पश्चात्कथितं दक्षपुरीत्वयेव च।

हिमवहुहित्वं च देव्या माहात्म्ययेव च॥८६॥

तदुपरान्त धीमान् देवाधिदेव को तपश्चर्यों का वर्णन है। और फिर उनके (ब्रह्मा के) मस्तक से महेश्वर के प्रादुर्भाव का वर्णन किया गया है। रुद्राणों की उत्पत्ति और इस कार्य में ब्रह्मा का विरोध करना, तत्पत्तात् देवाधिदेव द्वारा ब्रह्मा को वरदान और उपदेश देने की बात कही गई है। देव महेश्वर, का अन्तर्धान होना, अण्डज ब्रह्मा की तपस्या और देवाधिदेव का दर्शन प्राप्त करना, महादेव का नर-नारी (अर्धनारी) का शरीर धारण करना, देवाधिदेव महादेव का देवी के साथ पृथक्करण, देवी की दक्षपुरी के रूप में उत्पत्ति और हिमालय की कन्या के रूप में देवी का माहात्म्य वर्णित है।

दर्शने दिव्यरूपस्य विश्वरूपाक्षादर्शनम्।

नामा सहस्र कथितं पित्रा हिमवता स्वयम्॥८७॥

उपदेशो महादेव्या वरदानं तथैव च।

उनके दिव्यरूप के दर्शन और विश्वरूप के दर्शन का वर्णन हुआ है। तदुपरान्त स्वयं पिता हिमालय द्वारा कहे गये (देवी के) सहस्रनाम, महादेवी के द्वारा प्रदत्त उपदेश और वरदान का भी वर्णन हुआ है।

भृगादीनां प्रजासर्गो राज्ञां वंशस्य विस्तरः॥८८॥

प्राचेतसत्वं दक्षस्य दक्षयज्ञविर्भूतनम्।

दधीचस्य च यज्ञस्य विवादः कथितस्तदा॥९१॥

भृगु आदि ज्येष्ठियों का प्रजासर्ग, राजाओं के वंश का विस्तार, दक्ष के प्रत्येता का पुत्र होना और दधीज के विध्वंस का वर्णन है। हे मुनिश्रेष्ठो! तदनन्तर दधीच और दक्ष के विवाद को बताया गया है, फिर मुनियों के शाप का वर्णन हुआ है।

तत्त्वं शापः कथितो मुनीनां मुनिपुह्नवाः।
सूक्ष्मगतिः प्रसादत्त्वं अनदर्भानं पिनाकिनः॥ १०॥
पितामहोपदेशः स्यात् कीर्तये वै रणाय तु।
दक्षस्य च प्रजासर्गः कश्यपस्य महात्मनः॥ ११॥
हिरण्यकशिष्योर्नाशो हिरण्याक्षवद्वस्तथा।
तत्त्वं शापः कथितो देवदारुत्वानोकसापम्॥ १२॥
निश्चान्त्यकस्याय गाणपत्यमनुत्तमम्।

तदुपरान्त रुद्र के आगमन एवं अनुग्रह और उन पिनाकी रुद्र के अन्तर्धान होने तथा (दक्ष की) रक्षा के लिये पितामह द्वारा उपदेश करने का वर्णन हुआ है। इसके बाद दक्ष के तथा महात्मा कश्यप से होने वाली प्रजासुहि का वर्णन और फिर हिरण्यकशिष्य के नष्ट होने तथा हिरण्याक्ष के वध का वर्णन हुआ है। इसके बाद देवदारु बन में निवास करने वाले मुनियों की शाप-प्राप्ति का कथन है, अन्धक के निश्चर और उसको श्रेष्ठ गाणपत्यपद प्रदान करने का वर्णन हुआ है।

प्रह्लादनिश्चान्त्यकस्याय वस्ते: संयमनन्त्यत्वा॥ १३॥
बाणस्य निश्चान्त्यकस्याय प्रसादसत्यं शूलिनः।
ऋषीणां वंशविस्तारो राज्ञो वंशा प्रकीर्तिः॥ १४॥
वसुदेवात्मतो विष्णोरुपतिः स्वेच्छया हरे:।

तदनन्तर प्रह्लाद का निश्चर, बलि को वाँधना, त्रिलूली (शंकर) द्वारा बाणासुर के निश्चर और फिर उस पर कृपा करने का वर्णन हुआ है। इसके पश्चात् ऋषीयों के वंश का विस्तार तथा राजाओं के वंश का वर्णन हुआ है और फिर स्वेच्छा से वसुदेव के पुत्र के रूप में हरिविष्णु की उत्पत्ति का वर्णन है।

दर्शनञ्जोपमन्योर्वै तपश्चरणमेव च॥ १५॥
वरलाभो महादेवं दृष्ट्वा साम्बं त्रिलोचनम्।
कैलासगपनञ्जाय निवाससत्यं शार्ङ्गिणः॥ १६॥
तत्त्वं कथयते भीतिर्द्वारवत्यां निवासिनाम्।
रक्षणं गरुडेनाय जित्वा शश्वृन्धावलान्॥ १७॥
नारदागमनं चैव यात्रा चैव गस्त्यतः।

उपमन्यु का दर्शन करने और तपश्चरण का वर्णन है। तपश्चात् अम्बासहित त्रिलोचन महादेव का दर्शन कर वरप्राप्ति का वर्णन आता है। तदनन्तर शार्ङ्गी (कृष्ण) का कैलास पर जाने और वहाँ निवास करने का वर्णन है, फिर द्वारका-निवासियों के भयभीत होने का वर्णन है। इसके बाद

महावलशाली शत्रुओं को जीत कर गरुड के द्वारा (द्वारकावासियों की) रक्षा करने, नारद-आगमन और गरुड की यात्रा का वर्णन हुआ है।

तत्त्वं कृष्णागमनं मुनीनामाश्रमस्ततः॥ १८॥
नैत्यकं वासुदेवस्य शिवलिङ्गर्भं तथा।
पार्कण्डेयस्य च मुनेः प्रश्नः प्रोत्स्ततः परम्॥ १९॥
लिङ्गार्थनिपत्तित्वं लिङ्गस्यापि सलिङ्गिनः।
यात्यात्म्यकथनं चाय लिङ्गादौ धीतिरेव च॥ २००॥

इसके बाद कृष्ण का आगमन, मुनियों के आने और वासुदेव (विष्णु) द्वारा नित्य किये जाने वाले शिवलिङ्गार्थन का वर्णन है। तदुपरान्त मुनि मार्कण्डेयजी द्वारा (लिङ्ग के विषय में) प्रश्न करने तथा (वासुदेव द्वारा) लिङ्गार्थन के प्रयोजन और लिङ्गी (शंकर) के लिङ्गस्वरूप का निरूपण हुआ है।

द्वाहृविष्णोमत्तदा भव्ये कीर्तिना मुनिपुह्नवाः।
पोहस्तायोर्वै कथितो गपनञ्जोर्वतो द्वयः॥ २०१॥

संसारो देवदेवस्य प्रसादः परमेष्ठिनः।
अनदर्भानश्च लिङ्गस्य साम्बोधतिस्ततः परम्॥ २०२॥

मुनिश्रेष्ठो ! फिर द्वाहृ तथा विष्णु के मध्य ज्योतिर्लिङ्ग के आविर्भाव तथा उसके वास्तविक स्वरूप का वर्णन हुआ है। तदुपरान्त उन दोनों के मोहित होने तथा (लिङ्ग का परिमाण जानने के लिये) ऊर्ध्वलोक एवं अधोलोक में जाने, पुनः परमेष्ठी देवाधिदेव (महादेव) की स्तुति करने और उनके द्वारा अनुग्रह प्रदान किये जाने का वर्णन है।

कीर्तिना द्वाहृविष्णुमत्तदा समुत्पत्तिर्द्विजोत्तमाः।
कृष्णस्य गमने द्विजर्द्विष्णोणामागतिस्तत्वा॥ २०३॥

अनुशासनञ्ज्ञ कृष्णो वरदानं महात्मनः।
गपनञ्जैव कृष्णस्य पार्वत्यस्याप्यद दर्शनम्॥ २०४॥

कृष्णद्वैषायनस्योक्तं द्युग्रथर्पाः सनातनाः।
अनुश्रुतोऽथ पार्वत्यस्य वाराणस्यां गतिस्ततः॥ २०५॥

पाराशर्वस्य च मुनेष्वासस्याद्गुतकर्मणः।

द्विजोत्तमो ! तदनन्तर लिङ्ग के अन्तर्धान होने और फिर साम्ब तथा अनिरुद्ध की उत्पत्ति का वर्णन हुआ है। तदुपरान्त महात्मा कृष्ण का (अपने लोक) जाने का निष्ठय, ऋषियों का (द्वारका में) आगमन, कृष्ण द्वारा उन्हें उपदेश तथा वरदान देने का वर्णन किया गया है। इसके अनन्तर कृष्ण का (स्वधाम) गमन, अर्जुन द्वारा कृष्णद्वैषायन का

दर्शन एवं उनके द्वारा कहे गये सनातन युगधर्मों का वर्णन हुआ है। आगे अर्जुन के ऊपर (व्यास द्वारा) अनुग्रह और पराशर-पुत्र अनुदत्कर्म व्यास मुनि का वाराणसी में जाने का वर्णन है।

वाराणस्याङ्ग माहात्म्यं तीर्थानाञ्चैव वर्णनम्॥ १०६॥
व्यासस्य तीर्थयात्रा च देव्याङ्गेवाय दर्शनम्॥
उद्भासनञ्ज कथितं वरदानं तथैव च॥ १०७॥
प्रयागस्य च माहात्म्यं क्षेत्राणामप्य कीर्तनम्॥
फलङ्ग विपुलं विश्रा मार्कण्डेयस्य निर्गमः॥ १०८॥

तदुपरात् वाराणसी का माहात्म्य, तीर्थों का वर्णन, व्यास की तीर्थयात्रा और देवों के दर्शन करने का वर्णन है। साथ ही (देवी द्वारा वाराणसी से व्यास के) निष्कासन और वरदान देने का वर्णन हुआ है। हे ग्राहणो! तदनन्तर प्रयाग का माहात्म्य, (पुण्य) क्षेत्रों का वर्णन, (तीर्थों का) महान् फल और मार्कण्डेय मुनि के निर्गमन का वर्णन है।

भुवनानां स्वरूपङ्गु ज्योतिषाङ्ग निवेशनम्॥
कीर्तितश्चापि वर्षाणां नदीनाञ्चैव निर्णयः॥ १०९॥
पर्वतानाञ्च कथनं स्थानानि च दिवौकसाम्॥
द्वीपानां प्रविभागश्च स्वेतद्वीपोपवर्णनम्॥ ११०॥

(इसके पश्चात्) भुवनों के स्वरूप, ग्रहों तथा नक्षत्रों की स्थिति और वर्षों तथा नदियों के निर्णय का वर्णन किया गया है। पर्वतों तथा देवताओं के स्थानों, द्वीपों के विभाग तथा छेतदीप का वर्णन किया गया है।

शयनं केशवस्याय माहात्म्यश्च महात्मनः॥
मन्वन्तराणां कथनं विष्णोर्पाहात्म्यमेव च॥ १११॥
वेदशाखाप्रणायनं व्यासानां कथनं ततः॥
अवेदस्य च वेदस्य कथितं मुनिपुङ्क्ष्याः॥ ११२॥
योगेश्वराणां च कथा शिष्याणां चाय कीर्तनम्॥
गीताङ्ग विविदा गुहां ईश्वरस्याय कीर्तिः॥ ११३॥

महात्मा केशव के शयन, उनके माहात्म्य, मन्वन्तरों और विष्णु के माहात्म्य का निरूपण हुआ है। मुनिश्रेष्ठो! तदनन्तर वेद की शाखाओं का प्रणयन, व्यासों का नाम-परिणाम और अवेद (वेद वाले सिद्धान्तों) तथा वेदों का कथन किया गया है। (इसके अनन्तर) योगेश्वरों की कथा, (उनके) शिष्यों का वर्णन और ईश्वर-सम्बन्धी अनेक गुहा गीताओं का उल्लेख हुआ है।

वर्णाश्रमाणामाचाराः प्रायश्चित्तविधिस्ततः॥
कपालित्वं च स्त्र॒स्य शिक्षाचरणमेव च॥ ११४॥
पतिव्रतानामाख्यानं तीर्थानां च विनिर्णयः॥
तथा मंकणकस्याय निग्रहः कीर्तिंतो द्विजाः॥ ११५॥

तदनन्तर वर्णों और आश्रमों के सदाचार, प्रायश्चित्तविधि, रुद्र के कपालों होने और (उनके) भिक्षा माँगने का वर्णन हुआ है। हे द्विजो! इसके पश्चात् पतिव्रता का आख्यान, तीर्थों के निर्णय और मद्भूषणक मुनि का निग्रह आदि का उल्लेख है।

वश्यु कथितो विप्राः कालस्य च समाप्ततः॥
देवदारुवने शंभोः प्रवेशो पाशवस्य च॥ ११६॥
दर्शनं पद्मकुलीयानां देवदेवस्य शीघ्रतः॥
वरदानं च देवस्य नन्दने तु प्रकीर्तिम्॥ ११७॥
नैमित्तिकष्टु कथितः प्रतिसर्गस्ततः परम्॥
प्राकृतः प्रलयश्चैव सर्वोजो योग एव च॥ ११८॥

ब्राह्मणो! (तदनन्तर) संक्षेप में काल के वध और शंकर तथा विष्णु के देवदारु बन में प्रवेश करने का कथन है। छः कुलों में उत्तम ऋषियों द्वारा शीमान् देवाधिदेव के दर्शन करने और महादेव द्वारा नन्दी को वरदान देने का वर्णन हुआ है। इसके बाद नैमित्तिक प्रलय कहा गया है और फिर आगे प्राकृत प्रलय एवं सर्वोज योग बताया गया है।

एवं ज्ञात्वा पुराणस्य संक्षेपं कीर्तयेत् यः॥
सर्वपापविनिर्मुक्तो द्रह्मलोके महीयते॥ ११९॥

इस प्रकार संक्षेप में (इस कूर्म) पुराण को जानकर जो उसका उपदेश करता है, वह सभी पापों से मुक्त होकर द्रह्मलोक में प्रतिष्ठा प्राप्त करता है।

एवमुक्त्वा श्रियं देवीपादाय पुरुषोत्तमः॥
सन्यज्ञं कूर्मसंस्थानं प्रजगाम हरसदाः॥ १२०॥
देवङ्ग सर्वे मनुष्यः स्वानि स्थानानि भेजिरे॥
प्रणाम्य पुरुषं विष्णुं गृहीत्वा द्वापृतं द्विजाः॥ १२१॥

इतना कहकर कूर्मरूप का परित्याग कर देवी लक्ष्मी के साथ पुरुषोत्तम (विष्णु) अपने धाम को चले गये। उस ब्रह्म पुरुष विष्णु को प्रणाम करके तथा (कथारूप) अमृत ग्रहण करके सभी देव और मनुष्य भी अपने स्थान को चले गये।

एतत्पुराणं सकलं भाषितं कूर्मस्त्रिपणाः॥
साक्षात् देवाधिदेवेन विष्णुना विश्वयोनिना॥ १२२॥
यः पठेत्सततं विश्रा नियमेन समाप्ततः॥
सर्वपापविनिर्मुक्तो द्रह्मलोके महीयते॥ १२३॥

इस प्रकार यह कूर्म पुराण कूर्मावतारी विष्णु ने स्वयं ही कहा है इसलिए यह परम श्रेष्ठ है क्योंकि देवाधिदेव तथा विश्व के उत्पत्ति स्थान विष्णु ने ही अपने मुख से यह कहा है। इसलिए जो मनुष्य निरन्तर भक्तिपूर्वक तथा नियमपूर्वक संक्षेप में इस पुराण का पाठ करता है वह समस्त पापों से छुट कर ब्रह्मलोक में प्रतिष्ठित होता है।

लिखित्वा चैव यो द्वाहौशाखे कार्तिकेऽपि वा।

विश्राय वेदविद्युते तत्यु पुण्यं निवोष्टत॥ १२४॥

उसी प्रकार जो मनुष्य इस पुराण को लिखकर वैशाख अथवा कार्तिकमास में वेद के विद्वान् ब्राह्मण को दान करता है तो इससे जो पुण्य प्राप्त होता है उस के विषय में सुनो।

सर्वपापविनिर्मुक्तः सर्वैर्भूर्यसमन्वितः।

भुक्त्वा तु विपुलान्यर्थ्ये भोगान्दिव्यान् सुगोप्तनान्॥

ततः स्वर्गात्परिभृष्टो विश्राणां जायते कुले।

पूर्वसंस्कारमाहात्म्याद्ब्रह्मविद्यामध्यापयुयात्॥ १२५॥

इस प्रकार कूर्म पुराण का दान करने वाला वह मनुष्य समस्त पापों से मुक्त होकर सम्पूर्ण ऐश्वर्यों से सुख होकर इस लोक में महान् भोगों को भोग कर अन्त में श्रेष्ठ भोगों को भी स्वर्ग में भोगता है, इसके बाद उस स्वर्ग लोक से भी परिभ्रष्ट होकर पुनः ब्राह्मणों के कुल में जन्म लेता है और पूर्व जन्म के संस्कारों के अनुसार ब्रह्मविद्या को ग्राप करता है।

पठित्वात्यायमेवैकं सर्वपापैः प्रपुच्यते।

योऽर्थं विद्यारयेत्पर्यक् प्राप्नोति परमं पदम्॥ १२६॥

अथेतत्वयिदं पुण्यं विप्रैः पर्वणि पर्वणि।

श्रोतव्यज्ञु द्विजश्रेष्ठा महापातकनाशनम्॥ १२८॥

इस पुराण के एक ही अध्याय का पाठ करने से सभी पापों से मुक्ति प्राप्त हो जाती है और जो इसके अर्थ पर टोक-टोक विचार करता है, वह परमपद प्राप्त करता है। हे श्रेष्ठ द्विजो! ब्राह्मणों को प्रत्येक पर्व पर महापातकों का नाश करने वाले इस पुराण का नित्य अध्ययन एवं श्रवण करना चाहिये।

एकतसु पुराणानि सेतिहासानि कृतस्तः।

एकत्र परमं वेदमेतदेवातिरिच्यते॥ १२९॥

वर्यनैपुणकामानां ज्ञाननैपुणकामिनाम्।

इदं पुराणं मुख्येकं नान्यत् साधनकपरं।

यथा यद्यु भगवान्देवो नारायणो हरिः॥ १३०॥

कीर्तयते हि यथा विष्णुर्न तथाऽन्येषु सुव्रताः।

ब्राह्मी पौराणिकी चेवं संहिता पापनाशिनी॥ १३१॥

अत्र तत्परमं ब्रह्म कीर्तयते हि यथार्थतः।

तीर्थानां परमं तीर्थं तपसाङ्गं परं तपः॥ १३२॥

ज्ञानानां परमं ज्ञानं ब्रतानां परमं ब्रतम्।

एक तरफ इतिहास सहित सम्पूर्ण पुराणों का स्वाध्याय और दूसरी तरफ परम श्रेष्ठ इस पुराण का स्वाध्याय तथा पाठ किया जाए तो उन सबके पुण्य की प्राप्ति से अधिक इस कूर्म पुराण के स्वाध्याय से होने वाला पुण्य ही अधिक होकर अवश्य ही अत्यन्त बृद्धि को प्राप्त होता है। जो लोग धर्म के सम्बद्ध में कुशलता प्राप्ति की इच्छा करते हों, जो ज्ञान प्राप्ति में निषुण होना चाहते हों, उन के लिए इस एक कूर्म पुराण के अतिरिक्त कोई भी श्रेष्ठ साधन नहीं है। क्योंकि हे उत्तम व्रत वाले ब्राह्मणों! भगवान् श्री नारायणदेव श्रीहरि विष्णु का कीर्तन जिस प्रकार करना चाहिए वह इस कूर्म पुराण में मिलता है। ऐसा अन्यत्र किसी भी पुराण में वस्तुतः नहीं मिलता। इसी का ब्रह्म परमात्मा से संबन्ध रखने वाली यह कूर्मपुराण संहिता पापों का नाश करने वाली है क्योंकि इस कूर्म पुराण में वस्तुतः यथार्थ रूप में परम श्रेष्ठ परमात्मा का कीर्तन अथवा वर्णन किया गया है। इसी कारण यह कूर्म पुराण तीर्थों में परम श्रेष्ठ तीर्थ रूप है, सभी तीर्थों में श्रेष्ठ तप रूप है, तथा सभी ज्ञानों में परमश्रेष्ठ ज्ञानरूप है और सभी व्रतों में अत्यन्त श्रेष्ठ ब्रतरूप है।

नान्येतत्वयिदं शास्त्रं वृथलस्य च सत्रिष्ठौ॥ १३३॥

योऽधीते चैव मोहात्मा स याति नरकान् बहून्।

श्राद्धे वा दैदिके कार्ये श्राव्यं चेदं द्विजातिष्ठिः॥ १३४॥

यज्ञानो तु विशेषणा सर्वदोषविशेषणम्।

परन्तु यह ध्यान अवश्य रहे कि यह कूर्मपुराणरूपी शास्त्र किसी वृथल अथवा शूद्र के पास अध्ययन करने योग्य नहीं हैं फिर भी मनुष्य मोह के कारण शूद्र के समीप अध्ययन करता है तो वह अवश्य ही वह अनेक नरकों में गिरता है। प्रत्येक द्विजवर्ण के मनुष्य को किसी भी श्राद्ध कर्म अथवा देवकर्म में यह कूर्म पुराण अवश्य सुनना या सुनने योग्य है। उसी प्रकार किसी भी यज्ञ की समाप्ति के समय यह पुराण सम्पूर्ण दोषों का विनाश करने के कारण सुनने योग्य है।

मुमुक्षुणामिदं शास्त्रमध्येतत्वं विशेषतः॥ १३५॥

श्रोतव्यज्ञाय मनव्यं वेदार्थपरिवृहणम्।

ज्ञात्वा यद्यावद्विषेन्द्रान् श्रावयेद्विक्तिसंयुतान्॥ १३६॥

सर्वपापविनिर्मुक्त्वा द्वाहसायुज्यमानुयात्।

वेदार्थों को विधित करने वाले, इस शास्त्र को मोक्षाभिलाषी लोगों को, विशेष रूप से पढ़ना, सुनना और चिन्तन करना चाहिए। इस शास्त्र को जानकर, जो व्यक्ति इसे नियमानुसार, भक्त ब्राह्मणों को सुनाता है, वह सारे पापों से युक्त होकर, ईश्वर का सायुज्य प्राप्त करता है।

योऽध्रह्याने पुरुषे दद्याद्याधीर्मिके तथा॥ १३७॥

सम्प्रेत्य गत्वा निरत्यान् शुनां योनिं द्रुजत्यथः।

जो व्यक्ति, अब्रदात्म और नस्तिक को यह शास्त्र सुनाता है, वह परलोक में नकरणामी होकर पुनः पृथ्वी पर कुकुर योनि में जन्म लेता है।

नमस्कृत्य हरिं विष्णुं जगद्योर्निं सनातनम्॥ १३८॥

अव्येतव्यपिदं शास्त्रं कृष्णद्वैपायनं तथा।

इत्याज्ञा देवदेवस्य विष्णोरपिततेजसः॥ १३९॥

पाराशर्वस्य विष्णवेद्यास्त्रस्य च महात्मनः।

जगत् के कारणभूत, सनातन हरि विष्णु तथा कृष्णद्वैपायन व्यासजी को नमस्कार करके इस शास्त्र (पुराण) का अध्ययन करना चाहिये’—अमित तेजस्वी देवाधिदेव विष्णु और पराशर के पुत्र महात्मा विष्णु व्यास की ऐसी आज्ञा है।

श्रुत्वा नारायणादेवाप्राप्तदो भगवान्विः॥ १४०॥

गौतमाय ददौ पूर्वं तस्माद्यैव पराशरः।

नारायण के मुख से सुनकर, देवर्षि नारद ने यह पुराण गौतम को दिया था और गौतम से यह पराशर ने प्राप्त किया।

पराशरोऽपि भगवान् गंगाद्वारे मुनीश्वरः॥ १४१॥

मुनिष्यः कश्यापास घर्मकामार्वभोक्षदम्।

हे मुनोंश्वरो! भगवान् पराशर ने भी धर्म-अर्थ काम और मोक्ष को देने वाला यह पुराण, गंगाद्वार (हरिद्वार) में मुनियों को सुनाया था।

द्वाहाणा कवितं पूर्वं सनकाय च धीमते॥ १४२॥

सनकुमाराय तथा सर्वपापप्रणाशनम्।

सर्वपापनाशक यह पुराण, प्राचीन काल में, ब्रह्म ने अपने पुत्रों बुद्धिमान् सनक और सनकुमार को कहा था।

सनकाद् भगवान् साक्षात्कैवल्ये योगवित्तम्॥ १४३॥

मुनिः पञ्चशिखो वै हि देवलादिदमुत्तमम्।

सनकुमाराद्वगवान्मुनिः सत्यवतीमुतः॥ १४४॥

एकसुराणं परमं व्यासः सर्वार्थसंवयम्।

योगवेता भगवद्स्वरूप मुनि देवल ने सनक से और देवल मुनि से यह उत्तम पुराण पञ्चशिखमुनि ने प्राप्त किया था। सनकुमार से सत्यवती पुत्र भगवान् वेदव्यासमुनि ने सभी अर्थों के संग्रहकारी इस श्रेष्ठ पुराण को प्राप्त किया था।

तस्माद् व्यासादहं श्रुत्वा भवता पापनाशनम्॥ १४५॥

ऊचिवान्वै भवद्विष्णु दातव्यं व्यार्थिके जने।

उन वेदव्यास से सुनकर यह पापनाशक पुराण, मैंने आप लोगों को बताया है। आप लोग भी, धार्मिक व्यक्तियों के पास ही इसे प्रकट करें।

तस्मै व्यासाय गुरवे सर्वज्ञाय महर्षये॥ १४६॥

पाराशर्वाय शानाय नमो नारायणात्मने।

यस्मात्सञ्जायते कृत्स्ने यत्र चैव प्रलीयते।

नमस्तस्मै एरेश्वाय विष्णाये कूर्मरूपिणे॥ १४७॥

पराशर के पुत्र सर्वगुरु, सर्वज्ञ, शान्तस्वरूप तथा नारायणरूप महर्षि व्यास को नमस्कार है। जिनसे यह सम्पूर्ण विश्व उत्पन्न होता है और निसर्गमें यह सब लीन हो जाता है, उस कूर्मरूपधारी परमेश्वर भगवान् श्रीविष्णु को नमस्कार है।

इति श्रीकूर्मपुराणे घटसाहस्राणां संहितायामुत्तरादेहं व्यासगीतासु घटस्यार्थिशोऽव्यायः॥ ४६॥

समाप्तोऽयं ग्रन्थः।